ISSN -0973-3914

Centre for Research Studies
REWA (M.P.)

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

PEER-REVIEWED RESEARCH JOURNAL
UGC JOURNAL NO. (OLD) 40942, IMPACT FACTOR 3.928
Indexed & Listed at: Ulrich's International Periodicals Directory ProQuest, U.S.A. Title Id: 715205

अंक-33 | अंग्रेजी संस्करण | वर्ष–16 | जुलाई–दिसम्बर 2020

www.researchjournal.in

आई. एस. एस. एन. 0973-3914

रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइन्सेस

Peer-Reviewed Research Journal
UGC Journal No. (Old) 40942
Impact Factor 3.928
Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, ProQuest, U.S.A. Title Id : 715205

अंक-33	हिन्दी संस्करण	वर्ष-16	जुलाई-दिसम्बर 2020

प्रोफेसर ब्रजगोपाल
प्रधान सम्पादक
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड से सम्मानित
profbrajgopal@gmail.com

डॉ. अखिलेश शुक्ल
ऑनरेरी सम्पादक
प्राध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
प्रतिष्ठित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवार्ड तथा पं. गोविन्द वल्लभ पंत एवार्ड से सम्मानित
akhileshtrscollege@gmail.com

डॉ. संध्या शुक्ल
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, नैक 'ए' ग्रेड
शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
drsandhyatrs@gmail.com

डॉ. गायत्री शुक्ल
अतिरिक्त निदेशक, सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
shuklagayatri@gmail.com

डॉ. आर. एन. शर्मा
सेवानिवृत्त आचार्य, उच्च शिक्षा, रीवा
rnsharmanehru@gmail.com

सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, रीवा
की मुख्य शोध पत्रिका
म.प्र. सोसायटी रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1973 के अंतर्गत पंजीकृत
पंजीयन क्रमांक 1802, सन् 1997

विषय विशेषज्ञ/परामर्श मण्डल

1. डॉ. अरविंद जोशी (आचार्य) बनारस हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
arvindvns@outlook.com
2. डॉ. रामशंकर, आचार्य, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर
rs_dubey@yahoo.com
3. डॉ. डी. एस. राजपूत, आचार्य, डॉक्टर हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय सागर
drdiwakarrajeut@rediffmail.com
4. डॉ. बी. के. सिंह, आचार्य, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
imdrbrajesh.kv@gmail.com
5. डॉ. अंजली श्रीवास्तव, आचार्य, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा
anjali_apsu@rediffmail.com
6. डॉ. बी. पी. बडोला, सेवानिवृत्त, आचार्य, कांगड़ा हिमाचंल प्रदेश
bpbadola@gmail.com
7. डॉ. आभा सक्सेना, सह प्राध्यापक, अग्रसेन कन्या स्वशासी महाविद्यालय वाराणसी
drabhasaxena7@gmail.com
8. डॉ. प्रज्ञा मिश्रा, आचार्य, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट
pragyamishramgcgv@gmail.com
9. डॉ. आशीष सक्सेना, आचार्य, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद उत्तर प्रदेश।
ashish.ju@gmail.com
10. डॉ. ज्योति उपाध्याय, आचार्य, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन मध्य प्रदेश
drjyotiupadhyay11@gmail.com
11. डॉ. प्रमिला पुनिया, सह प्राध्यापक, इतिहास, राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर राजस्थान
pramilapoonia@rediffmail.com
12. डॉ. रामलला शुक्ल, प्राध्यापक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा
ramlalashukla666@gmail.com
13. डॉ. मृदुल जोशी, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार
dr_mriduljoshi@yahoo.com
14. डॉ. के. के. शर्मा, प्राध्यापक, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान रीवा
sharmakktrs@gmail.com
15. डॉ. शैलजा दुबे, प्राध्यापक, शासकीय महारानी लक्ष्मीबाई कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय भोपाल
shailjadubey70@yahho.in
16. डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव, आचार्य, शासकीय कला महाविद्यालय कोटा राजस्थान
dr21pramila@gmail.com
17. डॉ. जयशंकर शाही, आचार्य, अलवर राजस्थान
jayshankarshahi@gmail.com
18. डॉ.एन. पी. त्रिपाठी , सेवानिवृत्त आचार्य, रीवा मध्य प्रदेश
19. डॉ. राजेश भट्ट, एच. एन. बी. केंद्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड
rajeshbhatt11@gmail.com

Guide Lines

- **General:** English and Hindi Editions of Research Journal are published separately. Hence Research Papers can be sent in Hindi or English.
- **Manuscript of research paper:** It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be checked before submission as there is no provision of sending proof. It must include Abstract,Keywords, Introduction, Methods, Analysis, Results and References. Hindi manuscripts must be in Devlys 010 or Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in Email also. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.
- **References :** References must be listed cited inside the paper and alphabetically in the order- Surname, Name, Year in bracket, Title, Name of book, Publisher, Place and Page number in the end of research paper as under- Shukla Akhilesh (2018) Criminology, Gayatri Publications, Rewa : Page 12.
- **Review System:** Every research paper will be reviewed by two members of peer review committee. The criteria used for acceptance of research papers are contemporary relevance, contribution to knowledge, clear and logical analysis, fairly good English or Hindi and sound methodology of research papers. The Editor reserves the right to reject any manuscript as unsuitable in topic, style or form without requesting external review.

लेखकों से निवेदन–

- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेज (ISSN-0973-3914) सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज की मुख्य शोध पत्रिका है, जो मानव संसाधन मंत्रालय तथा पंजीयक समाचार पत्र एवं पत्रिका, भारत सरकार नई दिल्ली द्वारा पंजीकृत हैं।
- शोध पत्रिका उलरिच इन्टरनेशनल पीरियाडिकल्स डाइरेक्ट्री प्रोक्वेस्ट, संयुक्त राज्य अमेरिका से इंडेक्सड् और लिस्टेड हैं।
- शोध पत्रिका का अंग्रेजी एवं हिन्दी संस्करण अलग–अलग प्रकाशित होता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस का प्रकाशन प्रतिवर्ष मार्च, जून, सितंबर तथा दिसंबर में किया जाता है।
- रिसर्च जरनल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंसेस को इम्पैक्ट फैक्टर एवं आई.एस.एस.एन प्राप्त हैं। शोध पत्रिका Peer-Reviewed हैं।
- शोध पत्रिका के नवीनतम अंक में प्रकाशित शोध पत्रों को हमारी वेबसाइट www.researchjournal.in (Current Issue) में देखा जा सकता है तथा डाउनलोड किया जा सकता है।
- शोध पत्रिका का प्रिंट एडीशन सदस्यों को अलग से डाक द्वारा भेजा जाता है।
- शोध पत्र में शीर्षक, नाम, पद, पदस्थापना का विवरण, पत्र व्यवहार का पता तथा दूरभाष क्रमांक,
- मोबाइल नं., ई–मेल एड्रेस अवश्य दिया जाये।
- शोध पत्र के प्रारम्भ में कम से कम 50–100 शब्दों का सारांश दिया जाये।

- शोध पत्र में शोध पद्धति तथा शोध में प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
- शोध पत्र में निष्कर्ष और अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची दी जाये। संदर्भ ग्रंथों का विवरण पूरा दिया जाये। लेखक का नाम, वर्ष, पुस्तक का नाम, प्रकाशक का विवरण, प्रकाशक का स्थान और पृष्ठ संख्या आदि का विवरण दिया जाना चाहिए।
- शोध पत्र माईक्रोसॉफ्ट वर्ड की फाइल में टाइप किया हुआ होना चाहिए। (नोट- पेज मेकर की फाइल, पी.डी.एफ. फाइल, स्कैन मैटर आदि में कदापि शोध पत्र न भेजें) शोध पत्र हिन्दी लिपि में कृतिदेव या देवलिस फांट 010(फॉन्ट साइज 14, स्पेस डबल, मार्जिन ए-4 साईज के कागज में चारो तरफ 1 इंच) में भेजा जाना चाहिए।
- शोध पत्र के साथ यह घोषणा अवश्य संलग्न करें कि शोध पत्र मौलिक है तथा इसे कहीं अन्यत्र प्रकाशनार्थ प्रेषित नहीं किया गया है।

सर्वप्रथम शोध पत्र ई-मेल द्वारा भेजें-

- **researchjournal97@gmail.com,**
- **researchjournal.journal@gmail.com**
- शोध पत्र की स्वीकृति की सूचना सम्पादकीय कार्यालय द्वारा लेखक को ई-मेल एवं दूरभाष द्वारा प्रदान की जाती है।

© सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज

एक अंक रुपये 500.00	-सदस्यता शुल्क -	
अवधि	व्यक्तिगत सदस्यता	संस्थागत सदस्यता
वर्ष एक	2000-00	2500-00
वर्ष दो	2500-00	4000-00

सदस्यता शुल्क की राशि गायत्री पब्लिकेशन्स के स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, ब्रांच-रीवा सिटी (आईएफएस कोड 0004667 MICR Code 486002003) के खाता क्रमांक 30016445112 में जमा की जाय, नगद जमा की स्थिति में 75 रु. अतिरिक्त बैंक चार्ज जोड़ा जाय।

प्रकाशक: गायत्री पब्लिकेशन्स
रीवा- 486001 (म.प्र.)

मुद्रक: लीनेज ऑफसेट
रीवा (म.प्र.)

संपादकीय कार्यालय
186/1, विन्ध्य विहार कालोनी
रीवा- 486001 (म.प्र.)
E-mail- researchjournal97@gmail.com, researchjournal.journal@gmail.com
www.researchjournal.in

रिसर्च जरनल में प्रस्तुत किये गये विचार और तथ्य लेखकों के हैं, जिनके विषय में सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं है। रिसर्च जरनल के सम्पादन एवं प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, किन्तु किसी त्रुटि के लिए सेन्टर फॉर रिसर्च स्टडीज, सम्पादक मण्डल, प्रकाशक तथा मुद्रक उत्तरदायी नहीं हैं। सम्पादन का कार्य अव्यावसायिक और ऑनरेरी है। सभी विवादों का न्यायालय क्षेत्र, रीवा जिला रीवा (म.प्र.) रहेगा।

सम्पादकीय

गुरु-शिष्य परंपरा भारत की संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला होती है और उसके प्रथम गुरु उसके मां और पिता होते हैं। किंतु जीवन जीने की कला सिखाने वाला तो गुरु ही होता है, शिष्य का असली सामाजीकरण तो गुरु ही करता है इसीलिए कहा गया है की गुरु से कपट मित्र से चोरी। या होई निर्धन या होई कोढ़ी। डॉ. राधाकृष्णन के जन्मदिन को एक उत्सव के रूप में मनाना हर भारतीय के लिए गौरव की बात है, किंतु समसामयिक परिप्रेक्ष्य में कहां आदरणीय राधाकृष्णन और कहां आज का शिक्षक। डॉ. राधाकृष्णन के दर्शन में पूरा विश्व एक विद्यालय था और शिक्षक के ऊपर विद्यार्थी को आत्मनिर्भर बनाने की जिम्मेदारी थी। वर्तमान समाज में आज चाहे वह स्कूल का शिक्षक हो या महाविद्यालय का या विश्वविद्यालय का, वह आज एक पढ़े-लिखे गुलाम की तरह अपना जीवन यापन कर रहा है और वर्तमान भौतिक युग में अपने को स्टेबल बनाए रखने के लिए हर संभव प्रयास कर रहा है, चाहे विद्यालय के शिक्षक हो या और अन्य किसी प्रजाति का शिक्षक। प्रबंधन, प्रशासन और राजनेता के नीचे अधिकांश को नतमस्तक कर दिया गया है।

राधाकृष्णन के जन्मदिन को मनाने के पीछे शायद यह उद्देश्य रहा होगा कि इससे शिक्षकों का सम्मान होगा। पहले शिक्षक विषय के साथ - साथ जीवन मूल्यों का भी प्रशिक्षण अपने विद्यार्थियों को दिया करता था। आज शिक्षक एक क्लर्क हो गया है। चुनावों में या शासन की किसी भी गणना कार्य में उसे एक इकाई के रूप में देखा जाता है, बिना शिक्षक के कोई गणना हो ही नहीं सकती है, चाहे वह इंसान की हो या जानवरों की। राधाकृष्णन की नजर में शिक्षक के जो कर्तव्य थे, वह आज बदल गए, आज जीवन मूल्यों की जगह गणना ने स्थान ले लिया है।

आज शिक्षा उद्योग में परिवर्तित हो गई है और उद्योग, प्रबंधन एवं उपभोक्ता का जो संबंध होता है, वह किसी से छिपा नहीं है। आज शिक्षक को एक सेल्समैन बना दिया गया है, वह अपनी कला और अपने पाठ्यक्रम को बाजार में बेचने का प्रयास कर रहा है। यहां दोष किसी एक का नहीं है वरन संपूर्ण परिप्रेक्ष्य में पूरे समाज का है। आज शिक्षक के मूल्यांकन का आधार यह हो गया है कि उसकी कक्षा के विद्यार्थी कितना अधिक नंबर लाते हैं, सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य का कहीं ऑकलन नहीं है। अगर शिक्षक के विद्यार्थी इन सब मूल्यों को छोड़कर शत- प्रतिशत अंक ले आते हैं तो शिक्षक का सी. आर. उत्कृष्ट है, अब आप तय करिए की मूल्य जरूरी है, की शत- प्रतिशत अंक।

आज बात तो अनुशासन की की जाती है। शिक्षक बच्चों को डांट नहीं सकता है। अपनी कक्षा में खड़ा नहीं कर सकता है। बिना प्रशासन की अनुमति के कोई नवोन्मेष प्रयोग नहीं कर सकता है, अगर करता है, तो शिकायत में उसकी जांच हो जाएगी, उसका निलंबन तय है। जांच में दोष सिद्ध हुए बिना उसे मीडिया ट्रायल से भी गुजरना पड़ेगा। जांच में उसे अपनी प्रामाणिकता अपने सत्य और अपने मूल्य को सिद्ध करने के लिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है, इसलिए आज शिक्षक भी एक स्वचालित मशीन हो

के लिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है, इसलिए आज शिक्षक भी एक स्वचालित मशीन हो गया है और समाज का जो विघटन हो रहा है, उसका मूल कारण भी यही है। लोग कहते हैं कि शिक्षक भविष्य का निर्माता है, जब आपने उसे एक स्वचालित मशीन बना दिया तो वह भविष्य के वीरांगनाओं को कैसे पैदा कर सकता है, यह एक समाज के सामने यक्ष प्रश्न है? आज ब्यूरोक्रेट्स और नौकरशाही यह तय कर हैं कि शिक्षक को किस दिशा में आगे जाना है, जो शिक्षक समाज को दिशा देता था, आज लोग उसे दिशा देने लगे हैं।

वर्तमान समसामयिक भौतिकवादी समाज में कुछ शिक्षक व्यवसायिक प्रवृत्ति को अपनाते हुए अपने ज्ञान की बोली लगाने लगे हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देखें तो गुरु–शिष्य की परंपरा क्षीण होती जा रही है। जबकि वर्तमान संक्रमणकारी समय मे शिक्षक का दायित्व अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गया है, किंतु दूसरी तरफ प्रशासकीय व्यवस्था में वह अकेले शासकीय कर्मचारी जैसा बन कर रह गया है, जबकि आवश्यकता है इसे व्यापक बनाने की है। समाज और प्रशासकीय तंत्र को अपने सोचने के नजरिए में व्यापकता का समावेश करना चाहिए। माना जाता है कि यदि शिक्षक नही होता तो शिक्षा की कल्पना भी नही की जा सकती थी। शिक्षा की आधारशिला शिक्षक के द्वारा ही रखी जाती है। इसीलिए शिक्षक के स्वरूप में ईश्वर की कल्पना गई "गुरु ब्रह्म गुरु विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः गुरु साक्षात पर ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः" इस श्लोक में गुरु की तुलना ब्रह्म से की गई है।

(प्रोफेसर ब्रजगोपाल)
प्रधान संपादक

डॉ. अखिलेश शुक्ल
सम्पादक

अनुक्रमणिका

01	जाति व्यवस्था : समाजशास्त्रीय साहित्य का विश्लेषण **अखिलेश शुक्ल**	09
02	कोल जनजाति में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया (ग्राम पंचायत धौचट के विशेष संदर्भ में) **के.के. शर्मा** **रेखा तिवारी**	19
03	वाक्शक्ति की दो गतिशील कलायें **सुनीता द्विवेदी**	25
04	कोविड–19 में खुलता लॉकडाउन और बढ़ती समस्यायें **शशिकिरण नायक** **रोहिणी त्रिपाठी**	29
05	मोहनदास : आदमियत की पहचान संकट में **राकेश कुमार तिवारी** **लूनेश कुमार वर्मा**	33
06	मनोहर श्याम जोशी के साहित्य की अन्तर्दृष्टि **प्रभात सिंह**	39
07	उपभोक्तावादी समाज एवं जल संरक्षण **हेमलता सांगुड़ी**	42
08	इक्कीसवीं सदी के भविष्य वक्ता के रूप में जोशी का व्यक्तित्व **प्रभात सिंह**	51
09	सामाजिक कुरीतियाँ **वेणु साहू**	53
10	पंचायतीराज संस्था तथा ग्रामीण विकास : कुछ प्रश्न तथा स्पष्टीकरण **कल्याणी**	59
11	दल बदल की राजनीति **सीमा अग्रवाल**	69
12	भारतीय लोक संगीत की संकल्पना **निष्ठा शर्मा**	74
13	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान में मानवाधिकार बोध **रंजन शर्मा**	78
14	स्वतंत्रता संग्राम में बालाघाट जिले की भूमिका **आशा गोहे**	85
15	भारत में कोविड 19 की लड़ाई में नगरीकरण की चुनौती **कुमुद श्रीवास्तव**	91
16	महिलाओं में स्वास्थ्य – शिक्षा सम्बन्धी जागरूकता **विनोद शंकर सिंह** **सिद्धार्थ मिश्रा**	97
17	ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति : एक अध्ययन **राजीव दुबे** **मोतीलाल मिश्रा**	102

18	कामकाजी महिलाएँ – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में) **दिलीप कुमार सोनी**	107
19	नारी अतीत और वर्तमान : संदर्भ भारतीय परिपेक्ष्य **पूजा गर्ग** **ज्ञानवती अवस्थी**	115
20	मनरेगा राष्ट्रीय स्तर पर चलाई गई योजना: एक विश्लेषण **स्मृता कुमारी**	120
21	समकालीन मीडिया में विश्वसनीयता का प्रश्न एवं भारतीय लोकतंत्र पर प्रभाव **संजय वर्मा**	125
22	अथर्ववेद में वर्णित प्रमुख आन्तरिक रोग **अन्जली मिश्रा**	132
23	समाचार पत्रों के क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन : छत्तीसगढ़ के रायपुर नगर के संदर्भ में **कविता साहू** **ए.के.पाण्डेय** **के.के.बिन्दल**	139
24	डिण्डौरी जिले के बैगा जनजाति में प्रवासिता की समस्या का आर्थिक अध्ययन **भावना अभिषेक प्रधान** **एन. जी. पेण्डसे**	143
25	उत्तराखण्ड में लोकोत्सव एवं पर्व **अवधेश तिवारी**	151
26	छत्तीसगढ़ के गोंड़ जनजातीय जीवन में नृत्यगान का महत्व **एमन्त माधुरी ठाकुर** **रेणु सक्सेना**	159
27	ग्रामीण महिलाओं पर जन-संचार माध्यमों का प्रभाव (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन) **राजीव दुबे** **मोतीलाल मिश्रा**	165
28	कठगुलाब में अभिव्यक्त नारी जीवन **शैलेन्द्र ठाकुर** **अभिनेष सुराना** **नीरज चौबे**	171
29	बौद्ध साहित्य में पर्यावरण (600 ईसा पूर्व से 300 ई. तक) **अजय कुमार यादव**	177

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

जाति व्यवस्था : समाजशास्त्रीय साहित्य का विश्लेषण

•अखिलेश शुक्ल

सारांश- हिन्दू सामाजिक संरचना में जाति-व्यवस्था सामाजिक संस्तरण का एक विशिष्ट रूप रहा है, जिसे सामाजिक संस्तरण (कठोर स्तरीकरण) कहा जाता है। यह संस्तरण पवित्रता व अपवित्रता की धारणा के आधार पर विभिन्न जातीय समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करती रही है। हिन्दू जाति-व्यवस्था भारतीय समाज की एक अप्रतिम एवं बहुचर्चित विशेषता रही है, जो हिन्दू धर्म द्वारा पूर्णतः अनुमोदित रही है। इसके साथ ही हिन्दू जाति- व्यवस्था एक ऐसी केन्द्रीय धुरी रही है, जिसके चारों ओर सदियों से भारतीय समाज गतिमान रहा है। भारत में इस जटिल व्यवस्था का अध्ययन भारत विद्याशास्त्र, संरचनात्मक-साँस्कृतिक दृष्टिकोणों, अन्तःक्रियावादी परिप्रेक्ष्यों, सभ्यतावादी परिप्रेक्ष्य एवं उपाश्रित दृष्टिकोण से देखने को मिलता है।

मुख्य शब्द- सामाजिक संरचना, जाति-व्यवस्था, सामाजिक संस्तरण

चार्ल्स एच. कूले- चार्ल्स एच. कूले अपनी पुस्तक सोशल आर्गनाइजेशन में लिखते हैं कि "जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुक्रम पर आधारित होता है, तब हम उसे एक जाति कहते हैं।" इसका तात्पर्य यही है कि जब वर्ग-व्यवस्था में कठोरता दिखने लगती है, तब वह जाति में परिवर्तित हो जाती है अर्थात् जब किसी वर्ग की सदस्यता जन्म के आधार पर मिलने लगे तो इसे जाति कहते हैं। इस प्रकार कूले वर्ग-व्यवस्था में आयी कठोरता के आधार पर जाति को स्पष्ट करते हैं।

लूई ड्यूमा- लूई ड्यूमा ने अपने जाति सम्बन्धी अध्ययनों में भारत विद्याशास्त्र और संरचनात्मक-साँस्कृतिक दृष्टिकोणों का प्रयोग किया है। ड्यूमा पूरे विश्व को दो समाजों-पूर्वी समाज तथा पश्चिमी समाज, में विभक्त करते हुए पूर्वी समाज की असमानतों को तथा पश्चिमी समाज की समानता को केन्द्रीय विशेषता माना है अर्थात् पश्चिमी समाज में जहाँ समानता पर बल देखने को मिलता है, वही भारतीय समाज का मुख्य तत्व असमानता है। ये अपने अध्ययन में विभिन्न स्रोत ग्रन्थों, मानवशास्त्रीय अध्ययनों एवं समाजशास्त्रीय अध्ययनों का प्रयोग नहीं करते हैं, बल्कि ये पवित्रता व अपवित्रता के एक पक्ष को ही जाति-व्यवस्था का सब कुछ समझ लिया। 'होमो-हाइरारकस' इनका अमर ग्रन्थ है, जो जाति-व्यवस्था के साँस्कृतिक पक्षों को विश्लेषित करने के लिए एक अर्न्तदृष्टि प्रदान करता है तथा संस्तरण पर आधारित भारतीय समाज एवं समतामूलक पाश्चात्य समाज की भिन्नता को समझने में भी सहायक है। ड्यूमाकहते हैं कि भारत एक ऐसा धार्मिक समाज है जो जाति-व्यवस्था के शुद्ध संस्तरण-व्यवस्था से परिचालित होता है और यह संस्तरण व्यवस्था दो विरोधी ध्रुवों-पवित्रता एवं अपवित्रता पर आधारित है। ड्यूमा लेवी स्ट्रास का दृष्टिकोण (द्वि-ध्रुवीय विपरीतता) लेते हैं तथा बोगल की विषयवस्तु (इतिहास) का अपने अध्ययन में प्रयोग करते हैं। पवित्रता एवं अपवित्रता की विरोधी वैचारिकी को भारतीय लोग स्वीकार करते हैं तथा अपने व्यवहारों से अभिव्यक्त करते हैं। इस वैचारिकी का स्रोत हिन्दू

•प्राध्यापक, समाजशास्त्र, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

धर्म ग्रन्थों में देखने को मिलता है। ये हिन्दू संस्तरण की व्याख्या में वैचारिकी को प्राथमिक मानते हैं। ये जाति को एक विचारधारा के रूप में देखते हैं तथा भारतीय सभ्यता को एकता के सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि भारतीय सभ्यता एक विचारधारा है। भारतीय समाज में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो पवित्रता एवं अपवित्रता (शुचिता एवं प्रदूषण) से संचालित न होता हो। इस नियम से गरीब-अमीर, उच्च-निम्न, स्त्री-पुरुष इत्यादि सभी संचालित होते हैं। किन्तु यह नियम असमानता पर न आधारित होकर समानता पर आधारित है। यह संस्तरण की अपेक्षा समानता की अवधारणा पर बल देता है। ये कहते[3] हैं कि जाति हमें श्रेणीबद्धता सिखाती है तथा श्रेणीबद्धता (पवित्रता-अपवित्रता) सामाजिक जीवन का अपरिहार्य अंग है। श्रेणीबद्धता असमानता का प्रतीक न होकर समानता का प्रतीक है। पवित्रता एवं अपवित्रता में अन्तर्विरोध निहित है। अन्तर्विरोध का यह नियम सामान्य समाजशास्त्र का तो एक सामान्य नियम है, जबकि भारतीय समाजशास्त्र का यह एक विशिष्ट नियम है अर्थात् जाति में दो विरोधी तत्व-पवित्रता (शुचिता) एवं अपवित्रता (प्रदूषण) विद्यमान है, जो एक दूसरे के विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। यह नियम जाति-व्यवस्था का प्राण तत्व है, जिसके बिना जाति-व्यवस्था का निर्माण असंभव हो जाता है। इस प्रकार ड्यूमा के अनुसार जाति का आधार धार्मिक न होकर कर्मकाण्डीय है। कर्मकाण्ड दो प्रकार का होता है-पवित्रता (प्राथमिक) एवं अपवित्रता (द्वितीयक)। हिन्दू धर्म में पवित्रता को परिभाषित नहीं किया गया है, केवल अपवित्रता को ही परिभाषित किया गया है और अपवित्रता से बचाये रखना ही पवित्रता है। जबकि अपवित्रता को ये दो भागों में बाँटते हैं-अस्थायी अपवित्रता तथा स्थायी अपवित्रता। अस्थायी अपवित्रता केवल कुछ समय के लिए ही होती है तथा धार्मिक कर्मकाण्डों के सम्पादन हो जाने से यह दूर हो जाती है, जैसे-जन्म एवं मृत्यु के समय की अपवित्रता। जबकि स्थायी अपवित्रता हमेशा बने रहने वाली अपवित्रता है, जो परम्परागत वर्ण-व्यवस्था एवं जाति-व्यवस्था में देखने को मिलती है। इसके साथ ही ड्यूमा कर्मकाण्डों (पवित्रता-अपवित्रता) को साध्य एवं साधन दोनों मानते हैं। इस प्रकार ड्यूमा जाति को कर्मकाण्डीय तथा हिन्दू धर्म को धर्मविधि बताते हैं। किन्तु जब जाति व धर्म कर्मकाण्डीय हो गया तो हिन्दू धर्म में विश्वास के साथ अविश्वास हो जाता है। क्योंकि धर्म में विश्वास प्राथमिक होता है तथा कर्मकाण्ड द्वितीयक माना जाता है।

इसके साथ ही ये हिन्दू धर्म को दो भागों-संन्यासी एवं गैर संन्यासी में विभक्त करते हुए कहते हैं कि भारत में परिवर्तन गैर-संन्यासियों के द्वारा न होकर संन्यासियों के द्वारा लाया गया है। इस प्रकार ड्यूमा की दृष्टि में भारत जाति संरचना का समाज है, जहाँ समाज (जाति) में तो परिवर्तन हो रहा है, किन्तु समाज (जाति) का परिवर्तन नहीं हो रहा है। ड्यूमा ने भारतीय संस्कृति में निहित असमानता की प्रवृत्ति के आधार पर भारतीय समाज में विभाजन व असमानता को दर्शाने का प्रयास किया है। इस क्रम में ड्यूमा ने न केवल भारतीय असमानता के भौतिक एवं आर्थिक पक्षों की आलोचना ही की है, अपितु ये यह भी प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि भारत में समानता एवं समानवाद असंभव है, क्योंकि यहाँ की संस्कृति असमान श्रेणीक्रम पर आधारित है। समाजशास्त्रियों ने ड्यूमा के इस निष्कर्ष की आलोचना की है तथा इसे अस्वीकार किया है। दीपांकर गुप्ता कहते हैं कि ड्यूमा का पवित्रता एवं अपवित्रता सम्बन्धी अन्तर्विरोध सार्वभौमिक नहीं रहा है। ये जाति को मूल्यों की तार्किक एवं सुसंगत व्यवसथा में दर्शाते हैं, जिसका मार्क्सवादी भी

आलोचना करते हुए कहते हैं कि ड्यूमा जातीय तनाव एवं संघर्ष तथा अन्तर्जातीय शोषण जैसे मुद्दों को स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। इसके साथ ही इनके विश्लेषण में शक्ति एवं प्रस्थिति के बीच विभेद दिखाई पड़ता है। राजा के सर्वशक्तिशाली हो जाने के बावजूद भी ब्राह्मणों की प्रस्थिति सर्वोच्च थी। प्रस्थिति सदैव शक्ति के साथ जुड़ी होती है। इसके साथ ही भारत में प्रस्थिति शक्ति के साथ-साथ अन्य कारकों से भी प्रभावित होती रही है। पुनः भारतीय समाज अपरिवर्तनशील (जड़) समाज न होकर परिवर्तनशील समाज रहा है। इसके साथ ही ये ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण पवित्रता- अपवित्रता) को ही सब कुछ समझ लेते हैं तथा भारतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक पक्षों की उपेक्षा कर देते हैं। फिर भी ड्यूमा जाति के साँस्कृतिक पक्षों को बहुत हद तक स्पष्ट करने में सफल रहे हैं। शुद्धता- अशुद्धता के नियम की खोज इन्हें भारतीय समाज में अद्वितीय बना देती है। ये नियम संज्ञानात्मक स्तर के हैं, जिससे ड्यूमा अन्य विद्वानों जो जाति का अध्ययन गुण-धर्म के आधार पर करते हैं, (जैसे-घुरिए, श्रीनिवास, होकार्ट, सेनार्ट, केतकर इत्यादि) से अलग हो जाते हैं। ड्यूमा इन्हीं गुण-दोषों को नियंत्रित करने वाले नियमों (कारणों/स्रोतों) के रूप में पवित्रता व अपवित्रता की अवधारणा देते हैं, जो इन्हें अनोखा बना देता है।

जी.एस. घुरिए- जी.एस. घुरिए अपने जाति-व्यवस्था के अध्ययन में न केवल प्रजातीय कारकों को स्वीकार करते हैं, अपितु ब्राह्मणों के योगदान को भी महत्वपूर्ण मानते हैं। ये अपने जाति-व्यवस्था सम्बन्धी अध्ययनों में जहाँ एक ओर इण्डोलाजी का प्रयोग करते हैं, वही दूसरी ओर संरचनात्मक एवं साँस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों का भी सहारा लेते हैं। ये जाति के अध्ययन में ऐतिहासिक धर्म-ग्रन्थों, तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक परिप्रेक्ष्यों का सहारा लेते हैं। अपने शोध ग्रन्थ जाति के प्रजातीय सिद्धान्त में प्रजाति का जाति पर प्रभाव देखते हुए स्पष्ट करते है कि जहाँ एक ओर जाति का महत्व समाज में बढ़ेगा, वही दूसरी ओर अर्न्तजातीय विवाहों के प्रचलन से जाति-व्यवस्था कमजोर पड़ जाएगी। इस प्रकार ये जाति और प्रजाति के बीच सम्बन्धों को जोड़ते हैं तथा जाति का प्रजातीय सिद्धान्त देते हैं। अपने जाति सम्बन्धी अध्ययनों को 'कास्ट, क्लास एण्ड एक्यूपेशन (12 अध्याय) में दिए हैं। बाद में ये जाति और व्यवसाय के बीच सम्बन्ध दिखाते हुए स्पष्ट करते हैं कि कोई व्यक्ति अपने व्यवसाय को बदल नहीं सकता है। ये जाति को अखिल भारतीय प्रघटना मानते हुए कहते हैं[3] कि भारत में जाति इण्डो आर्यन संस्कृति के ब्राह्मणों का शिशु है जो कि गंगा एवं यमुना के मैदानों में पाला गया और बाद में देश के अन्य भागों में ले जाया गया है।" लगभग 25.. ई.पू. इण्डो-आर्यन प्रजाति का भारत आगमन हुआ। आर्यों ने युद्ध के द्वारा भारत के मूल निवासियों (द्रविड़ों) को पराजित करके इन्हें दास के नाम से सम्बोधित किया। आर्य जब भारत आए थे तब वे तीन वर्गों में विभक्त थे तथा उनके बीच किसी प्रकार सैद्धान्तिक निषेध नहीं था। किन्तु आर्यों ने भारत के मूल निवासियों से स्वयं को दूर रखने का प्रयास किया। इसी क्रम में सबसे पहले आदिवासियों से बने शूद्रों से विवाह करने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा उन्हें आर्यों की धार्मिक-पूजा आदि करने की आज्ञा नहीं दी गई। घुरिए कहते हैं कि अन्तः विवाह की उत्पत्ति सर्वप्रथम गंगा के मैदान में रहने वाले ब्राह्मणों में हुई और अन्तःविवाह एक जाति-व्यवस्था के अन्य तत्वों को वही से ब्राह्मणों के अनुयायियों ने देश के अन्य भागों में फैलाया। घुरिए ब्राह्मणवादी सिद्धान्त के मुख्य प्रतिपादक के साथ-साथ जाति के प्रजातीय सिद्धान्त को भी स्वीकार करते हैं। ये अपने जाति के विश्लेषण में मुख्य रूप से इसके 6

गुण-धर्मों (लक्षणों) का उल्लेख करते हैं[4], जो कि निम्नवत् है :-
1. समाज का खण्डात्मक विभाजन
2. संस्तरण
3. भोजन व सामाजिक व्यवहार पर नियंत्रण
4. विभिन्न उपविभागों की नागरिक तथा धार्मिक नियोग्यताएं तथा विशेषाधिकार
5. निर्बाध व्यवसाय के चुनाव का अभाव तथा
6. विवाह पर नियंत्रण।

उपरोक्त सभी 6 विशेषताओं में घुरिए ने समाज के खण्डात्मक विभाजन को सबसे महत्वपूर्ण विशेषता मानते हैं। ये स्पष्ट करते हैं कि जाति-व्यवस्था द्वारा बँधे समाज में हमारी भावना भी सीमित होती है, सामुदायिक भावना सम्पूर्ण मनुष्य समाज के प्रति न होकर केवल जाति के सदस्यों तक सीमित होती है तथा जातिगत आधार पर सदस्यों को प्राथमिकता दी जाती है। जाति खण्डात्मक समाज नहीं है, अपितु जाति समाज का खण्डात्मक विभाजन करती है। फिर भी जाति-व्यवस्था के भविष्य के बारे में घुरिए के विचार वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित नहीं दिखते हैं। ये जाति के निराशावादी विचारक हैं, जो जाति को अविलम्ब समाप्त होते देखना चाहते थे। इसीलिए ये अन्तर्जातीय विवाहों का प्रोत्साहन करने की बात करते हैं। किन्तु आज जहाँ पहचान का संकट व्यक्ति को उसकी नृजातीय विशेषता की ओर उन्मुख कर रहा है, ऐसे समय जाति का पूर्ण समाप्ति का विचार तर्कसंगत नहीं लगता है। इसके साथ ही ये जाति के प्रकार्यात्मक पक्षों की अवहेलना करते हैं, क्योंकि जिस जाति व्यवस्था का विश्लेषण ये श्रम विभाजन के आधार पर किए थे, उसी की पूर्ण समाप्ति का विचार तर्कसंगत नहीं दिखता है। फिर भी जाति-व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के सन्दर्भ में इनके विचार महत्वपूर्ण हैं।

एस.वी. केतकर- एस. वी. केतकर[5] अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ कास्ट इन इण्डिया' में लिखते हैं कि "जाति जिस रूप में आज है उसे एक सामाजिक समूह के रूप में समझा जा सकता है जो मुख्यत: दो विशेषताओं से मिलकर बनता है-पहले यह कि इसके सदस्य जन्म से ही बन जाता है, दूसरे सभी सदस्य अत्यन्त कठोर समाजिक नियम द्वारा समूह से बाहर विवाह करने से रोक दिए जाते हैं।" वास्तव में जाति का सारतत्व अन्त:विवाह ही है अर्थात् एक जाति के व्यक्ति को विवाह अपनी जाति में ही करना होता है। यह निषेध आज बहुत जगहों में जाति तक नहीं वरन् उपजाति सीमित हो गया है। जाति-व्यवस्था के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह वर्जित किया गया है। व्यवहारिक रूप से अन्त:विवाह की भौगोलिक सीमाओं में बँधा है तथा एक जाति की कई उपजातियाँ भी अपने-अपने प्रान्त की उप-जातियों में ही विवाह करती है।

मजूमदार एवं मदन- मजूमदार एवं मदन[6] ने जाति को परिभाषित करते हुए अपनी पुस्तक 'इन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलाजी' में लिखते हैं कि "जाति एक बन्द वर्ग है।" मजूमदार जाति उत्पत्ति के प्रजातीय सिद्धान्त तथा परम्परावादी सिद्धान्तों से अपनी सहमति प्रकट करते हैं। इनका कहना है कि जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति में प्रजातीय मिश्रण एवं प्रजातीय शुद्धता की धारणा महत्वपूर्ण है। ऊँच-नीच की धारणा और उपजातियों का निर्माण प्रजातीय कारणों के कारण हुआ। आर्यों के भारत आगमन के पूर्व ही उनमें सामाजिक विभाजन विद्यमान था, क्योंकि आर्य रंग के आधार पर उस समय तीन

वर्गों में बँटे थे। इस प्रकार मजूमदार[7] के शब्दों में ''वर्गीय संस्कृति एक प्रजातीय सम्पर्क के कारण भारत में विभिन्न सामाजिक वर्ग बने तथा अन्त:विवाही समूह उनके बने जो अपनी सामाजिक शुद्धता तथा साँस्कृतिक एकता के प्रति सचेत रहे हैं।'' इस प्रकार आर्यों के भारत आगमन के बाद भी भारत में विभिन्न प्रजातियों का आगमन व आक्रमण जारी रहा, जिसके परिणामस्वरूप भारत में सामाजिक संगठन का निर्माण हुआ। इस सामाजिक संगठन में प्रत्येक जाति का पद उसके रक्त की शुद्धता एवं अन्य सामाजिक समूहों से उसके अलगाव के आधार पर निर्धारित हुआ। इस प्रक्रिया में ब्राह्णों ने सबसे अधिक प्रजातीय शुद्धता को बनाए रखा। इसके साथ ही भारत की अनेक जनजातीय समूह भी अपनी रक्त की शुद्धता को बनाए रखी, किन्तु जब इनका अन्य समूहों के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका तो इन्हें निम्न स्थिति प्राप्त हुई। इन उच्च एवं निम्न स्थिति के समूहों के बीच कई ऐसे समूहों का भी निर्माण हुआ जो रक्त शुद्धता एवं साँस्कृतिक सम्पर्क की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता रखते थे और इसी आधार पर विभिन्न सामाजिक समूहों के जन्म की जिस व्यवस्था का निर्माण हुआ उसे हिन्दू जाति-व्यवस्था कहा गया।

हरवर्ट एच. रिजले- हरवर्ट रिजले ने अपनी पुस्तक ''दी पीपुल्स आफ इण्डिया'' में जाति के उत्पत्ति के प्रजातीय सिद्धान्त को देते हैं। ये लिखते[8] हैं कि ''यह परिवारों या कई परिवारों का संकलन है जिसकी एक सामान्य नाम दिया गया है, जो किसी काल्पनिक पूर्वज या देवता से अपनी उत्पत्ति मानता है तथा पैतृक व्यवसाय को स्वीकार करता है और जो लोग विचार कर सकते हैं उन लोगों के लिए एक सजातीय समूह के रूप में स्पष्ट होता है।'' ये भारत में जाति की उत्पत्ति के निम्न 6 कारणों का उल्लेख करते हैं-प्रजातीय सम्पर्क, प्रजातीय सम्पर्क से उत्पन्न वर्ण संकरता, वर्ण भेद की भावना, देशान्तर गमन से बनी जातियाँ, मूल निवासियों की एक सम्पूर्ण जनजाति, जो हिन्दू धर्म की श्रेणी में एक नई जाति या जनजाति के नाम से प्रवेश हुई, विभिन्न रीति-रिवाजों के परिवर्तन से उत्पन्न हुई जातियाँ। इनका मानना है कि प्रजातीय भिन्नता तथा अनुलोम विवाह के कारण जाति अस्तित्व में आयी। इनका विचार है कि भारत में शुरू से जाति नहीं थी, अपितु इसका आरम्भ भारत में आर्यों के आगमन के बाद होता है। अनुलोम और कुलीन विवाह के कारण जाति की उत्पत्ति हुई। विजित और विजेता में सामाजिक दूरी की नीति को अपनाने में वर्ण-संकरण का जन्म हुआ और इस वर्ण-संकरण ने नये-नये समूहों का निर्माण किया तथा यही वर्ण संकरता भारतीय जाति-व्यवस्था का आधार स्तम्भ रहा है। इस प्रकार भारत में प्रजातीय मिश्रण एवं प्रजातीय विशुद्धता भी धारणा से जाति-व्यवस्था का जन्म हुआ।

एन.के. दत्त- एन.के. दत्त[9] ने अपनी पुस्तक ''ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया'' में जाति को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि ''एक जाति के सदस्य जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं। अन्य जाति के लोगों के साथ भोजन करने और पानी पीने के सम्बन्ध में इसी प्रकार के परन्तु कुछ कम कठोर नियंत्रण हैं। अनेक जातियों में कुछ व्यवसाय है। जातियों में संस्तरणात्मक श्रेणियाँ है, जिनमें सर्वोपरि ब्राह्णों की सर्वोच्च स्थिति है। मनुष्य की जाति का निर्णय जन्म से होता है। यदि व्यक्ति नियमों को भंग करने के कारण जाति से बाहर न निकाल दिया गया हो तो एक जाति से दूसरी जाति में परिवर्तन होना सम्भव नहीं है।'' इस प्रकार दत्त जाति-व्यवस्था के निम्न 6 लक्षणों का उल्लेख करते हैं-

1. सभी जातियों और उपजातियों में उच्च-निम्न का संस्तरण होता है, जिसमें ब्राह्ण की

स्थिति सर्वोच्च है।

2. जन्म लेने मात्र से ही व्यक्ति की जाति हमेशा के लिए निश्चित हो जाती है। केवल जाति के नियमों के विपरीत कार्य करने से ही व्यक्ति अपनी जाति से बहिष्कृत होता है। वरना व्यक्ति एक जाति से दूसरी जाति में नहीं जा सकता है।
3. ब्राह्णों की प्रतिष्ठा के आधार पर ही पूरी जाति-व्यवस्था टिकी है।
4. जाति अन्त:विवाही समूह है।
5. प्रत्येक जाति में भोजन व खान-पान सम्बन्धी निषेध होते हैं, जिसे सदस्यों को पालन करना पड़ता है तथा प्रत्येक सदस्य अपनी जाति से बाहर भोजन नहीं कर सकता है।
6. प्रत्येक जाति के सदस्य एक निश्चित पेशे का पालन करते हैं।

जे.एच. हट्टन- जे.एच. हट्टन ने जाति को 1931 की जनगणना की रिपोर्ट प्रस्तुत करते समय अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इण्डिया' में दिया है। हट्टन[1] जाति को स्पष्ट करते हुए इसके तीन पक्षों-पैतृक व्यवसाय, विवाह खान-पान व सामाजिक सम्पर्क सम्बन्धी निषेध तथा ऊँच-नीच का संस्तरण का उल्लेख किया है। इनका मानना है कि जाति-व्यवस्था एक अनोखी व जटिल संस्था है जो केवल भारत में ही पायी जाती है। इनका मानना है कि जाति-व्यवस्था आर्यों के आगमन के पूर्व ही भारत में विद्यमान थी। दुर्गम आदिम समूहों में भी जाति की कुछ विशेषताएँ एवं प्रथाएँ देखने को मिलती हैं। भारत में प्रत्येक ग्राम एक स्वतंत्र राजनैतिक इकाई थी तथा प्राय: ग्रामवासी एक ही पेशे को अपनाते थे अर्थात् पेशे एवं अन्य आधारों के आधार पर ग्रामों में श्रम-विभाजन विद्यमान था। ये जाति में पाए जाने विभिन्न निषेधों (जैसे, खान-पान, विवाह, सहवास आदि) को माना या टैबू के आधार पर स्पष्ट किया है तथा जाति की उत्पत्ति का आदिम संस्कृति या माना का सिद्धान्त दिया है। माना एक अलौकिक व अशरीरी शक्ति है जो प्रत्येक वस्तुओं में कम या अधिक मात्रा में पायी जाती है। इसके साथ ही माना स्पर्श द्वारा हस्तान्तरित होती है तथा अच्छा-बुरा प्रभाव छोड़ती है। भारत में आर्यों के आने से पूर्व ही यह सामाजिक विभाजन विद्यमान था और आर्यों ने माना सम्बन्धी भेदभाव देखकर इसे और स्पष्ट रूप दे दिया, जिसके फलस्वरूप जाति-व्यवस्था में अनेक निषेध आए। इनके अनुसार भारतीय समाज के ढाँचे में चार तत्व- पेशे के आधार पर समाज का विभाजन, इण्डो-आर्यन की वर्ग प्रणाली तथा जनजातियों की सामाजिक प्रणाली की अर्न्तक्रिया, जनजातियों का निषेधों के प्रति मनोदशा तथा विचित्र, अपरिचित वस्तुओं और व्यक्तियों के कुसंस्कार, विद्यमान थे। इन चारों तत्वों में जब कठोरता आ गई अर्थात् भेदभाव कठोर हो गये, तभी जाति-व्यवस्था अपने अस्तित्व में आयी।

श्रीनिवास, एम.एन.- एम.एन. श्रीनिवास जाति को क्षेत्रीय भारतीय प्रघटना मानते हुए स्पष्ट करते हैं कि भारतीय यथार्थता को न तो विदेशी अवधारणाओं के आधार पर और न ही इण्डोलाजी के आधार पर ही स्पष्ट किया जा सकता है। अपितु ये भारतीय समाज को जानने के लिए क्षेत्रीय कार्य और क्षेत्रीय अनुभव पर बल देते हैं। इनका मानना है कि जाति हिन्दू समाज का संरचनात्मक आधार है, जिसमें प्रत्येक जाति दूसरी-जातियों से कई आधारों पर अलग होती है, जैसे-अन्त:विवाह, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की एक समानता, सदस्यों की सामान्य संस्कृति। ये जाति के निम्न 9 लक्षणों[11] का उल्लेख करते हैं :-

1. संस्तरण/पदानुक्रम (Hierarchy)
2. अन्त: विवाह तथा अनुलोम विवाह (Endogamy and Hypergamy)

3. व्यवसायिक सम्बद्धता
4. भोजन, जलपान एवं धूम्रपान पर प्रतिबंध
5. प्रथा, भाषा एवं पहनावे का भेद
6. अपवित्रीकरण
7. संस्कार एवं अन्य विशेषाधिकार तथा निर्योग्यताएँ
8. जाति संगठन तथा
9. जाति गतिशीलता

श्रीनिवास[12] अपनी पुस्तक "Religion and Society among the Coorgs of South India" में जातीय सोपान क्रम के बीच के क्षेत्र को लचीली प्रकृति वाला स्वीकार करके जाति-व्यवस्था में गतिशीलता की प्रक्रिया को संस्कृतिकरण के द्वारा स्पष्ट किया है। ये सोपान क्रम को जाति-व्यवस्था का सारतत्व मानते हैं, जिसमें प्रत्येक जाति को शुचिता एवं प्रदूषण के आधार पर प्रस्थिति प्राप्त हो जाती है। विभिन्न जातियाँ अपनी प्रस्थिति को ऊँचा करने के लिए प्रदूषण से सम्बन्धित गुण-धर्म को त्याग करके ऊँची-जाति के गुण धर्मों को अपनाते हुए अपनी प्रस्थिति को उच्च कर लेती है। इनका पद्धति शास्त्रीय दृष्टिकोण संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक रहा है। ये सर्वप्रथम वर्ण तथा जाति में अन्तर करते हैं तथा पंचम वर्ण की अवधारणा का उल्लेख करते हैं। ये वर्ण-व्यवस्था को राष्ट्रीय प्रघटना मानते हैं, जबकि जाति व्यवस्था को क्षेत्रीय प्रघटना मानते हैं। वर्ण-व्यवस्था आइडल टाइप है, जबकि जाति-व्यवस्था रियल टाइप है। "Caste in Modern India and other Essays"[13] के द्वितीय अध्याय में अपने एक लेख 'Varna and Caste' में पंचम वर्ण का विचार देते है तथा वर्ण एवं जाति के बीच अन्तर करते हैं। पंचम वर्ण में अछूत, गैर हिन्दू एवं जनजातियों को रखते हैं। ये जाति गत्यात्मकता, अन्तर्जातीय सम्बन्धों की यथार्थता एवं उसकी गतिकी को समझने के लिए ही संस्कृतिकरण, प्रभुजाति, पश्चिमीकरण एवं लौकिकीकरण की अवधारणाओं को जन्म देकर इसे पद्धति शास्त्रीय उपकरण के रूप में प्रयोग किया है। ये संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में जाति संरचना पर ज्यादा बल दे देते हैं, जबकि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को देश में सीमित आकार का मान लेते। फिर भी इनका जाति सम्बन्धी क्षेत्र-कार्य अध्ययन संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम का प्रतिबिम्ब है। आज जाति अपना स्वरूप परिवर्तित कर रही है। जाति ने प्रजातंत्र, राष्ट्रीय विकास एवं आधुनिकीकरण में सहायक रही है। श्रीनिवास[14] कहते हैं कि यह तर्क का अच्छा विषय है कि आधुनिक भारत में जातीय चेतना व संगठन में वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए भारतीय नगरों में जातीय बैंकों, छात्रावासों, सहकारी समितियों, धर्मशालाओं, विवाह-भवनों, सम्मेलनों व पत्रिकाओं को देखिए। इस प्रकार जहाँ घुरिए जाति को अखिल भारतीय प्रघटना, आइडल टाइप एवं कारण के रूप में देखते हैं। वही श्रीनिवास जाति को क्षेत्रीय भारतीय प्रघटना, रीयल टाइप एवं प्रभावक के रूप में देखते हैं।

के.एल. शर्मा- के.एल. शर्मा[15] कहते हैं कि जाति-व्यवस्था की उत्पत्ति के बारे में काल्पनिक सिद्धान्तों की चर्चा बन्द हो गई है। आज असली बात तो यह है कि हम इसकी उत्पत्ति की चर्चा नहीं करते हैं, अपितु भारतीय समाज में जाति के उद्भव के स्तरों की व्याख्या करने लगे हैं। इनका मानना[16] है कि आज जाति में वर्ग की विशेषता तथा वर्ग में जाति की विशेषताएँ देखने को मिल रही हैं। प्रत्येक जाति में उच्च से उच्च तथा निम्न से निम्न वर्ग देखने को मिल रही है।

इसी तरह प्रत्येक वर्ग में उच्च से उच्च तथा निम्न से निम्न जातियाँ देखने को मिल रही हैं। अत: आज जाति में वर्ग की विशेषता तथा वर्ग में जाति की विशेषता आ रही है।

हीरा सिंह- हीरा सिंह[17] अपने अध्ययनों के अन्तर्गत अपनी पुस्तक- ''रिकास्टिंग ऑफ कास्ट सिस्टम : फ्राम सेक्रेट टू प्रोफेन'' में स्पष्ट करते हैं कि हिन्दुओं में जाति-व्यवस्था तो कमजोर हुई है, किन्तु धर्म कमजोर नहीं हुआ है। विदेशों में बसे भारतीयों में जातीय चेतना कमजोर हुई है, जबकि अपने धर्म के प्रति लोगों की आस्था बढ़ी है। ये सर्वप्रथम इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि जाति धर्म नहीं है तथा धर्म जाति नहीं है। इसके साथ ये यह भी स्पष्ट करते हैं कि आज जाति तो यथावत बनी हुई है, जबकि जातीय व्यवस्था कमजोर हुई है। इस प्रकार हीरा सिंह अपने अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट करते हैं कि हिन्दुओं में जाति तथा धर्म दोनों मजबूत हुआ है।

योगेन्द्र सिंह- योगेन्द्र सिंह जाति को स्पष्ट करने के लिए दो दृष्टिकोणों संरचनात्मक दृष्टिकोण एवं साँस्कृतिक दृष्टिकोण का प्रयोग किया है। संरचनात्मक दृष्टिकोण (व्यवहारिक दृष्टिकोण) के अन्तर्गत जब जाति को आँचलिक दृष्टि से देखा जाता है तब जाति विशिष्ट प्रघटना हो जाती है तथा जब जाति को सार्वभौमिक दृष्टि से देखा जाता है तो जाति थोड़ी बहुत विशिष्ट होकर सामान्य रूप से सार्वभौमिक प्रघटना बन जाती है। इसी तरह साँस्कृतिक दृष्टिकोण के अन्तर्गत जब आँचलिक दृष्टि से जाति को देखा जाता है तो जाति साँस्कृतिक रूप से विशिष्ट प्रघटना बन जाती है तथा जब जाति को सार्वभौमिक दृष्टि से देखा जाता है तो जाति साँस्कृतिक दृष्टि से सामान्य प्रघटना बन जाती है। इस प्रकार ये स्पष्ट करते हैं कि जाति संस्तरण संरचनात्मक तथा व्यवस्थापक दोनों पक्षों से जुड़ा हुआ है। जो लोग जाति को साँस्कृतिक दृष्टि से देखते हैं, वे इसे प्रारम्भ से ही गैर बराबरी से जोड़ देते हैं। ये[18] जाति को प्रस्थिति के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किए हैं। ये कहते हैं कि भारतीय संस्तरण व्यवस्था में जाति तथा वर्ग एक दूसरे से इस प्रकार जुड़ा हुआ है कि इन्हें अलग कर पाना बड़ा कठिन है अर्थात् जाति तथा वर्ग के एक बिन्दु पर आकर मिलने से यह स्पष्ट कर पाना बड़ा कठिन है कि जाति संस्तरण कहाँ से समाप्त होता है तथा वर्ग संस्तरण कहाँ से शुरू होता है। अगर हम परम्परागत रूप से जाति-व्यवस्था को देखते हैं तो पाते हैं कि उच्च जाति के लोग सामान्यत: आर्थिक दृष्टि से भी उच्च हैं। जाति-व्यवस्था भारतीय समाज में एक सुदृढ़ व्यवस्था रही है, जिसने अपने अन्दर वर्ग-व्यवस्था को नीचे दबाए रखा है और इसे उभरने नहीं दिया है और लोगों की जागरूकता व वफादारी जाति के प्रति रही है न कि वर्ग के प्रति। औद्योगीकरण व नगरीकरण ने निश्चित रूप से जाति के स्वरूप को बदलने का प्रयास किया है। किन्तु यह समाप्त न होकर केवल इसके स्वरूप में ही परिवर्तन आया है। टी.बी. बोटोमोर के अनुसार-''.... औद्योगीकरण के प्रभावों के बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है और भारत की तुलना में पश्चिमी देशों के साथ करना भी भ्रामक हो सकता है .... क्योंकि वहाँ संयुक्त परिवार और जाति प्रणाली नहीं है।''

दीपांकर गुप्ता- दीपांकर गुप्ता[19] कहते हैं कि जाति-व्यवस्था भारतीय समाज में ऐसी पैठ गई है कि इसे पृथक करना बड़ा कठिन है। ये पश्चिमी उत्तर प्रदेश के जाटों का अध्ययन के द्वारा जाति-व्यवस्था का अध्ययन करते हैं। इनका मानना है कि जाट प्रभुजाति (सम्पन्नवान) है, किन्तु सामाजिक, कर्मकाण्डीय एवं धार्मिक रूप से निम्न हैं। ये सुविधा सम्पन्न होने के बावजूद अपने को पिछड़ेपन हेतु आरक्षण की माँग करते हैं। इसके साथ ही ये जाति विशेष के

कुछ विशेष-गुण धर्मों का भी उल्लेख करते हैं, जैसे-नाई चालाक होता है। ये कहते हैं कि भला उस वर्ण-व्यवस्था का क्या हो सकता है, जिससे जाट लोग ब्राह्णों को नाई कहते हैं। ये जाटों का कैन्सर आफ फार्म कहते हुए इन्हें सबसे अधिक घृणित मानते हैं।

मेण्डल वाम- मेण्डल वाम[2] ने अपनी पुस्तक सोसायटी इन इण्डिया में सर्वप्रथम जाति-व्यवस्था में संलयन की बात करते हैं। बिहार के अध्ययन के आधार पर जब विभिन्न जातियाँ जुड़कर एक हो जाती हैं, तो इसे जाति का संलयन कहते हैं तथा जब विभिन्न जातियाँ टूटकर अलग-अलग हो जाए तो इसे जाति का विखण्डन कहते हैं। इसके साथ ही जाति-व्यवस्था में ये शूद्रों को अवशेष श्रेणी में रखते हैं।

आन्द्रे बेते- आन्द्रे बेते श्रीपुरम् गाँव के अध्ययन के द्वारा जाति संरचना का संस्तरणवादी परिप्रेक्ष्य के तीनों सूत्रों (जाति, वर्ग एवं शक्ति) के द्वारा करते हैं। ये अपनी पुस्तक "कास्ट, क्लास एण्ड पावर"[21] में फील्ड वर्क के द्वारा जाति का आनुभविक अध्ययन करते हैं। ये ड्यूमा के इस मत का विरोध करते हैं कि जाति सर्वत्र है तथा निरन्तरता (सम्पूर्णता) में है। इनका मानना है कि जाति भारत में एक सी है तथा निरन्तरता (सम्पूर्णता) में नहीं है अर्थात् जातीय सम्बन्धों में जातियाँ स्वतंत्र हैं तथा एकजुटता की व्यवस्था नहीं है। जहाँ जाति को धार्मिक व वैधानिक मान्यताएं तथा अनौपचारिक शक्ति प्राप्त होती है। वही वर्ग को धार्मिक व वैधानिक मान्यताएं प्राप्त नहीं थी। यद्यपि विभिन्न दलों के सम्पर्क, पंचायतीराज व्यवस्था, वयस्क मताधिकार इत्यादि के कारण वर्गों को औपचारिक शक्ति प्राप्त थी। जाति में पारस्परिक निर्भरता, निश्चित व्यवसाय तथा अपराध के सन्दर्भ में जाति के आधार पर सजा का प्रावधान था। इसके साथ ही श्रीपुरम गाँव में प्रत्येक जाति का एक निश्चित व्यवसाय था तथा प्रत्येक जाति का व्यवसाय दूसरी जातियों से जुड़ा था अर्थात् व्यवसाय में पारस्परिक विरोध न होने के बावजूद भी पारस्परिक निर्भरता बनी हुई थी। अंततः जाति और वर्ग दोनों शक्ति के साथ जुड़ जाते हैं। जाति और वर्ग दोनों सामाजिक भेदभाव को व्यक्त करते हैं। वेबरवादी उपागम का भारत में सर्वप्रथम अध्ययन आन्द्रे बेते ही करते हैं। किन्तु संस्तरण के अध्ययन में बेवर पहले वर्ग को स्थापित करते हैं तथा बाद में जाति को स्थापित करते हैं अर्थात् संस्तरण के अध्ययन में वर्ग को महत्व देते हैं तथा संस्तरण के अध्ययन में उदासीन नहीं दिखते हैं। जबकि आन्द्रे बेते अपने अध्ययन में पहले जाति को स्थापित करते हैं तथा बाद में वर्ग को स्थापित करते हैं। बेते वर्ग की अपेक्ष जाति को महत्व देते हैं। जातियों का सम्बन्ध आर्थिक व राजनैतिक संस्थाओं से हो जाने से जातियाँ शक्ति प्राप्त कर लेती हैं। किन्तु जातीय सम्बन्धों में जातियाँ स्वतंत्र हैं तथा उनमें एकजुटता की व्यवस्था नहीं है। इसके साथ ही बेते यह कहते हैं कि जाति सीमित क्षेत्र में न होकर विस्तृत क्षेत्रों तक फैली हुई है।

सदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. कूले, सी.एच., "सोशल आर्गनाइजेशन", पृ. 11, फरगटेन बुक प्रकाशक
2. ड्यूमा, लूई, "होमो हायरार्किकस : दी कास्ट सिस्टम एण्ड इट्स इम्लीकेशन्स", विकास प्रकाशन, दिल्ली, 1966
3. मदन, टी.एन. (1999), 'लुई ड्यूमा', कान्ट्रीब्यूशन्स टू इण्डियन सोशियोलाजी, 'ड्यूमा आन द नेचर आफ कास्ट', इन गुप्ता, दीपांकर, सोशल स्ट्रैटीफिकेशन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, डेलही
4. घुरिए, जी.एस., "कास्ट, क्लास एण्ड आक्यूपेशन", पृ. 174, बाम्बे पापुलर बुक डिपो प्रकाशक

5. केतकर, एस.वी., ''हिस्ट्री आफ कास्ट इन इण्डिया'', रावत पब्लिकेशन
6. मजूमदार, डी.एन. एवं मदन, टी.एन., ''एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल एन्थ्रोपोलाजी'', पृ. 12, एशिया पब्लिक हाउस प्रकाशक
7. वही, पृष्ठ 6
8. रिजले, हरवर्ट एच., ''दी पीपुल्स आफ इण्डिया'', पृ. 5, बुक आफ आल प्रकाशक
9. दत्त, एन.के., ''ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इण्डिया'', पृ. 4, कल्पाज प्रकाशक
10. हट्टन, जे.एच., ''कास्ट इन इण्डिया'', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
11. श्रीनिवास, एम.एन., 'सोशल स्ट्रक्चर' द गजटर आफ इण्डिया (इण्डियन यूनियन), वाल्यूम 1, 5
12. श्रीनिवास, एम.एन., ''रिलिजन एण्ड सोसायटी अमांग द कुर्ग्स आफ साउथ इण्डिया'', आक्सफोर्ड : आक्सफोर्ड क्लरेन्डन प्रेस
13. श्रीनिवास, एम.एन., ''कास्ट इन माडर्न इण्डिया एण्ड अदर एसे'', द्वितीय अध्याय, लेख 'वर्ण एण्ड कास्ट', राजकमल प्रकाशन
14. श्रीनिवास, एम.एन., ''कास्ट इन माडर्न इण्डिया एण्ड अदर एसे'', राजकमल प्रकाशन
15. शर्मा के.एल., ''सोशल स्ट्रैटीफिकेशन इन इण्डिया : इसू एण्ड थीम्स'', सेज प्रकाशन, नई दिल्ली
16. शर्मा, के.एल., ''सोशल इनइक्यूलिटी इन इण्डिया : प्रोफाइल आफ कास्ट, क्लास एण्ड सोशल मोबिलिटी'', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर
17. सिंह, हीरा, ''रिकास्टिंग आफ कास्ट सिस्टम : फ्राम सेक्रेट टू प्रोफेन'', सेज इण्डिया प्रकाशक
18. सिंह, योगेन्द्र, ''सोशल स्ट्रैटीफिकेशन एण्ड चेन्ज इन इण्डिया'', मनोहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1985
19. गुप्ता, दीपांकर, ''सोशल स्ट्रैटीफिकेशन'', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
20. मेण्डल वाम, ''सोसायटी इन इण्डिया'', पापुलर प्रकाशक
21. बेते, आन्द्रे, ''कास्ट, क्लास एण्ड पावर : चेन्जिग पैटनर्स आफ स्ट्रैटीफिकेशन इन ए तंजौर विलेज'', बर्कले : यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1965

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

कोल जनजाति में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया (ग्राम पंचायत धौचट के विशेष संदर्भ में)

• के.के. शर्मा
•• रेखा तिवारी

सारांश- भारतीय समाज के सन्दर्भ में आधुनिकता की अवधारणा विशेष महत्व की है। इसका कारण यह है कि आधारभूत रूप में भारत एक परम्परागत समाज रहा है और अंग्रेजी शासन स्थापित होने से पहले तक बहुत कुछ यही स्थिति बनी हुई थी। इस देश में अंग्रेजों के पैर जम जाने के बाद हमारा सम्पर्क धीरे-धीरे आधुनिक विश्व के साथ हुआ और उसके साथ ही इस देश ने न केवल आधुनिक यातायात व संचार के साधनों, आधुनिक मशीनों या औद्योगिक तथा आधुनिक साज व सामानों को अपनाना प्रारम्भ किया अपितु आधुनिक रीति-रिवाज, व्यवहार के ढंग, मूल्यों तथा आदर्शों को भी अपनाया। चूँकि यह सब आधुनिक तत्व पश्चिमी देशों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप ही हुआ, इस कारण कुछ लोग आधुनिकता तथा पश्चिमीकरण की प्रक्रियाओं को एक ही मान लेने की गलती करते हैं। इन दोनों अवधारणाओं में स्पष्ट भेद हैं। भारतीय समाज के सन्दर्भ में आधुनिकता परम्परागत जीवन तरीकों में आधुनिक तत्वों के सम्मिलित होने की प्रक्रिया है।

मुख्य शब्द- लोकतंत्र, जनमत, लोकसत्ता, राजनीतिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक सरकार

प्रोफेसर एम. एस. गोरे के अनुसार आधुनिकता एक जटिल अवधारणा है क्योंकि जिन समाजों को हम 'आधुनिक' कहते हैं उनमें भी पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। आपका मत है कि जब हम आधुनिकता शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारा तात्पर्य मुख्यत: देश की अर्थव्यवस्था को आधुनिक स्तर पर लाने से ही होता है।[1] प्रो. बी.वी. शाह उपरोक्त मत से सहमत नहीं हैं। आपके मतानुसार आधुनिकता केवल एक आर्थिक प्रक्रिया मात्र ही नहीं है, अपितु राजनैतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक प्रक्रिया भी है। यह एक बहुपक्षीय व जटिल प्रक्रिया है जो कि एक समाज विशेष के सदस्यों के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करती है। श्री एडिटा वजास के अनुसार, आधुनिकता आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में विविध अन्त:सम्बन्धित परिवर्तनों की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कम विकसित समाज अधिक विकसित समाजों की विशेषताओं को प्राप्त कर लेते हैं।[2] डॉ. श्यामा चरण दुबे के अनुसार, आधुनिकता एक प्रक्रिया है जो परम्परागत समाज से प्रौद्योगिकीकरण पर आधारित समाज की ओर अग्रसर होती है। डॉ. सी.ई. ब्लैक के अनुसार, आधुनिकता एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ऐतिहासिक रूप में सम्बद्ध संस्थाएँ परिवर्तित होते हुए नवीन कार्यों को तीव्रता से अपनाती है, जिससे व्यक्तियों के ज्ञान में वृद्धि होती है और जो वैज्ञानिक ज्ञान को प्रोत्साहित करती है।

भारतीय समाज में भी आधुनिकता की प्रक्रिया क्रियाशील है। आधुनिकता की यह प्रक्रिया भारत के नगरीय समुदायों में ही अधिक स्पष्ट रूप में क्रियाशील है। इसका कारण भी स्पष्ट है। भारत के नगरों में आज बड़े-बड़े उद्योगों, मिल व कारखानों आदि की स्थापना हो गई है जहाँ कि आधुनिक जटिल मशीनों व तकनीकों की सहायता से उत्पादन का कार्य होता

• प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
•• एम.फिल्. द्वितीय सेमेस्टर, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

है। फलतः प्रौद्योगिकीय विकास का आधुनिक रूप भारतीय नगरों, विशेषकर बड़े नगरों में देखने को मिलता है। विज्ञान की प्रगति के विभिन्न बढ़ते हुए चरण भी महानगरों में देखने को मिलते हैं। सामान्य एवं तकनीकी दोनों ही प्रकार की शिक्षा का विस्तार भी होता जा रहा है। सामाजिक गतिशीलता व सामाजिक विभेदीकरण भी भारतीय नगरों में सुस्पष्ट होता है। भारतीय नगरों में आज लोगों के जीवन में धर्म का प्रभाव, विशेषकर धार्मिक आडम्बर कम हो रहा है साथ ही सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा पाने का संघर्ष भी जारी है। संकीर्ण जातीय नियम दुर्बल पड़ते जा रहे हैं और हाल तक जिन्हें 'अछूत' समझा जाता था उन्हें भी समान सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक या वैधानिक अधिकार प्राप्त हो गए हैं। भारत के नगरों में अन्तर्जातीय विवाह और विधवा पुनर्विवाह को बुरा नहीं माना जाता है और प्रेम विवाह भी होते हैं। रेल, टी.वी., मोबाईल तथा अन्य यातायात व संचार के साधनों की सहायता से अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया भारतीय नगरों में स्पष्टतः क्रियाशील है। नवीन विचार, मूल्य, आदर्श तथा लक्ष्य आज भारतीय जीवन के आधार बन चुके हैं।

आधुनिकता की प्रक्रिया आज भारतीय ग्रामीण समुदायों में भी क्रियाशील है। गाँव का किसान आज आधुनिक ढंग से खेती करना सीख रहा है और इस काम में ट्रैक्टर तथा अन्य मशीनों का प्रयोग हो रहा है। सिंचाई के नवीन साधनों का प्रयोग किया जाने लगा है, अच्छे बीजों की किस्मों को वैज्ञानिक ढंग से, वैज्ञानिक खाद आदि का उपयोग करके उत्पादन किया जा रहा है तथा किसानों को वर्ष में कई बार फसल पैदा करने के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। भारतीय गाँवों में भी स्कूल आदि आदि अधिक खोलकर शिक्षा का विस्तार किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में ही प्रौढ़ शिक्षा और स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है। पुरानी परम्पराओं व कुरीतियाँ त्यागने के लिए आवश्यक वातावरण को भी उत्पन्न करने का प्रयास किया जा रहा है।[3]

ग्रामीण उद्योगों का भी मशीनीकरण हो रहा है। टी.वी. के माध्यम से ग्रामवासियों को नवीन व आधुनिक तकनीकी तथा विचारों से परिचित कराया जा रहा है और आवागमन के साधनों को बढ़ाकर उन्हें अन्य लोगों के सम्पर्क में लाने व उससे लाभ उठाने के अवसर प्रदान किए जा रहे हैं। भारतीय गाँवों में सामाजिक गतिशीलता की गति भी अब पहले से बढ़ गई है। उनके रहन-सहन का स्तर पहले से काफी ऊँचा उठा है और वे जाति व्यवस्था व धर्म सम्बन्धी अनेक अन्ध विश्वासों के प्रति सचेत होते जा रहे हैं। केवल आधुनिक विचारों को ही नहीं अपितु आधुनिक व्यवहार प्रतिमानों, खाने-पीने के ढंग, फैशन आदि का भी विस्तार ग्रामीण समुदायों में हो रहा है। अतः स्पष्ट होता है कि आधुनिकता की प्रक्रिया केवल भारत के नगरीय समुदायों में ही नहीं, अपितु ग्रामीण समुदायों को भी अपनी लपेट में ले रही है।

आधुनिकता की अवधारणा को प्रायः परिवर्तन से जोड़ा जाता है। जब समाज अपने परम्परागत मूल्यों से हटकर नवीन मूल्यों को ग्राह्य करने लगता है, और ये नवीन मूल्य उसकी वर्तमान अस्मिता की पहचान बनते हैं, तभी इस प्रक्रिया को आधुनिकीकरण का नाम दिया जाता है। समाजशास्त्रीय विचारक कैलाशनाथ शर्मा ने आधुनिकीकरण में तीन बातों को निहित पाया है - (1) पाश्चात्य संस्थाओं का अंगीकरण, (2) विज्ञानवाद, (3) मनुष्य की तर्कनापरकता। आधुनिकीकरण की पृष्ठभूमि में यह विचारधारा है कि श्वेत मनुष्य सभ्य है और अश्वेत यदि मनुष्य है तो भी असभ्य है। श्वेत मनुष्य पर यह भारत है कि

वह अश्वेत को सभ्य बनाए। जब अश्वेत भी स्वीकार कर लेता है कि विचारों के संचार का एक सेतु बन जाता है। उसकी स्वीकृति उसकी हीनभावना पर आधारित है। इसलिए वह निरन्तर श्वेत मनुष्य के पास आधुनिक होने का प्रमाण पाने के लिए दौड़ता रहता है। आधुनिकीकरण एक निश्चित उत्पाद नहीं है, जिसे एक बार पा लिया जाय तो काम बन जाय। यह एक प्रक्रिया है। तृतीय विश्व के देश आधुनिकीकरण की दौड़ में, जितना तेज दौड़ेगें, पाश्चात्य देशों से उतना ही पीछे रहते जायेगें, और इस प्रकार तृतीय विश्व का जो शोषण हो रहा है, उससे प्रथम और द्वितीय विश्व और अधिक आधुनिक हो जायेगें।[4]

आधुनिकीकरण की अवधारणा को विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोण से व्यक्त किया है। प्रख्यात समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास ने आधुनिकीकरण शब्द को पश्चिम की देन मानते हैं। किसी पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्पर्क के कारण किसी गैर पश्चिमी देश में होने वाले परितर्वनों के लिए प्रचलित शब्द है आधुनिकीकरण। उदाहरण के लिए डेनियल लर्नर ने ''पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण'' दोनों की उपयुक्तता पर विचार करके आधुनिकीकरण को स्वीकार किया है। उनके अनुसार आधुनिकीकरण में सर्पजनिक संस्थाओं और निजी आकांक्षाओं को स्पर्श करने वाली एक विक्षोभकारी प्रत्यक्षवादी भावना निहित है, पर प्रत्यक्षवादी भावना ही पर्याप्त नहीं है। संचार व्यवस्था में क्रान्ति भी आवश्यक है। आधुनिकीकरण की विशेषता बढ़ता हुआ नगरीकरण भी हे, जिसके परिणामस्वरूप साक्षरता का प्रसार होता है। साक्षरता से माध्यम जन्य संघात बढ़ता है, और अन्त में माध्यमों का बढ़ा हुआ संघात, अधिक व्यापक आर्थिक साझेदारी और राजनीतिक साझेदारी (मतदान) से सम्बद्ध है। आधुनिकीकरण में सामाजिक गतिशीलता भी निहित है। गतिशील समाज तर्क बुद्धि को प्रोत्साहन देना है, क्योंकि चुनाव की संभावनाएँ शक्ति के व्यवहार को निर्धारित करती हैं और पुरस्कारों को प्रतिबन्धित करती है। लोग समाज के भविष्य को निर्धारित की बजाय, परिवर्तनीय और निजी उन्नति को उत्तराधिकार की बजाय उपलब्धियों से जुड़ी मानने लगते हैं।[5]

मैरियन जे. लेवी के अनुसार ''मेरी आधुनिकता की परिभाषा शक्ति के जड़ स्रोतों और प्रयत्न के प्रभाव को बढ़ाने के लिए, उपकरणों के प्रयोग पर आधारित है। मैं इन दो तत्वों में से प्रत्येक को सातत्य का आधार मानता हूँ।[6] डॉ. राजकृष्ण ने आधुनिकता को, आधुनिकीकरण से व्यापक समझते हैं। इनके अनुसार आधुनिकता एक ऐसी संस्कृति को बताती है जिसकी विशेषता का निर्धारण तार्किकता, व्यापक रूप में उदार दृष्टिकोण, मतों की विविधता तथा निर्णय लेने से विभिन्न केन्द्र, अनुभव के विभिन्न क्षेत्रों को स्वायतता धर्म निरपेक्ष आचारशास्त्र तथा व्यक्ति के निजी संसार के प्रति आदर के रूप में होता है।[7] डॉ. एस. पी. दुबे के अनुसार आधुनिकता के फलस्वरूप व्यक्तियों में तर्क, परानुभूति, गतिशीलता एवं सहभागिता बढ़ती है। वे शिक्षा को आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण का एक सशक्त साधन मानते हैं, क्योंकि शिक्षा ज्ञान की वृद्धि करती है, मूल्यों तथा धारणाओं में परितर्वन लाती है, जो आधुनिकता के उद्देश्य तक पहुँचने के लिए बहुत आवश्यक है।[8] इस प्रकार उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिकता एक प्रकार से सामाजिक बदलाव है। इस बदलाव में पारम्परिक मूल्यों की जगह नवीन मूल्य लेते हैं और ये नवीन मूल्य सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने में विशेष योगदान देते हैं।

शोध विधि- सामाजिक सर्वेक्षण सामाजिक अनुसन्धान की एक प्रमुख विधि है। इसमें हम

विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करके सामाजिक जानकारियाँ प्राप्त करते हैं। सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे-रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज इत्यादि। इस पद्धति के द्वारा न केवल सामाजिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है अपितु समाज सुधार के उद्देश्य को सामने रखते हुए उन समस्याओं का समाधान ढूढ़ने का भी प्रयत्न किया जाता है।

सर्वेक्षण का शाब्दिक अर्थ ध्यानपूर्वक किसी वस्तु या घटना का सम्पूर्ण निरीक्षण, परीक्षण करना है। यदि यह निरीक्षण, परीक्षण सामाजिक जीवन या सामाजिक घटना से सम्बन्धित है तो इसे सामाजिक सर्वेक्षण कहते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि "सामाजिक सर्वेक्षण निरीक्षण परीक्षण की वह वैज्ञानिक पद्धति है जो कि किसी सामाजिक समूह अथवा सामाजिक जीवन के किसी पक्ष या घटना के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अध्ययन करने में प्रयुक्त होती है। सामाजिक सर्वेक्षण का सम्बन्ध किसी सामाजिक दशा, स्थिति अथवा परिस्थिति या समस्या से होता है। समुदाय के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी एक पहलू जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, मनोरंजन के सम्बन्ध में तथ्यों के बहुत कुछ व्यवस्थित व विस्तृत संकलन व विश्लेषण को ही मोटे तौर पर सर्वेक्षण कहते हैं। एक समुदाय के सम्पूर्ण जीवन या उसके किसी विशेष पक्ष के सम्बन्ध में वैज्ञानिक तौर पर तथ्यों के संकलन, विश्लेषण व निष्कर्षीकरण की वैज्ञानिक प्रणाली को सामाजिक सर्वेक्षण कहा जाता है।

सारणी क्रमांक 01

अध्ययनरत कोल परिवारों में आधुनिकता की समझ

सामाजिक प्रस्थिति	संख्या	आधुनिकता से परिचित	प्रतिशत	आधुनिकता से अपरिचित	प्रतिशत
विवाहित	100	75	75	25	25
अविवाहित	00	00	00	00	00
योग	100	75	75	25	25

स्रोत-व्यक्तिगत सर्वेक्षण

उपरोक्त सारणी से ज्ञात होता है कि ग्रमा धौचट के अधिकांश परिवारों में आधुनिकता की समझ है। 75.00 प्रतिशत परिवार मानते हैं कि उन्हें आधुनिकता की समझ है, 25.00 प्रतिशत परिवार मानते हैं कि उन्हें आधुनिकता क्या है इसकी जानकारी नहीं है।

सारणी क्रमांक 02

अध्ययनरत कोल जनजातियों की दृष्टि में आधुनिकता

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	विकास की मुख्य धारा से जुड़ना	30	30
2	आत्म निर्भरता का होना	20	20
3	पारिवारिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता हासिल होना	40	40
4	आर्थिक, सामाजिक रूप से सुदृढ़ होना	10	10
	योग	100	100

उपरोक्त सारणी के माध्यम से आधुनिकीकरण के प्रति ग्राम धौचट के कोल परिवारों के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया गया है। 30.00 प्रतिशत उत्तरदाता विकास की मुख्य धारा में जुड़ने को आधुनिकीकरण मानते हैं। आत्म निर्भर होना ही आधुनिकीकरण है इस धारणा को मानने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत 20.00 है। 40.00 प्रतिशत उत्तरदाता पारिवारिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करने को

आधुनिकीकरण मानते हैं, इसी तरह 10.00 प्रतिशत उत्तरदाता आर्थिक, सामाजिक रूप से सुदृढ़ होने को आधुनिकीकरण मानते हैं।

इस सर्वेक्षण से यह बात स्पष्ट होती है कि, ग्राम धौचट के अध्ययनरत कोल परिवार आधुनिकीकरण को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों पर अपनी दृष्टि रखते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के कोल समाज में अभी भी संशय के भाव बने हुए हैं। इसके पीछे प्राचीन और नवीन विचार धाराओं का अन्तर है। ग्रामीण समाज पुरानी मान्यताओं के ज्यादा करीब है इसलिए वे आधुनिकीकरण के नकारात्मक पक्ष पर ही विश्वास करते हैं।

सारणी क्रमांक 03

अध्ययनरत कोल परिवारों में आधुनिकीकरण का प्रभाव

सामाजिक प्रस्थिति	संख्या	सामाजिक रूप से स्वतंत्रता मिली	प्रतिशत	आत्मनिर्भर हुई	प्रतिशत	कोई परिवर्तन नहीं हुआ	प्रतिशत
विवाहित	100	40	40	30	30	30	30
अविवाहित	00	00	00	00	00	00	00
योग	100	40	40	30	30	30	30

उत्तरदाता ग्राम पंचायत धौचट जिला रीवा के उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के बाद ये तथ्य सामने आया है कि 40.00 प्रतिशत परिवार मानते हैं कि वे सामाजिक रूप से स्वतंत्र हुये हैं, इसी प्रकार 30.00 प्रतिशत मानते हैं कि आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण ही वे आत्मनिर्भर हो सके हैं। 30.00 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि आधुनिकीकरण के कारण उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

सारणी क्रमांक 04

कोल समाज का पुरानी रूढ़ियों पर विचार

सामाजिक प्रस्थिति	संख्या	रूढ़ियों को मानते हैं	प्रतिशत	नहीं मानते	प्रतिशत
विवाहित	100	25	25	75	75
अविवाहित	00	00	00	00	00
योग	100	25	25	75	75

स्रोत–व्यक्तिगत सर्वेक्षण

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि ग्राम धौचट के कोल परिवार के 75.00 प्रतिशत परिवार रूढ़ियों को नहीं मानते हैं। फिर भी रूढ़ियों को मानने वाले परिवारों का प्रतिशत 25.00 है।

निष्कर्ष- इस शोध पत्र में कोल जनजाति में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया (ग्राम पंचायत धौचट के विशेष संदर्भ में) को समझने का प्रयास किया गया है। 30.00 प्रतिशत उत्तरदाता विकास की मुख्य धारा में जुड़ने को आधुनिकीकरण मानते हैं। आत्म निर्भर होना ही आधुनिकीकरण है इस धारणा को मानने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत 20.00 है। 40.00 प्रतिशत उत्तरदाता पारिवारिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करने को आधुनिकीकरण मानते हैं, इसी तरह 10.00 प्रतिशत उत्तरदाता आर्थिक, सामाजिक रूप से सुदृढ़ होने को आधुनिकीकरण मानते हैं। साक्षात्कार से यह बात स्पष्ट होती है कि, ग्राम धौचट के अध्ययनरत कोल परिवार आधुनिकीकरण को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों पर

अपनी दृष्टि रखते हैं। ग्रामीण क्षेत्र के कोल समाज में अभी भी संशय के भाव बने हुए हैं। इसके पीछे प्राचीन और नवीन विचार धाराओं का अन्तर है। ग्रामीण समाज पुरानी मान्यताओं के ज्यादा करीब है इसलिए वे आधुनिकीकरण के नकारात्मक पक्ष पर ही विश्वास करते हैं। उत्तरदाता ग्राम पंचायत धौचट जिला रीवा के उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के बाद ये तथ्य सामने आया है कि 40.00 प्रतिशत परिवार मानते हैं कि वे सामाजिक रूप से स्वतंत्र हुये हैं, इसी प्रकार 30.00 प्रतिशत मानते हैं कि आधुनिकीकरण के प्रभाव के कारण ही वे आत्मनिर्भर हो सके हैं। 30.00 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि आधुनिकीकरण के कारण उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। इस तरह यह स्पष्ट होता है कि ग्राम धौचट के कोल परिवार के 75.00 प्रतिशत परिवार रूढ़ियों को नहीं मानते हैं। फिर भी रूढ़ियों को मानने वाले परिवारों का प्रतिशत 25.00 है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. M.S. Gore in A.R. Desai (Ed), Essay on "Modernization of under developed Societies, Vol. II, Thacker & Co., Bombay, 1971, P. 232
2. "Modernization is a process of manifold interelated changes in the economic, social political and cultural field, thought which less developed socities acquire the characteristics of more developed socities". Edita Vajas, P. 493
3. भारत में सामाजिक परिवर्तन – डॉ. रवीन्द्रनाथ मुकर्जी, पृ. 205
4. कैलाश नारायण शर्मा – आधुनिकीकरण, धर्मनिरपेक्षता और भारत "सामाजिक" अंक 1, पृ. 1
5. एम.एन. श्रीवास्तव – आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृ. 55
6. मेरियन जे.लेवी – काण्ट्रेस्टिंग फैक्टर इन द माडर्नाइजेशन ऑफ चाइना एण्ड जापान, पृ. 73
7. डॉ. राजकृष्ण – कोटेड वाई.ए.आर. शाह ट्रेडीशन एण्ड माडर्निटी इन इण्डिया, पृ. 19
8. एस.पी. दुबे – कण्टेमपरेरी इण्डिया एण्ड इट्स माडर्नाइजेशन, पृ. 15

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

वाक्शक्ति की दो गतिशील कलायें

• सुनीता द्विवेदी

सारांश- वाक्शक्ति की दोनों कलाओं काव्य और संगीत पर दृष्टि डालने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही कलाओं के द्वारा होने वाली अनुभूति और अभिव्यक्ति भिन्न है। संगीत का माध्यम विशुद्ध नाद है काव्य का माध्यम वर्गीकृत नाद है, संगीत का उपकरण स्वर है तो काव्य का उपकरण सार्थक शब्द है। संगीत अभिव्यक्ति प्रधान होकर हृदय के निकट है तो काव्य विचार प्रधान होकर बुद्धि के अधिक निकट है। यह भिन्नता होते हुये भी दोनों के मूल वाक्तत्त्व और श्रव्यगुण समान है। अतः ये दोनों ही कलायें एक-दूसरे की सीमा-रेखा में बड़ी सहजता से प्रवेश कर जाती है और अपने तात्विक अन्तःसम्बन्ध का निर्देश करती है।

मुख्य शब्द- वाक्शक्ति, काव्य, संगीत

ब्रम्ह के तीन स्वरूप होते है– सत्, चित् और आनन्द/संगीत एवं साहित्य कला इनमें से तीसरे स्वरूप को लेकर चलती है।[1] यूँ तो सभी ललित कलायें रसानुभूति का साधन मानी गयी है। वे चाहे काव्य और संगीत हो अथवा वाक्शक्ति से परे की मूर्तिकला, चित्रकला या अन्य कोई कलायें हों अपने–अपने स्तर से सभी कुछ कम, कुछ ज्यादा प्रभाव छोड़ने वाली होती है, किन्तु सभी का लक्ष्य परमानन्द की प्राप्ति होती है।

"विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला परा।
लीयते परमानन्दे यायात्मा न परा कला।।"[2]

संवेदनशील प्राणी को आप्तकाम, आनन्दस्वरूप ब्रह्म निर्मित इस कलामयी सृष्टि की कुछ गहरी अनुभूति होती है। वह इस अनुभूति को स्वयं भोगकर अपने ही अन्दर समाप्त नहीं हो जाने देता वरन् उसे एक नये रूप में पुनः बाहर व्यक्त कर देने के लिये व्यग्र हो उठता है। अनुभूति जितनी गहरी होगी कला भी मन की उतनी ही गहराई से उत्पन्न होकर सामाजिक मनोरंजन तथा चरमोत्कर्ष पर पहुँचकर आत्मरंजन का हेतु बनेगी। ऐसी इस गहरी अनुभूति को व्यक्त करने के लिये कोई न कोई साधन–अवश्य चाहिये। मानव के पास अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम प्रभु प्रदत्त साधन है 'वाक्शक्ति'। इसमें वर्ण, पदादि से समृद्ध हो भाषा के रूप में अथवा स्वरों के द्वारा ध्वनि विशेष के रूप में मानव बहुत कुछ व्यक्त कर सकता है और करता भी है। संगीत रत्नाकर में नाद की महिमा के अन्तर्गत यह बात कही गयी है–

"नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जागत्।।"[3]

अर्थात् नाद से वर्ण, वर्ण से पद, पद से वचन और वचन से सारा कार्य व्यापार चलता है। इसलिये सारा जगत नाद के अधीन है। इसके अतिरिक्त अभिनय अथवा शारीरिक चेष्टाओं द्वारा रंग–तूलिका, मिट्टी, पाषाण आदि को भी साधन बनाकर कलाकार स्वहृदयगत भावों को व्यक्त करता है। ये सभी साधन प्रेशक कलाकार के भावों को सामाजिक तक ले जाकर साधारणीकरण का कार्य करते है जिससे रस की अनुभूति होती है।

• **एसोसिएट प्रोफेसर, जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कॉलेज, कानपुर**

यह उल्लेखनीय है कि चित्रकला और मूर्तिकला दोनों ही स्थूल उपकरणों की अपेक्षा रखती है यानी बाह्य उपकरणों का आश्रय लिये बिना भाव-सम्प्रेषण का कार्य नहीं कर सकती है। दूसरी बात यह है कि ये स्थिर कलायें हैं अर्थात पूर्णता के पश्चात् ही कोई चित्र या मूर्ति स्थिर रूप में हमारे नेत्रों का विषय बनती है, क्योंकि वह किसी घटित घटना के कई पक्षों में से किसी एक पक्ष के किसी एक क्षण का ही रूप खींच पाती है। तभी तो किसी चित्र या मूर्ति को देखकर मात्र यही पता चल पाता है कि उसमें प्रदर्शित मुद्रा प्रसन्नता की है या करूणा की, दृश्य रमणीय है या वीभत्स। ये दृश्य कलायें घटनाओं का वर्णन कर पाने में अक्षम है। ये किन्ही परिस्थितियों का अनुमान मात्र करा पाती है। इनके विपरीत काव्य और संगीत में भाव-सम्प्रेषण का सामर्थ्य कहीं अधिक है। इस प्रकार बाह्र रूप में सभी, कलायें अपनी-अपनी शैली, प्रेषणीयता आदि के कारणों से पृथक तो जान पड़ती है, किन्तु कल्पना, बिम्ब, प्रतीक, विषय आदि ऐसे तत्त्व हैं जो स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, काव्य, संगीत सभी में समान रूप से समाविष्ट है। इनका अनिवार्य अवस्थापन ही ललित कलाओं के पारस्परिक अन्तःसम्बन्ध को स्पष्ट करता है। यही कारण है कि चरमोत्कर्श के मार्ग पर चलते हुये ये कलायें परस्पर एक दूसरे की सहचरी-सहभागी हो मार्ग को सरस-सुगम बनाती है।

हमारे भारतीय संगीत शास्त्र में नाट्य को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है बल्कि इसे सभी कलाओं का आकर बताया गया है। यह मानव मन को रस की चरमावस्था तक पहुँचाने के लिये अपनी दृश्य और श्रव्य दोनों विशेषताओं के कारण उत्कृष्ट साधन बनती है तथा लौकिक स्तर पर समाज के मनोरंजन का कारण बन उसके समक्ष एक आदर्श भी रखती है, क्योंकि नाट्य में सुख-दुःख मिश्रित लोक जीवन का आंगिक आदि अभिनयों के साथ अनुकीर्तन किया जाता है-

"योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दुःख समन्वितः।
सोऽदंगाद्याभिनयोपेतो नाट्यमित्याभिधीयते।।"[4]

इसमें प्रारम्भ से अन्त तक स्तुति-पाठ, गान-वादन तथा नृत्य के रूप में संगीत व्याप्त रहता है। नाट्यशास्त्र में गीत को नाट्य की शय्या कहा गया हैः-

"गीते प्रयत्नः प्रथमस्तु कार्यः शय्यां हि नाट्यस्य वदन्ति गीतम्।
गीतेऽपि वाद्येऽपि च सुप्रयुक्ते नाट्य प्रयोगो न विपत्तिमेति।।"[5]

इस प्रकार नाट्य के अंग के रूप में संगीत और काव्य परस्पर सम्बद्ध है। वर्तमान समय में ललित कलाओं के अन्तर्गत दो गतिशील कलायें है- काव्य और संगीत। ये ऐसी कलायें है जो बड़ी आसानी से एक-दूसरे की सीमा में प्रवेश कर जाती है तथा सौन्दर्य वृद्धि का हेतु बनती है। इसका कारण यह है कि इन दोनों ही कलाओं का सम्बद्ध वाक्शक्ति है जो संगीत और काव्य दोनों का आधार है। वाक्तत्व के दो रूप माने गये हैं- नादात्मिका वाक् और वर्णात्मिका वाक्। नादात्मिका वाक् के अन्तर्गत संगीत में स्वर अथवा ध्वनि विशेष के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की प्रधानता रहती है, जबकि काव्य में वर्णामिका वाक् अर्थात् शब्द-शब्दार्थ और विचारों की प्रधानता रहती है। प्रसंगवश यहाँ उल्लेखनीय है कि हमारी भारतीय विचारधारा में काव्य के अन्तर्गत गद्य, पद्य सभी प्रकार की रचनायें आती है। भामह के काव्यालंकार में स्पष्ट उल्लेख है-

"शब्दार्थो सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद्विधा।
संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंश इति त्रिधा।।"

काव्य और संगीत दोनों श्रव्य कलायें है। इनकी निकटता सर्वव्यापक है। ये दोनों कलायें एक-दूसरे पर आश्रित रहती है या कहें कि इन्हें एक-दूसरे की अपेक्षा बनी रहती है। सरस-भाव की अभिव्यक्ति के लिये सुन्दर पद रचना अर्थात् छन्द की लयात्मकता का विशेष महत्व है। स्वर और लय संगीत के प्राण हैं, अतः लययुक्त होते ही काव्य में संगीत का हस्तक्षेप प्रारम्भ हो जाता है। स्पष्ट है कि काव्य शब्दाधारित कला है कि जबकि संगीत की स्थिति शब्द और शब्दहीनता के बीच झूलती हुई सी है। सशब्दता और शब्दहीनता के मध्य स्थिति होने के कारण ही संगीत में अनन्त स्तर भेदों की संभावना रहती है।

काव्य के अन्तर्गत आधुनिक विधा ने संगीत से कुछ पृथक हो अपने अस्तित्व का निर्माण किया है, जो कि न तो राग-रागिनियों में बंधी होती है और न ही विशिष्ट तुकान्त छन्दों में रची होती है, फिर भी इस कविता में संगीत प्रधान तत्त्व 'लय' का महत्व सुरक्षित रहता है। इस प्रकार आधुनिक कविता संगीत से रहित नहीं अपितु प्राचीन काव्य के मुखर संगीत से दूर है। इसी प्रकार हर्ष, शोक, उल्लास, आश्चर्य आदि भावों को व्यक्त करने के लिये नाद के विस्तृत क्षेत्र में काव्य स्वतः प्रवेश कर जाता है। काव्य स्वर और लय दोनों का सहारा लेता है। दूसरी ओर संगीत भी काव्य अथवा पद का आँचल पकड़कर स्वयं को सशक्त अनुभव करता है। हमारे भारतीय संगीत में बिना पद के संगीत को 'निर्गीत' अथवा 'बहिर्गीत' कहा गया है। प्राचीनकाल या कहें कि भरतकाल में संगीत को 'गान्धर्व' संज्ञा से जाना जाता था, जिसमें पद तत्व का होना अनिवार्य था। भरत मुनि के अनुसार- ''गान्धर्व'' यन्मया प्रोक्तं स्वरतालपदात्मकम्।'' इसी प्रकार दत्तिल ने भी कहा है-

''पदस्थ स्वर संघतस्तालेन सुमिस्तथा।
प्रयुक्तश्चावधानेन गान्धर्वमभिधीयते।।''

स्वरों का प्रभाव क्षेत्र बहुत व्यापक होता है किन्तु पद स्वरों से स्थूल होते है। अतः सीधे कानों में पड़ते ही स्वाभाविक वातावरण तैयार कर देते हैं। तत्पश्चात् सामाजिक उस वातावरण में रहते हुए नई-नई स्वर लहरियों का आनन्द लेने लगता है। इसी प्रकार सुखद एवं दुःखद अनुभूतियों को जब कवि अपनी कर्णप्रिय ध्वनि में उतार-चढ़ाव और पड़ाव देता हुआ अलंकारिक शब्दों में व्यक्त करता है तो वह कविता बन जाती है। वही संगीतज्ञ यदि स्वर-लय में बाँधकर किसी रचना को प्रस्तुत करता है तो वह संगीत बन जाता है। संगीतज्ञ पद अथवा बन्दिश की रचना राग के अनुसार करता है और कवि भावों को शब्दों द्वारा पद में व्यक्त करता है। काव्य और संगीत दोनों ही कलायें भावाभिव्यक्ति की सक्षम शक्तियाँ है। इनकी सीमा-रेखा बड़ी सूक्ष्म होती हैं। दोनों का आधारवाणी, ध्वनि अथवा शब्द तत्त्व है। अतः स्पष्ट है कि एक स्तर पर पहुँचकर दोनों का संयोग अवश्यम्भवी है। इनके इसी अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के कारण देवी सरस्वती को साहित्य, संगीत की अधिष्ठात्री माना गया और 'वीणा-पुस्तक-धारिणी' कहा गया है।

इस प्रकार वाक्शक्ति की इन दोनों कलाओं काव्य और संगीत पर दृष्टि डालने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही कलाओं के द्वारा होने वाली अनुभूति और अभिव्यक्ति भिन्न है। संगीत का माध्यम विशुद्ध नाद है काव्य का माध्यम वर्गीकृत नाद है, संगीत का उपकरण स्वर है तो काव्य का उपकरण सार्थक शब्द है। संगीत अभिव्यक्ति प्रधान होकर हृदय के निकट है तो काव्य विचार प्रधान होकर बुद्धि के अधिक निकट है। यह भिन्नता होते हुये भी दोनों के मूल वाक्तत्त्व और श्रव्यगुण समान है। अतः ये दोनों ही कलायें एक-दूसरे की सीमा-रेखा में बड़ी सहजता से प्रवेश कर जाती है और अपने

तात्विक अन्त:सम्बन्ध का निर्देश करती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. डॉ. मुन्शीराम शर्मा, भक्ति का विकास, पृ., 65
2. वाचस्पति गैरोला, भारतीय नाट्य परम्परा और अभिनय दर्पण, पृ., 87
3. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, 1/2/2
4. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 1/121
5. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 32/493
6. प्राचीनकाल में गीत और वाद्य को गान्धर्व संज्ञा से कहते थे। इसीलिये यहाँ संगीत में भी गीत-वाद्य आते हैं, नृत्य अलग होता है किन्तु शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में गीत, वाद्य और नृत्य की त्रयी को संगीत शब्द के साथ परिभाषित किया है।
7. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, 26/8

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

कोविड-19 में खुलता लॉकडाउन और बढ़ती समस्यायें

•शशिकिरण नायक
••रोहिणी त्रिपाठी

सारांश- कोरोना काल में लॉकडाउन के कारण देश की अर्थव्यवस्था चौपट हो चुकी है। कारोबार, उद्योग धन्धे खत्म हो चुके है, बेरोजगारी जो चरम सीमा में थी वह अब बिल्कुल नियंत्रण से बाहर हो चुकी है। देश में लॉकडाउन के चलते छोटे-बड़े सभी प्रकार के उद्योगों पर अत्यंत बुरा असर पड़ा है और कई उद्योग व व्यापार बन्द हो गये हैं। लोगों के पास जो रोजगार था वह या तो छिन गया है या उसे लोग छोड़ने के लिए मजबूर हो गये हैं, जिससे देश में बेरोजगारी की स्थिति अत्यंत भयानक मोड पर पहुंच चुकी है।

मुख्य शब्द- कोरोना कोविड, लॉकडाउन, कोरेनटाइन केन्द्र

परिचय- कोरोना वायरस कोविड–19 की शुरुआत चीन के वुहान से शुरु हुई थी जिस पर चीन ने लाकडाऊन को अपनाया था। चीन ने जो आंकडे आधिकारिक रुप से दिये उसके मुताबिक वहां 81740 लोग संक्रमित हुए, 3331 लोगों की मौतें हुई हालांकि बाद में उसने इस आंकड़े को संशोधित किया लेकिन तमाम कई बड़े देशों का कहना हैं कि चीन ने आंकड़े छुपाये है और यह आंकड़ो लाखों करोड़ो में हैं। जिस तरह चीन ने इसको लेकर दुनिया से जानकारी छिपायी है, उससे चिनपिंग की प्रतिष्ठा पर चोट पहुंची है हालांकि चीन इन आरोपों से इन्कार कर रहा हैं।

सबसे ज्यादा इस महाबीमारी से प्रभावित अमेरिका है, जहां संक्रमित लोगों और मौतों का आंकड़ा बढ़ने से थम नहीं रहा हैं। जो आंकड़े बताये बताए जा रहे है कि नववर्ष की पूर्व संध्या पर इस रहस्यमयी कोरोना बीमारी की जानकारी मिलने के बाद अगले दो महीने तक करीब 4,30,000 लोगों ने अमेरिका की यात्रा की इनमें कई देशों के नागरिक भी शामिल थे। इनमें सबसे ज्यादा उड़ाने सैनफ्रांसिस्को, लांस एंजिलिस, न्यूयार्क, शिकांगो, सिएटल, नेवार्क, न्यू जर्सी और डेटायर एयरपोर्ट में आई। हजारों यात्री इसकी शुरुआत में सीधे वुहान से अमेरिका पहुंचे लेकिन अमेरिका में उड़ाने जारी रहने और अहतियात के तौर पर तुरन्त लाकडाऊन ना करने व अमेरिका में आने वाले लोगों की गहन जांच में लापरवाही को इसका नतीजा बताया जा रहा है कि अमेरिका में संक्रमण का सिलसिला थम नहीं रहा हैं। कोरोना की दूसरी लहर पूरे विश्व को अपने आगोश में ले रही है।

कोरोना से ईरान, स्पेन, ब्राजील, ब्रिटेन, इटली, रुस जैसे कई बड़े देशों में इस संक्रमण ने हाहाकार मचा रखा हैं। यदि 25 मई तक के आंकड़े देखें तो ब्राजील में 352744 लोग संक्रमित हुए व 22291 लोगों की मौतें हुई। रुस में 344,481 लोग संक्रमित है जबकि 3541 लोगों की मौतें हुई हैं। स्पेन में 282.852 लोग संक्रमित है और 28752 लोगों की मौतें हुई हैं। इटली में 229858 लोग संक्रमित है और 32785 लोगों की मौतें हुई हैं। ब्रिटेन में 259559 लोग संक्रमित तो 36793 लोगों की मौतें हुई है। फ्रांस में 182584 लोग संक्रमित

● प्राध्यापक, अर्थशास्त्र, सरोजनी नायडू कन्या महाविद्यालय, भोपाल
●● अतिथि विद्वान, माखनलाल राष्ट्रीय पत्रकारिता, वि.वि. भोपाल

है और 28367 लोगों की मौतें हुई हैं। बेल्जियम में 57092 लोग संक्रमित है और 9280 लोगों की मौतें हुई हैं। ईरान में 135701 लोग संक्रमित है और 7417 लोगों की मौतें हुई हैं, जर्मनी में 180061 लोग संक्रमित तो 88371 लोगों की मौतें हुई हैं। चीन के संशोधित आंकड़ो के अनुसार 82974 लोग संक्रमित है और 4634 लोगों की मौतें हुई है लेकिन अमेरिका सहित कई देश चीन पर आंकड़े छिपाने का आरोप लगा रहे है और कह रहे हैं कि यह आंकड़ा करोड़ों में हैं।[1]

भारत में 135621 लोग संक्रमित है तो 3940 लोगों की मौतें हो चुकी हैं। महाराष्ट्र में 50231, तमिलनाडु में 16277, गुजरात में 14063, दिल्ली में 13418, राजस्थान में 7028, मध्यप्रदेश में 6599, उत्तरप्रदेश में 6268, बंगाल में 3667, आन्ध्रप्रदेश में 2780, पंजाब में 2143, तेलगंना में 1854, बिहार में 2574, कर्नाटक 2089, जम्मू-कश्मीर में 1621, ओडिसा में 1336, हरियाणा में 1152, केरल में 847, झारखण्ड में 354, असम में 378, चंडीगढ़ में 238, त्रिपुरा में 191, हिमाचल प्रदेश में 199, उत्तराखण्ड में 319, छतीसगढ़ में 252, लद्घाख में 52, गोवा में 66, अंडमान निकोबार में 33, मणिपुर में 28, पांडुचेरी में 29, मेद्यालय में 13 और अरुणाचल में 2 लोगों के संक्रमित होने का आंकड़ा देश में 25 मई तक का है। जिस तरह देश की आबादी है और टेस्टिंग बहुत ही नगण्य है और आंकडे जिस तरह तेजी से बढ़े है तो भारत चीन के आधिकारिक आंकड़ो को तो पार कर गया है लेकिन देश को अब यह चिन्ता सताने लगी है कि यदि इस पर रोक नहीं लगी और पर्याप्त मात्रा में टेस्टिंग हुई तो यह आंकड़ा अमेरिका से भी ज्यादा भयावह हो सकता हैं।

देश के प्रधानमंत्री ने जब कोरोना कोविड-19 की महामारी को लेकर देश में लॉकडाउन की घोषणा की थी उस समय देश में इस महामारी से सक्रंमित लोगों की संख्या 500 के करीब अर्थात नगण्य थी। उस समय उन्होंनें देश को कहा था, कि यदि लॉकडाउन नहीं किया गया तो, यह आंकड़ा बहुत तेजी से बढ़ता हुआ विकराल रूप धारण कर सकता है। इस लॉकडाउन के कारण लोगों का जन जीवन ही ठप्प नहीं हुआ, बल्कि देश का आर्थिक तंत्र भी छिन्न-भिन्न हो गया और देश के सामने एक आर्थिक संकट खड़ा हो गया। करोड़ों लोग बेरोजगार हो गये हैं। अब जब यह आंकड़ा पांच लाख से ऊपर पहुंच गया है, तो देश में लॉकडाउन खोलने की तैयारी शुरू हो गई है। ऐसे में अब यह कहा जा रहा है कि लोगों को कोरोना के साथ जीना होगा। इस स्थिति में देश के जनमानस के मस्तिष्क में एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब यह आंकड़ा पांच सौ का था तो लॉकडाउन जरूरी था, ताकि यह महामारी विकराल रूप धारण न कर पाये। लेकिन जब अब यह आंकड़ा पांच लाख से ऊपर पहुंच गया है, तो लॉकडाउन खोला जा रहा है। ऐसे में वर्तमान में कोरोना वायरस में ऐसी क्या कमी आ गई है कि 500 के आंकड़े में तो विकराल रूप धारण कर लेता है वहीं पांच लाख के आंकड़े पर यह विकराल रूप धारण नहीं कर पायेगा।

किसी देश की समृद्धि प्रत्यक्षतः कृषि तथा उद्योग के विकास पर निर्भर करती है। किन्तु कृषि-उत्पादन के लिए संचालन-शक्ति (Power), उधार एवं परिवहन सुविधाओं आदि की आवश्यकता होती है। औद्योगिक उत्पादन के लिए केवल मशीनरी एवं संयंत्र ही नहीं चाहिए बल्कि कुशल श्रमशक्ति, प्रबन्ध, ऊर्जा, बैंकिंग एवं बीमा सुविधाओं की भी जरूरत होती है। इसके अतिरिक्त विपणन सुविधाओं, परिवहन सेवाओं की भी आवश्यकता होती है जिनमें रेलवे, सड़कें, जहाजरानी, संचार सुविधाएं आदि शामिल की जाती हैं। लॉकडाउन एवं कोरोना काल में ये सभी सुविधायें एवं व्यवस्थायें अस्त व्यस्त हो चुकी है।

शोध पद्धति- इस शोध पत्र में द्वितीयक आँकड़े की मदद ली गई है, इसके साथ संदर्भित समाचार पत्रों, पत्रिकाओं एवं पुस्तकों की सहायता ली गई है। इंटरनेट द्वारा भी आँकड़ो के संकलन में सहायता मिली है।

उद्देश्य- इस शोध पत्र का उद्देश्य करोना-कोविड-19 में फैली महामारी के परिणामों एवं समस्याओं के साथ इन्हें सुलझाने हेतु क्या उपाय हो सकते हैं इन बिन्दुओं पर विचार करना है।

परिणाम एवं सुझाव- कोरोना महामारी को लेकर पहले एक दिन के जनता कर्फ्यू का आव्हवान किया गया था और पूरे विश्व में इस बीमारी की गम्भीरता को देखते हुए देश की जनता ने इनका समर्थन किया। जनता से समर्थन मिलने के बाद प्रधानमंत्री ने देश में लॉकडाउन की घोषणा की और कहा कि इस महामारी को रोकने के लिए यह अत्यंत जरूरी है। देश के नागरिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य, आवश्यक खाद्य सामग्री उपलब्ध करवाने की जिम्मेदारी सरकार की थी, लेकिन जैसे-जैसे लॉकडाउन आगे बढ़ता गया इसकी कलई खुलती गई। लाखों मजदूर, प्रवासी लोग अपार कष्ट को सहते हुए, हजारों किलोमीटर का पैदल सफर करते हुए अपने घरों में पहुंचने के लिए मजबूर हुए, लोगों को अपने रोजगार छोड़ने पड़े कारोबार और उद्योग धन्धे ठप्प हो गये। इन उद्योग धन्धों में जो लोग रोजगार में लगे थे, वो तो बेरोजगार ही हो गये साथ में उद्योग धन्धें भी चौपट हो गये। परिणाम यह हुआ कि देश का आर्थिक तंत्र गडबड़ा गया। सरकार ने तो अपने आर्थिक तंत्र को ठीक करने के लिए शराब बिक्री पर रोक हटा दी, उसके दाम बढ़ा दिये, पेट्रोल-डीजल की कीमतें बढ़ा दी। खनन व्यवसाय खोल दिया और अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ कर लिया। जब लॉकडाउन शुरू हुआ तो यदि किसी व्यक्ति को कोरोना संक्रमित पाया गया, तो पूरा मोहल्ला क्वारंटाइन कर दिया गया, उसके सम्पर्क में आये तमाम लोगों को ढूंढकर क्वारंटाइन किया जाने लगा, लेकिन आज जब पांच लाख लोगों से ज्यादा लोग संक्रमित हो रहे हैं और यह आंकड़ा बहुत तेजी से बढ़ रहा है, तो ऐसे में लोगों को होम क्वारंटाइन किया जा रहा है। मोहल्ले को भी राहत मिल रही है। ऐसे में इन संक्रमित लोगों के सम्पर्क में आने वाले लोगों की पहचान अब मुश्किल ही नहीं नामुमकिन हो जायेगी जिस कारण लॉकडाउन समस्या बनता जा रहा है।[3]

लॉकडाउन में न अस्पताल की उचित व्यवस्था हो पाई, ना ही क्वारंटाइन सेन्टरों की व्यवस्था हो पाई और न ही सुरक्षा किट का इन्तजाम हो पाया। जिसका परिणाम है कि हजारों की संख्या में डाक्टर, पुलिस के जवान, सफाई कर्मी अब इस रोग से संक्रमित होकर अपनी जिन्दगी और मौत के साथ संघर्ष करने को मजबूर है।

आज पांच लाख से ज्यादा आंकड़ा होने के बाद कहा जा रहा है कि अब लोगों को इसके साथ जीना होगा। देश का जनमानस सत्ता में बैठे लोगों से पूछ रहा है कि आखिर कोरोना महामारी में वर्तमान समय में ऐसी कौन सी कमी आ गई है कि जब 500 का आंकड़ा था, तो वो देश में विकराल रूप धारण कर सकता था और अब पांच लाख से अधिक लोगों के संक्रमित होने पर वह भयंकर रूप धारण नहीं करेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

01. नेशनल पॉइंट- राष्ट्रीय मासिक पत्रिका जुलाई 2020
02. भारतीय अर्थशास्त्र-सुंदरम एवं वैश्य 2018-19
03. औद्योगिक अर्थशास्त्र वी.सी. सिन्हा

04. म.प्र. पंचायिका माध्यम, म.प्र. शासन भोपाल
05. भारतीय अर्थशास्त्र दत्त, सुंदरम्।
07. नेशनल पॉइंट- राष्ट्रीय मासिक पत्रिका अगस्त 2020

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

मोहनदास : आदमियत की पहचान संकट में

•राकेश कुमार तिवारी
•• लूनेश कुमार वर्मा

सारांश- उदय प्रकाश ने 'मोहनदास' के बहाने आम आदमी की पीड़ा को अपनी पैनी दृष्टि से अपनी रचना का विषय बनाया है। समकालीन सामाजिक यथार्थ को तत्कालीन सन्दर्भों के साथ आक्रामक रूप में प्रस्तुत किया है। कहानी के मध्य पाठक को रोककर विविध सन्दर्भों के माध्यम से ब्यौरों का प्रयोग उदय प्रकाश की मौलिक शैली है, जो कहानी में अर्धविराम की अनुभूति कराता है। समकालीन समाज में पैसे वालों, जमींदारों, पुलिस,पटवारी, न्याय-प्रणाली, सत्ता, समाज के ठेकेदारों के द्वारा आम आदमी को किस तरह पीड़ित, उपेक्षित,शोषित होना पड़ रहा है, इसका कच्चा चिट्ठा इस कहानी के माध्यम से खोला गया है। २०वीं सदी में प्रेमचन्द के 'होरी' के सामने अलग प्रकार के संकट थे, २१वीं सदी में उदय प्रकाश के 'मोहनदास' के सामने नौकरी नहीं वरन् पहचान का संकट है।२१वीं सदी में आम आदमी और आदमियत की पहचान संकट में है।

मुख्य शब्द- सामाजिक यथार्थ, दस्तावेज, पूंजीपति, समाज

उदय प्रकाश की लंबी कहानी 'मोहनदास' आज के सामाजिक यथार्थ का महत्वपूर्ण दस्तावेज है। सामान्य आदमी किस तरह भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ छटपटाता हुआ विक्षिप्तता की ओर उन्मुख हो जाता है, किस तरह आज आम आदमी के अधिकार पर पूंजीपति व समाज के ताकतवर लोग अपना कब्जा बना बैठ जाते हैं, इस तथ्य की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत करती है, उदय प्रकाश की कहानी 'मोहनदास'। ईमानदार आदमी को समाज में इतनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है कि वह अपने अस्तित्व व नाम को भी छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। जैसे मोहनदास, बड़े लोगों के षड़यन्त्र से भयभीत हो हलफनामा देकर कहने को तैयार हो जाता है कि वह मोहनदास नहीं है। कहानी में मोहनदास की पीड़ा कुछ इस तरह उभरती है– ''काका मुझे किसी तरह बचा लीजिए! मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ। बाल–बच्चे हैं मेरे ! उधर बाप मर रहा है टीबी से !...... आप कहें तो मैं आपके साथ चलकर अदालत में हलफनामा देने के लिए तैयार हूँ कि मैं मोहनदास नहीं हूँ। मैं इस नाम के किसी आदमी को नहीं जानता ! कोई और होगा मोहनदास ! बस मुझे किसी तरह बचा लीजिए।''[1]

यह कहानी एक ऐसे भयभीत दलित व्यक्ति की कहानी है, जिसे उसके अधिकारों से वंचित रख, उसका सब कुछ छीन लिया गया है। समाज के कुछ प्रभावशाली लोगों द्वारा आम नागरिकों के बुनियादी अधिकारों पर बलपूर्वक अधिकार जमा लिया जाता है। 'मोहनदास' के बहाने लेखक ऐसे ही वर्ग की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। पूरी कहानी इसके केन्द्रीय पात्र मोहनदास के इर्द–गिर्द घूमती है। मोहनदास नीची जाति का युवक है। वह अपनी जाति का पहला युवक है, जिसने बी. ए. पास किया है, वह भी फर्स्ट डिवीजन, मेरिट में दूसरे नंबर के साथ। मोहनदास गाँव का रहने वाला है। स्वभावत: वह सीधा, सरल, संकोची और स्वाभिमानी प्रवृत्ति का था।

• विभागाध्यक्ष, हिन्दी, दुर्गा महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)
•• शोधार्थी, महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

लेकिन मोहनदास ने शीघ्र ही यह जान लिया कि प्रतिस्पर्धा के इस युग में सफलता पाने के लिये योग्यता होना ही पर्याप्त नहीं है। मोहनदास के बहाने उदय प्रकाश कहते हैं–''स्कूल कॉलेज के बाहर की असली जिंदगी दरअसल खेल का एक ऐसा मैदान है,जहाँ वही गोल बनाता है,जिसके पास दूसरे को लंगड़ी मारने की ताकत होती है और यह ताकत सोर्स–सिफारिश,जोड़–तोड़, रिश्वत–संपर्क, जालसाजी वगैरह तमाम ऐसी अवैध और अनैतिक चीजों से बनती है, जिनमें से एक भी मोहनदास की पहुँच के भीतर नहीं थी।''[2] मोहनदास अनेक परीक्षाएं देता है,और लिखित परीक्षा में सबसे ऊपर रहता है, किन्तु किसी तरह के जुगाड़ के अभाव में नौकरी उसके हाथ नहीं लगती?

एक परीक्षा में साक्षात्कार आदि के बाद ठोस आश्वासन मिलने के बाद भी उसे वह नौकरी नहीं मिली। उसकी नौकरी पूंजीवाद,जातिवाद व भाई–भतीजावाद की भेंट चढ़ जाता है। गोपाल राय कहते हैं–''नौकरी पाने के लिए योग्यता की नहीं सिफारिश और रिश्वत की जरुरत होती है। यद्यपि बात में काफी हद तक सच्चाई है, पर उदय प्रकाश इससे आक्रान्त से प्रतीत होते हैं।''[3] जरुरी योग्यता होते हुए भी बेरोजगार युवकों में नौकरी न मिलने का जो आक्रोश दिखायी देता है, वही आक्रोश उदय प्रकाश की कहानियों में देखने को मिलता है।

आज समाज में झूठे और फरेबी लोग हावी हैं जो अपनी पहुँच,प्रभाव,ताकत और पैसे के बल पर आम आदमी के वास्तविक अधिकारों पर दिन दहाड़े डाका डालना अपनी शान समझते हैं। समीक्षक होमी दस्तूर कहते हैं–''पैसा देकर या अपने प्रभाव का उपयोग करके काम करवाने वाले करोड़ों असहाय सामान्य भारतीयों की पीड़ा को कभी नहीं समझ पाएंगे।''[4]आम आदमी जो सीधे, सरल और सहज होते हैं, सदैव इनसे प्रताड़ित होते हैं। ये लोग गलत तरीके से आम आदमी के अधिकारों का हनन करते हैं। इन लोगों के खिलाफ पुलिस प्रशासन भी मौन हो जाता है,बल्कि ये लोग पुलिस प्रशासन को भी हथकंडे की तरह इस्तेमाल करते हैं और सीधे, सरल और सहज आम आदमी को प्रताड़ित करते हैं। 'मोहनदास' कहानी में बाहुबली विश्वनाथ जालसाजी करके आम आदमी मोहनदास की पहचान और नाम को चुराकर कोलियरी की उसकी नौकरी हड़प लेता है। बाद में न्यायालय से उसके झूठ का पर्दाफाश होता है और वह अपनी पहुँच के बलबूते जमानत पर रिहा हो जाता है। जमानत पर रिहा होते समय पुलिस से मिली–भगत कर दस्तावेजों में मोहनदास उर्फ विश्वनाथ पिता काबादास उर्फ नगेन्द्रनाथ नाम लिखवाते समय बाद वाला नाम इस तरह घसीटकर लिखवाया कि वह पढ़ाई में नहीं आता था। रिहा होने के बाद वह हर दूसरे तीसरे दिन कोई न कोई क्रिमिनल वारदात करता और पुलिस में मोहनदास के नाम से एफ.आई.आार. दर्ज होता क्योंकि लोग विश्वनाथ को ही मोहनदास के नाम से जानते थे। पुलिस जो विश्वनाथ से मिली हुई थी पीट–पीट कर निरपराध मोहनदास के हाथ–पैर तोड़ डालते थे।

नकली मोहनदास की सजा असली मोहनदास को भुगतना पड़ रहा था। अन्ततः असहाय और निरुपाय हो मोहनदास कहता है–''जिसे बनना हो बन जाए मोहनदास। मैं नहीं हूँ मोहनदास। मैंने कभी कहीं से बी.ए. नहीं किया। कभी टॉप नहीं किया। मैं कभी किसी नौकरी के लायक नहीं रहा। बस मुझे चैन से जिन्दा रहने दिया जाय। अब हिंसा मत करो। जो लूटना हो लूटो। अपने–अपने घर भरो। लेकिन हमें तो अपनी मेहनत पर जीने दो।''[5]मोहनदास जैसे लोगों के लिए आज का समय डरावना है और लगातार डरावना होता जा रहा है।

समीक्षक सुरेन्द्र चौधरी कहते हैं–''रचनाधर्मी कथाकार जीवन के गतिमान सत्य से अपने को जोड़ता हुआ नये सत्यों का निर्माण भी करता है।नये सत्यों के निर्माण की बात पर कुछ लोग मुस्करा सकते हैं। उनके अनुसार सत्य का निर्माण वैज्ञानिकों काक्षेत्र है, साहित्यकार का नहीं। सत्य के निर्माण से हमारा तात्पर्य भाव–सम्बन्धों के निर्माण से है, वस्तु निर्माण से नहीं । रचनाधर्मी कथाकार समाज द्वारा गढ़े गये नये सत्यों से भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करता हुआ उन्हें नये परिपेक्ष्य के योग्य बनादेता है।''[6] मोहनदास स्वाभिमानी था। विपरीत परिस्थितियों में भी हिम्मत न हारते हुए अपने परिवार के पालन–पोषण के लिए काम करता है। नौकरी न मिलने पर वह अपने गाँव से लगे कठिना नदी के किनारे जी–तोड़ मेहनत कर खीरा, ककड़ी, तरबूज, खरबूज आदि लगाने का काम करने लगा। इस काम में पत्नी व माँ–बाप का भी भरपूर सहयोग मिलता था लेकिन कई बार असमय बारिश होने से सब कुछ नष्ट हो जाता था।

आज देश में आम किसान साधनहीन हैं और यहाँ फसलें प्रकृति भरोसे होती हैं। प्रायः प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों में आत्महत्या की होड़–सी लग जाती है। किसी अनहोनी की आशंका के चलते पसीने से तर–बतर मोहनदास नदी की धार में खड़ा हो, दोनों हाथ जोड़ कर भरे गले से कहता है–''बस तुम भर आंखी मत काढ़ना कठिना माई। तुम्हें मलइहा माई की किरिया। मेरे बेटे देवदास की किरिया। ......मेरे पसीने की उपज से अपने पेट की जठर आगी मत बुझाना कठिना माई......! नहीं तो......दयऊ कसम, बीच असाढ़ तुम्हारी धार में बाल–बच्चा समेत कूद कर तुम्हारा पेट मैं भरूंगा।''[7]

उदय प्रकाश यहाँ भारतीय किसानों की दुर्दशा का यथार्थ प्रस्तुत करते हुए संकेत करते हैं कि नदी तो प्रकृति है, और प्रकृति भरोसे रहने से किसानों का भला होने से रहा। परम्परागत तरीकों के स्थान पर आधुनिक तकनीकों के आधार पर वैज्ञानिक पद्धति से कृषि करने से ही कृषि में लाभ हो सकता है, अन्यथा दुर्गति होना निश्चित है। कठिना नदी को लेखक ने पूंजीवादी व्यवस्था के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। जिस तरह नदी की बाढ़ किसानों के खून–पसीने से तैयार की गयी फसल को निगल लेती है, उसी तरह पूंजीवादी व्यवस्था आम आदमी के जीवन को अकाल मृत्यु की ओर ढकेल देती है।

उदय प्रकाश कहानी के बीच में मौजूदा स्थितियों का उल्लेख करते चलते हैं, जो मोहनदास के जीवन संघर्ष को प्रकट करते हैं। पढ़ा लिखा मोहनदास जो निम्न मध्यमवर्गीय पिछड़ी जनजाति वर्ग से आता है, एक अदद नौकरी की उम्मीद जगा लोगों के बीच अब उपहास का पात्र बन गया है। छोटे –बड़े लोग आते–जाते उसका मजाक उड़ाते हैं। मोहनदास की स्थिति का अंदाजा उसकी चुप्पी और मौन से समझा जा सकता है।

संतान के जन्म से पिता का ह्रदय खुशी से झूम उठता है किन्तु मोहनदास के घर संतान के जन्म से उसका कलेजा दहल उठता है कि अब एक और पेट का भार परिवार को वहन करना पड़ेगा। मोहनदास के पिता काबा दास को टीबी है और मां पुतली बाई के आँखों की रोशनी मुफ्त नेत्र शिविर में मोतियाबिंद आपरेशन के समय से चली गयी है। दवाइयों के लिये मोहनदास के पास पैसे नहीं हैं। अभावग्रस्त मोहनदास को सबसे बड़ा झटका लगता है, जब उसे पता चलता है कि बिछिया टोला का विश्वनाथ, मोहनदास के नाम से पिछले चार सालों से सुपरवाइजर की नौकरी कर रहा है। नौकरी करते हुए वह नौकरी की सारी सुविधाओं का उपभोग कर रहा है और इधर मोहनदास एक–एक पैसे के लिये जी–तोड़ मेहनत कर रहा है। उसे यकीन नहीं होता कि कैसे कोई उसके नाम, उसके पहचान को

अपनाकर ऐसा कर सकता है।

कहानी के बीच-बीच में कहानीकार समसामयिक घटनाओं का ब्योरा भी प्रस्तुत करते हैं। ''वही समय जब पटना का कलेक्टर बाढ़ का करोड़ों रुपये मार कर चंपत हो गया था।''[8] इत्यादि। मोहनदास और कस्तूरी अभी अधेड़ावस्था में हैं किन्तु मोहनदास 30-35 वर्ष की अवस्था में भी बूढ़ा जैसा प्रतीत होता है। इस अवस्था में पति-पत्नी के मध्य लड़ाई-झगड़ा, नोक-झोंक होना स्वाभाविक होता है, किन्तु विपदाओं के दबाव में उन दोनों को लड़ते-झगड़ते नहीं देखा गया। मोहनदास का दाम्पत्य जीवन प्रारम्भ से ही विपदाओं से घिरा हुआ था। उदय प्रकाश कहते हैं -''दरअसल विपदाएं और आफतें ही हैं जो स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों की नींव को मजबूत या कमजोर बनाती हैं।''[9]

'मोहनदास' में उपेक्षित दलित युवा वर्ग के संघर्ष का चित्रण किया गया है। वस्तुतः मोहनदास का संघर्ष आज की परिस्थिति में प्रत्येक उपेक्षित वर्ग के संघर्ष का प्रतीक है। उनका संघर्ष समाज के प्रभावशाली लोगों और परिस्थितियों से है। आज की वास्तविकता को देखने के लिए साहित्यकार को अतिरिक्त संवेदनशील होने की आवश्यकता है क्योंकि सामाजिक परिस्थितियाँ निरन्तर परिवर्तनशील हैं। सामाजिक परिस्थितियों में से अभीष्ट विषय-वस्तु के चयन में एक निश्चित जीवन दृष्टि होना आवश्यक है। संवेदनाओं के चित्रण के लिए मूर्त मानव का आधार होना भी उतना ही आवश्यक है। नामवर सिंह कहते हैं-''संवेदनाएँ किसी मानव व्यक्ति का आधार लेकर खड़ी होती है और एक निश्चित सन्दर्भ में पैदा होती है। यह सन्दर्भ चाहे सामाजिक हो या प्राकृतिक।''[10] व्यक्ति के संघर्ष के स्वरूप में परिवर्तन से संवेदनाओं में भी परिवर्तन होता है। मोहनदास के चरित्र में आम आदमी का संघर्ष दिखाई देता है, उसकी पीड़ा में डूब पाठक का हृदय द्रवित हो जाता है। सत्तासीन लोगों के हाथों में आम आदमी कठपुतली बन जाता है। मोहनदास दलित जाति का नवयुवक है। मोहनदास के माध्यम से दलितों को आज भी अपने मूल अधिकारों से किस तरह वंचित होना पड़ रहा है, इस ओर लेखक स्पष्ट संकेत करता है।'मोहनदास' कहानी का शिल्प अनूठा है। उदय प्रकाश अपने समय और समाज का सूक्ष्म निरीक्षण डबल विजन के साथ करते हैं- एक निरपेक्ष भाव से निकट जाकर विस्तार से और दूसरा गहराई से बारीक रूप में। मोहनदास दुःख ,मानसिक प्रताड़ना, संघर्ष, खीझ, बेबसी और लाचारी का बड़ा मार्मिक चित्रण नाटकीयता से करते हैं-

'तुम किसका फ्लैट खोज रहे हो?'
'सूर्यकान्त का! उन्नाव के पास के गांव का है।'
'उसके गांव का नाम क्या है?'
'गढ़ाकोला.....!'

वह आदमी थोड़ी देर चुप रहा। उसके होठ थरथराये, गड्ढों में धंसी आंखों में से पानी रिसने लगा। उसके सूखे हुए गले से एक कमजोर भर्राई हुई आवाज निकली : 'सूर्यकान्त ! गढ़ाकोला का सूर्यकान्त !''[11] आज न केवल सूर्यकान्त और मोहनदास वरन् और उसके जैसे कितने ही लोग हैं जिनकी पहचान चुरा ली गयी है, कोई शपथ देकर यह कहने को बाध्य हो गया है कि वह 'वह' नहीं है। उसे अपने नाम से, अपनी पहचान से डर लगने लगा है। यह कहानी मानवीय संवेदना के कुन्द होते मनुष्यता के क्षरण होते आज के समाज की वास्तविक परत को उघाड़ती है। 'मोहनदास' कहानी में लेखक की दृष्टि समकालीन समाज

के साथ-साथ वैश्विक परिदृश्य पर भी है। इतिहास,भूगोल, राजनीति की गतिविधियों पर भी वे प्रकाश डालते हैं। न केवल भारतीय समाज वरन् वैश्विक परिदृश्य आज भ्रष्टाचार के महाजाल में बुरी तरह फँस गयी है। जो भी सत्ता के प्रभाव से युक्त होता है, वह आम आदमी के अधिकारों पर डाका डाल भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे में न तो आम आदमी का भला हो सकता है,न देश का। यह समस्या न केवल भारत की है वरन् पूरा विश्व इससे ग्रस्त है। जब किसी समाज में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो तब वहाँ की आर्थिक उन्नति की कल्पना नहीं की जा सकती है। फलतः भय, भूख, गरीबी जैसी अनेक समस्याओं से दो चार होना पड़ता है। इस पर कहानीकार संकेत करता है- "जब भारत भ्रष्ट देशों की सूची में -संसार में 17से लेकर 83वें, परमाणु बम बनाने वाले देशों में छठे ,जनसंख्या में दूसरे और भयावह गरीबी में बस बांग्लादेश के ठीक ऊपर था।"[12] जब सत्तासीन लोगों के द्वाराखुलेआम भ्रष्टाचार का नंगा खेल खेला जाता है, तब मोहनदास जैसे आम आदमी को अपने वास्तविक अधिकारों से वंचित करने का खेल चलता है।

शासन की योजनाएँ, जो आम आदमी को ध्यान में रखकर लागू की जाती हैं, उसे भी समाज के प्रभावशाली लोग सांठ-गांठ करके हड़प लेते हैं। जाति, लिंग, नस्ल, धर्म के आधार परआम आदमी के साथ भेदभाव कर सामाजिक विषमता उत्पन्न किया जाता रहा है। श्योराज सिंह बेचैन कहते हैं-"भेदभाव चाहे जाति के आधार पर हो रहा हो या नस्ल अथवा लिंग के आधार पर,इसके विरुद्ध विश्वनीति बननी ही चाहिए और उस पर यदि अमल भी हो सके तो भारतीय समाज का भी समतामुखी भाग्योदय हो सके।"[13] उदय प्रकाश की कहानी 'मोहनदास' की संवेदनात्मक संरचना का केन्द्र समाज और समाज में उत्पन्न विसंगतियाँ नहीं वरन् समाज में रह रहे सामाजिक व्यक्ति मोहनदास की त्रासद स्थितियाँ हैं। "समाज बड़ी इकाई है और सामाजिक उसकी लघुतम इकाई।"[14] यहाँ कहानी का केन्द्र समाज नहीं सामाजिक है। व्यक्ति समाज में रहता है।अतः समाज अवचेतन रूप में आयेगा ही किन्तु समाज में रहने वाले व्यक्ति और उनकी त्रासदियाँ ही ध्रुव हैं।

औपन्यासिक औदात्य के साथ लिखा गया 'मोहनदास' वस्तुतः उपन्यास नहीं कहानी है। इसमें उपन्यास की तरह बहुआयामिता नहीं है। कथानक के वर्णन में विस्तार तो है किन्तु उस विस्तार को प्रसंगों में बांधने वाले अवसर बहुत कम हैं।जहाँ वर्णन हैं भी, तो वह रेखीय हैं। कथानक जैसे-जैसे आगे बढ़ता जाता है, उसमें एक ही गति रहती है। स्वयं उदय प्रकाश अपनी 'पीली छतरी वाली लड़की' के सन्दर्भ में कहते हैं-"लेकिन याद रखें यह लम्बी कहानी है, उपन्यास नहीं।इतने सारे पृष्ठों के बावजूद इसमें जो चीज अनुपस्थित है, वह है औपन्यासिकता या एपिबैलिटी।"[15] औपन्यासिकता में बहुआयामिता के कारण जो विस्तार होता है, वह यहाँ या तो नहीं है या है भी तो बहुत कम। बहुआयामिता की स्थिति में स्थितियों की जो आन्तरिक टकराहट, अन्तर्द्वन्द्व और उद्वेलन का निर्माण होता है, वह यहाँ नहीं हो पाता है। जब तक लेखक एक पात्र का निर्वहन करना चाहता है,करता है फिर उसे वहीं छोड़ आगे बढ़ जाता है। 'मोहनदास'कहानी में 'कोलियरी के बाबू' का छूटना इसी तरह का है।

उदय प्रकाश ने 'मोहनदास' के बहाने आम आदमी की पीड़ा को अपनी पैनी दृष्टि से अपनी रचना का विषय बनाया है। समकालीन सामाजिक यथार्थ को तत्कालीन सन्दर्भों के साथ आक्रामक रूप में प्रस्तुत किया है। कहानी के मध्य पाठक को रोककर विविध सन्दर्भों के माध्यम से ब्यौरों का प्रयोग उदय प्रकाश की मौलिक शैली है, जो कहानी में

अर्धविराम की अनुभूति कराता है। समकालीन समाज में पैसे वालों, जमींदारों, पुलिस,पटवारी, न्याय-प्रणाली, सत्ता, समाज के ठेकेदारों के द्वारा आम आदमी को किस तरह पीड़ित, उपेक्षित,शोषित होना पड़ रहा है, इसका कच्चा चिट्ठा इस कहानी के माध्यम से खोला गया है। 20वीं सदी में प्रेमचन्द के 'होरी' के सामने अलग प्रकार के संकट थे, 21वीं सदी में उदय प्रकाश के 'मोहनदास' के सामने नौकरी नहीं वरन् पहचान का संकट है। 21वीं सदी में आम आदमी और आदमियत की पहचान संकट में है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. उदय प्रकाश, मोहनदास, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण: 2013, पृष्ठ 8
2. वही, पृष्ठ 14
3. गोपाल राय, हिन्दी कहानी का इतिहास-3, नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. संस्करण: 2016, पृष्ठ 379
4. होमी दस्तूर, भवन्स नवनीत, मुंबई : भारतीय विद्या भवन प्रकाशक, संस्करण : मई 2018, पृष्ठ 124-125
5. उदय प्रकाश, मोहनदास. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. संस्करण: 2013, पृष्ठ 85-86
6. चौधरी, सुरेन्द्र, हिन्दी कहानी प्रक्रिया और पाठ. नयी दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण: 2010, पृष्ठ 13
7. उदय प्रकाश, मोहनदास, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. संस्करण: 2013, पृष्ठ 23
8. वही पृष्ठ 67
9. वही पृष्ठ 07
10. सिंह, नामवर, कहानी नयी कहानी.इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. संस्करण: 2012, पृष्ठ 47
11. उदय प्रकाश, मोहनदास.नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. संस्करण: 2013, पृष्ठ 43
12. वही, पृष्ठ 67
13. बेचैन, श्योराज सिंह. आलेख : दलित साहित्य और युगबोध, गाजियाबाद : लता साहित्य सदन. प्रथम संस्करण: 2005, पृष्ठ 99
14. ज्ञानरंजन, केसरवानी एवं राजकुमार. पहल 113. गाजियाबाद : अन्तिका प्रकाशन, संस्करण : सितम्बर 2018.पृष्ठ 131
15. उदय प्रकाश, पीली छतरी वाली लड़की, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. संस्करण: 2014, आवरण पृष्ठ

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

मनोहर श्याम जोशी के साहित्य की अन्तर्दृष्टि

• प्रभात सिंह

सारांश- मनोहर श्याम जोशी स्वतंत्रयोत्तर हिन्दी साहित्य के चेतनावान सर्जक रहे हैं। इनके साहित्य में मानव मूल्यों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है। जोशी जी के समग्र साहित्य में लोक जीवन और मानवीय संवेदना की गहराई अभिव्यंजित है। मनोहर श्याम जोशी का जन्म परतंत्रता और स्वतंत्रता की सन्धिक्षण में हुआ था। उनके बाद आयामी साहित्य साधना से उस अवधि की पीड़ा, वेदना और अशान्ति अभाव को दूर करने के लिए जो प्रयत्न किए गए वे निश्चित रूप से लोक कल्याणकारी कहे जायेंगे। बीसवीं सदी के सुप्रतिष्ठित लेखक मनोहर श्याम जोशी वर्तमान काल की उन्मुक्त भोग-उपभोग वाली पूँजीवादी अपसंस्कृति के बावजूद एक ऐसी विश्व-विरादरी के प्रादुर्भाव के प्रति आशान्वित हैं, जिसकी अन्तर्दृष्टि एक साथ मानवीय भी होगी और वैज्ञानिक भी। इस संदर्भ में उनकी सभी कृति निश्चय ही पाठकों के समक्ष अनेकानेक प्रेरणाप्रद विचार-सरणियों का उद्घाटन करती है और भविष्य को देखने वाली एक नई दृष्टि भी देती है।

मुख्य शब्द- **साहित्य, अन्तर्दृष्टि, निमज्जित, नव वैज्ञानिक परिधि**

प्रस्तावना - आज के बदलते वैज्ञानिक परिवेश के संदर्भ में उपन्यास, नाटक, आलोचना, स्फुट एवं प्रवीर्ण साहित्य, व्यंग, सम्पादकीय, पटकथा लेखन, निबन्ध, चलचित्र, यात्रा संस्करण, साक्षात्कार के साथ 21वीं सदी की धारदार टिप्पणी सम्बन्धी नव्यतम आयामों का पुनरावलोकन मनोहर श्याम जोशी द्वारा किया गया है।

जोशी जी की कलागत मान्यताओं को परखने के बाद यह तथ्य लोक को आलोकित करता है कि रचनाकार मनोहर श्याम जोशी जी ने सम्पूर्ण मान्यताओं का प्रतिस्थापन समसामयिक धारणाओं से निमज्जित करते हुए नव वैज्ञानिक परिधि में किया है। परिवेश और परिस्थिति को मापने के बाद मानव मन की मन:स्थिति को जोशी जी ने सम्पूर्ण वैशिष्ट्य का मानदण्ड माना है।

विश्लेषण - आचार्य विनोवा भावे के शब्दों में, "कोई भी साहित्य दूसरे के कहने से नहीं लिखता। वह तो अन्त: प्रेरणा से लिखता है। जबकि उसके लिए कोई बाहर निमित्त कारण हो जाता है। जब साहित्यिकार लिखने बैठते हैं तो उन्हें ऐसा भान नहीं होता कि उन्होंने जो लिखा है उससे संसार पर उपकार किया है। यदि ऐसा भान हो जाये तो वह साहित्य नहीं होगा। साहित्य तो वही है जो आत्मा के साथ चलता है। इसलिए जब वह अन्तस् की गहराई से बाहर आता है तो वह सारे संसार के लिए पावन हो जाता है।"[1]

शाश्वत सत्य है कि भाव किसी भी साहित्य का प्राण है। भाव साहित्य का विशिष्ट रूप नहीं उसका अस्तित्व है। भावना और सृजन के क्षेत्र में जोशी जी के महत्वपूर्ण प्रदेय को नकारा नहीं जा सकता। एक समर्थ एवं चेतनावान साहित्य सर्जक का दायित्व है कि वह साहित्य की सम्पूर्ण गतिविधियों पर सक्रिय रूप से नजर रखे। जन्म जिसका हुआ है उसकी मौत जरूर आयेगी। केवल जन्म लेने से हमें मनुष्यता का गौरव नहीं मिल जाता। जन्म तो जानवर का भी होता है। जन्म को जीवन में बदलने की संभावना समाज का दर्पण कहलाने

• शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

वाले साहित्य में निहित होती है। जन्म मृत्यु के बीच यदि जीवन न घटे तो मनुष्य पेट पूजन तक सीमिति रह जाता है।

भारतीय साहित्य के पास चार प्रमुख ग्रन्थ हैं – महाभारत रहना सिखाती है, गीता करना सिखाती है, रामायण जीना सिखाती है और भागवत मरना सिखाती है। जीवन के अंतिम प्रसंगों में मृत्यु जब जीवन में प्रवेश करती है तब इन्सान अपना मजहब भूल जाता है क्योंकि मौत इस सीमा को नहीं मानती। हम जितना अपनी अनुभूतियों के निकट होंगे उतना ही अपने जीवन को होश में जी सकेगे जिन्दगी खुद ही जीनी पड़ती है, दूसरों के कंधों पर तो शव यात्राएं निकला करती हैं। मनोहर श्याम जोशी ऐसे कलाकार, रचनाकार और साहित्य सेवी थे जिन्होंने जीना सीखा और उसे दूसरों को वितरित करके बताया कि कोई भी देश हो, समाज हो साहित्य के द्वारा जीवन का फूल तो एक जैसा ही खिलता हैं।

एक तलाश थी उनकी आंखों में जैसे भटक रही हो कुछ पाने को। सैतालिस साल की उम्र तक कविताएं और कहानियां लिखते रहने के बावजूद उनका बायोडाटा मूलतः पत्रकारिता ही रहा। सन् 1981 में उनका पहला उपन्यास छपकर आया ''कुरू कुरू'' स्वाहा। इसमें जबर्दस्त किस्सागोई, ट्रेजी कॉमिक का चक्कर, खिलेदड़ी भाषा। उस उपन्यास ने उन्हें एक नई पहचान दी। पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय बने।

1983 में एक और विधा में उन्होंने अभिव्यक्ति का खतरा उठाया। भारतीय टेलीविजन के पहली सोप ओपेरा ''हम लोग'' के लेखक के रूप में उनका नाम भारतीय टेलीवीजन के इतिहास में अमर हो गया। यह एक संभावना को जगाया और लोगों को इससे प्रेरणा मिली। उसके बाद तो धारावाहिकों की झड़ी लग गई और 'बुनियाद', 'मुगेरीलाल के हसीन सपने'', ''हमराही'', ''काक्काजी कहिन'', ''जमीन-आसमान'', ''गाथा'' जैसे धारावाहिकों के लेखक के रूप में जोशी जी ने लेखन की उस विधा का विस्तार ही किया। इस दौरान कई फीचर फिल्मों का लेखन भी उन्होनें किया। टेलीवीजन-माध्यम को लोकप्रिय बनाने में उनके लेखन का कितना योगदान है यह आज भी शोध का विषय बना हुआ है। बड़की, छुटकी, मास्टर, हवेलीराम, लालाजी, वृषभान, देवकी भौजाई, कक्का जी जैसे पात्र घर-घर वश गये। इस लोकप्रिय माध्यम में उन्होंने लेखक की पहचान पैदा की। उसका कद बनाया यह संभावना जगाई कि कम से कम एक लोकप्रिय माध्यम ऐसा है जो लेखक की अभिव्यक्ति को समुचित स्थान देता है।[12]

व्यावसायिकता और साहित्यिकता का बेजोड़ समन्वय उनके लेखन में दिखाई देता है। ''हरिया हरक्यूलीज की हैरानी'' और ''हमजाद'' जैसे अनूठे कथानक और शिल्प के कारण साहित्य के क्षेत्र में भरपूर सराहना बटोरी। नई सहस्त्राब्दि के आरंभ में उनकी दो कृतियां छपकर आई ''इक्कीसवीं सदी'' और ''क्याप''। दोनों की ही अपने-अपने कारणों से खासी चर्चा रही। 21वीं सदी जोशी जी की ऐसी कृति के रूप में सामने आई जो अपने समय की व्यापक और मूलगामी आलोचना करते हुए 21वीं सदी को कुछ इस तरह परिकल्पित करती है। उन्हीं के शब्दों में स्थिति विस्फोटक है लेकिन एक पूरी विडम्बना भरी सदी के बीतने के बाद मैं यह मानने को तैयार नहीं हो पा रहा हूँ कि समस्त मानवता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का संदेश देने वाली आधुनिकता हमें 21वीं सदी में विध्वंस ही विध्वंस प्रदान करके चरम विडम्बना को प्राप्त होगी। मनोहर श्याम जोशी को अपना कौशल आजमाने का अवसर बहुत ही कम मिला मगर जब मिला उन्होंने कुछ अनूठा ही कर दिखाया।[3]

साहित्य अकादमी सहित कई सम्मानों से सम्मानित उपन्यासकार जोशी रोजी-रोटी की खातिर छात्र जीवन में लेखक और पत्रकार बने। अत: उन्हें अभावग्रस्त लोगों का हमेशा ध्यान रहा। इसी कारण उनकी कृतियों में शोषित, पीड़ित और दलित वर्ग की समस्याओं को पुरजोर उठाया गया। व्यंग्य विधा को इस तरह पेश किया गया कि बड़े-बड़े और असरदार तकवा हैरानी में पड़ गया। 'कक्काजी कहिन' छुटभैया नेताओं की जमात और उस नस्ल का सबसे सटीक प्रतीक है।

निष्कर्ष - उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि, मनोहर श्याम जोशी का जन्म परतंत्रता और स्वतंत्रता की सन्धिक्षण में हुआ था। उनके बाद आयामी साहित्य साधना से उस अवधि की पीड़ा, वेदना और अशान्ति अभाव को दूर करने के लिए जो प्रयत्न किए गए वे निश्चित रूप से लोक कल्याणकारी कहे जायेंगे। बीसवीं सदी के सुप्रतिष्ठित लेखक मनोहर श्याम जोशी वर्तमान काल की उन्मुक्त भोग-उपभोग वाली पूँजीवादी अपसंस्कृति के बावजूद एक ऐसी विश्व-विरादरी के प्रादुर्भाव के प्रति आशान्वित हैं, जिसकी अन्तर्दृष्टि एक साथ मानवीय भी होगी और वैज्ञानिक भी। इस संदर्भ में उनकी सभी कृति निश्चय ही पाठकों के समक्ष अनेकानेक प्रेरणाप्रद विचार-सरणियों का उद्घाटन करती है और भविष्य को देखने वाली एक नई दृष्टि भी देती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. विनोवा भावे का साहित्यिक विचार (लेख), पृष्ठ 12, विनोवा भावे
2. छवि संग्रह-जीवनी, पृष्ठ 7, महात्मा गांधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा
3. 21वीं सदी-रुकना तेरा काम नहीं, चलना तेरी शान है, पृष्ठ 28, मनोहर श्याम जोशी

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

उपभोक्तावादी समाज एवं जल संरक्षण

● हेमलता सांगुड़ी

सारांश- हम अक्सर इन कहावतों को सुनते आये हैं ''जल ही जीवन है।'' ''बिन पानी सब सून।'' वास्तव में इन कहावतों का आशय यह है कि पृथ्वी पर जीवन का आधार यहाँ मौजूद जल ही है। इसके अभाव में पूरी धरती एक रेगिस्तान में तब्दील हो जायेगी। हम भाग्यशाली हैं कि इस ब्राह्मण्ड में पृथ्वी ही मात्र ऐसा ग्रह है जो जल संपदा से परिपूर्ण है, लेकिन हम इंसानों की नासमझी व उपभोक्तावादी समाज के कारण यह जल संपदा दिनोंदिन न सिर्फ कम होती जा रही है, बल्कि प्रदूषित भी होती जा रही है। इस संपदा पर आज संकट के बादल मँडरा रहे हैं। चूँकि जल पर जीवन निर्भर है इसलिए यह कह सकते हैं कि इसके साथ हमारा जीवन भी संकटग्रस्त होता जा रहा है। यह खतरा दिन-प्रतिदिन गहराता जा रहा है और भविष्य में इसके और भी गहराने के आसार दिख रहे हैं। इससे निजात पाने के लिए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने मन की बात कार्यक्रम में जल संरक्षण को एक जन आन्दोलन बनाने का सुझाव दिया है। पानी की यह समस्या जलवायु परिवर्तन के चलते और गहरा गई है। ये भी सत्य है कि अगर समय रहते हम न चेते तो हमारी आने वाली पीढ़ी इस जल संकट का दंश झेलने को विवश हो जायेगी।

मुख्य शब्द- उपभोक्तावादी समाज, जल संरक्षण, पंचतत्व

प्रस्तावना- हमारे प्राचीन ग्रन्थों में मानव शरीर का निर्माण जिन पंचतत्वों से मिलकर होना बताया गया है उनमें जल का स्थान प्रमुख है। जीव-जन्तुओं के लिए जल का कोई विकल्प नहीं है। हमारे शरीर में भी 70 से 80 प्रतिशत तक जल ही होता है। शायद इसीलिए जल को 'अमृत' की संज्ञा दी जाती है। पहले समय में जहाँ पानी होता था, लोग वहीं बसा करते थे। लेकिन अब इसके विपरीत जहाँ हम बसते हैं, वहाँ जल ले जाना चाहते हैं। बहुमंजिली इमारतें इसका बड़ा उदाहरण है। प्रगति व पानी ने सबकी व्यवस्था की थी चाहे वो पहाड़ी हो या मैदानी इलाका। पहाड़ों में धारे गाँवों को तर रखते थे तो तालाब मैदानों को। राजस्थान, जहाँ पानी तहलटी में था, वहाँ कुओं की व्यवस्था थी। इतना ही नहीं खेती-बाड़ी की फसलें भी प्रगति द्वारा तय थी। जहाँ पानी नहीं वहाँ वर्षा पोषित फसलों को साधा गया और जहाँ सतही पानी उपलब्ध था। वहाँ धान गेहूँ ने जगह बनाई। आज इसके विपरीत हम खेतों में पानी के लिए पाताल पहुँच गये, अब इसलिए कुएँ भी हाथ से निकलने को है। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि हमने पानी की नई व्यवस्था कायम की, जिसमें वितरण और उपयोग पर ज्यादा जोर था न कि संरक्षण में। हमने पानी के लिए नदियों से नहरों का जाल तो बनाया पर उसके पानी के स्तर की चिन्ता नहीं की और परिणामस्वरूप देश की छोटी बड़ी 4500 नदियाँ साथ छोड़ने को बैठ गई है। कारण स्पष्ट है कि नदियों के जलागम अब इस हाल में नहीं बचे कि वो पहले की तरह पानी को जोड़ सके तथा वनाच्छादित क्षेत्रफल घटा है, जिससे वर्षा के पानी को सोखने की क्षमताएँ घट गई। इसका दूसरा नुकसान बाढ़ के रूप में भी झेलना पड़ रहा है।[1]

हमारी पृथ्वी की सतह का लगभग 70 प्रतिशत भाग पूर्णतया जल से ढका है। यह जलराशि नदियों, झीलों, समुद्रों और बर्फ के रूप में उपस्थित है। जल सर्वत्र उपलब्ध है और

● **असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी.बी.एस. कालेज, कानपुर**

सभी को जल की बेहद आवश्यकता है। लेकिन पृथ्वी पर उपस्थित जल का अधिकांश भाग सागरों में उपस्थित है जो अपने खारेपन के कारण पीने के योग्य नहीं है। सागरों में 97 प्रतिशत से भी अधिक जल उपस्थित है जो हमारे लिए लगभग बेकार है। इसे दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि पृथ्वी पर जलराशि की इतनी विशालता होने के बावजूद पेयजल की मात्रा अत्यन्त सीमित है। जैसा कि निम्न तालिका संख्या-1 में दर्शाया गया है[2] -

तालिका संख्या-01

पृथ्वी पर उपस्थित जल का स्वरूप	मात्रा (प्रतिशत) में
सागर	97.25
पर्वतों पर बर्फ के रूप में	2.05
भूमिगत जल	0.68
झीलों में	0.01
मिट्टी में (नमी के रूप में)	0.005
वायुमण्डल में	0.001
नदियों में	0.0001
जैव मण्डल में	0.00004

भारत में उपलब्ध जल संसाधन की दृष्टि से आंकलन करें तो यह बात सामने आती है कि 2001 में प्रति व्यक्ति 1800 क्यूबिक मीटर पानी उपलब्ध था, जो 2050 ई. में घटकर 1000 क्यूबिक मीटर हो जायेगा। भारत इस समय उपयोग हेतु तथा पेयजल के गंभीर संकट से गुजर रहा है और यह संकट वैश्विक स्तर पर साफ दिख रहा है।[3]

जल संकट - वर्तमान स्थिति – भारत में जल उपलब्धता व उपयोग के कुछ तथ्यों पर विचार करें तो भारत में वैश्विक ताजे जल स्रोत का मात्र 4 प्रतिशत मौजूद है जिससे वैश्विक जनसंख्या के 18 प्रतिशत (भारतीय आबादी) हिस्से को जल उपलब्ध कराना होता है। आँकड़ों के अनुसार लगातार दो साल के कमजोर मानसून के बाद देश भर में लगभग 330 मिलियन लोग (देश की एक चौथाई आबादी) गंभीर सूखे के कारण प्रभावित हुए हैं।

नीति आयोग द्वारा वर्ष 2018 में जारी कम्पोजिट वाटर मैनेजमेंट इंडेक्स रिपोर्ट में बताया गया है कि देश भर के लगभग 21 प्रमुख शहर (दिल्ली, बंगलूर, चेन्नई, हैदराबाद और अन्य) वर्ष 2020 तक शून्य भूजल स्तर तक पहुँच जाएंगे एवं इसके कारण लगभग 100 मिलियन लोग प्रभावित होंगे। साथ ही रिपोर्ट में कहा गया है कि वर्ष 2030 तक भारत में जल की मांग, उसकी पूर्ति से लगभग दोगुनी हो जाएगी। देश में वर्ष 1994 पानी की उपलब्धता प्रति व्यक्ति 6000 घनमीटर थी, जो वर्ष 2000 में 2300 घनमीटर रह गई तथा वर्ष 2025 तक इसके और घटकर 1600 घनमीटर रह जाने का अनुमान है। आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत के शहरी क्षेत्र में 970 लाख लोगों को पीने का साफ पानी नहीं मिलता है। जबकि देश के ग्रामीण इलाकों में तकरीबन 70 प्रतिशत लोग प्रदूषित पानी पीने और 33 करोड़ लोग सूखे वाली जगहों में रहने को मजबूर हैं। यदि देश की राजधानी दिल्ली की बात करें तो भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा जारी एक हालिया रिपोर्ट में सामने आया था कि दिल्ली जल बोर्ड द्वारा सप्लाई किया जाने वाला पानी BSI मानकों पर खरा नहीं उतरता है और वह पीने योग्य नहीं है। भारत में तकरीबन 70 प्रतिशत जल प्रदूषित है, जिसकी वजह से जल गुणवत्ता सूचकांक में भारत 122 देशों में 120वें स्थान पर था।[4]

जल की बर्बादी से जुड़े कुछ पहलू- बारिश की बूँदों की महत्ता तो रेगिस्तान में रहने वाला ही समझ सकता है। यह तो हमारा सौभाग्य है कि हर साल हमारी जल जरूरत से एक हजार अरब घनमीटर ज्यादा पानी बारिश के रूप में देश के भौगोलिक क्षेत्र में बरस जाता है। पहले

जगह-जगह ताल, तलैया, पोखर और झीलों के साथ नदी जैसे जलस्रोत थे, जो इस बारिश का अधिकांश हिस्सा खुद में समा लेते थे। इससे भूजल स्तर ऊँचा बना रहता था। इन जलस्रोतों में सतह पर मौजूद पानी सिंचाई सचित जानवरों के पीने आदि के काम में लिया जाता था। इससे भूजल पर बहुत भार भी नहीं पड़ता था। आज हालात बदल गये है। अमूमन जलस्रोत बचे ही नहीं, जो है वहाँ पार्किंग बन गई है, रिहायश तैयार है, खेती हो रही है। इसके इतर जो जमीन है उसका कंक्रीटीकरण किया जा चुका है। लिहाजा एकत्र हुआ पानी रिसकर धरती की गोद में समा नहीं पाता हैं नालों के साथ बहकर नदियों से होते हुए समुद्र में जाकर नमकीन हो जाता है।

बारिश का दुरुपयोग - केन्द्रीय जल आयोग के अनुसार भारत की सालाना जल जरूरत 3000 अरब घनमीटर है। देश में सालाना औसतन 4000 अरब घनमीटर की बारिश होती हैं दुखद यह है कि 130 करोड़ लोग इन अनमोल बूँदों के तीन चौथाई हिस्से का भी सदुपयोग नहीं कर पाते है, जिसके चलते यह हर साल बर्बाद हो जाता है। एकीकृत जल संसाधन विकास पर गठित राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट बताती है कि सालाना लोगों द्वारा बारिश के कुल 1123 अरब घनमीटर पानी का ही इस्तेमाल हो पाता है। इसमें 690 अरब घनमीटर सतह पर मौजूद जल है और 433 अरब घनमीटर जल रिसकर भूजल में मिलता है। बाकी सब व्यर्थ चला जाता है।

भूजल का हाल - पेयजल के लिए हमें सर्वाधिक भूजल की ही आवश्यकता होती है, लेकिन देश की कुल सिंचाई का 80 फीसदी धरती की कोख सुखाकर की जा रही है। ज्यादातर किसानों और उद्योगों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा रहा है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार इन दोनों मदों में देश के कुल भूजल का 12 फीसदी हिस्सा खर्च किया जा रहा है और आज भारत सबसे अधिक भूजल दोहन करने वाला देश बन गया है।

भूजल और पेयजल - आज विडम्बना यह है कि भारत जितना भूजल दोहन करता है। उसका सिर्फ आठ फीसदी ही पेयजल के रूप में इस्तेमाल करता है। भारत का अधिकांश भूजल गुणात्मक रूप से अभी पीने लायक है जबकि अन्य स्रोतों का पानी प्रदूषित हो चुका है। समस्या इसलिये जटिल हो रही है क्योंकि देश की सिंचाई प्रणाली की कुशलता अभी भी निम्न स्तर की है। सिंचाई के लिए जितना पानी इस्तेमाल होता है उसमें से करीब 60 फीसदी बर्बाद हो जाता है।

गिरता भूजल स्तर - सरकारी अध्ययन बताते हैं कि देश का भूजल स्तर 0.3 मीटर सालाना की दर से गिर रहा है। लिहाजा सिंचाई के लिए अन्य स्रोतों का इस्तेमाल बढ़ाकर भूजल के दबाव को कम करने की जरूरत है।

उद्योगों की जरूरत - एक सार्वभौतिक विलायक, शीतलता और सफाई करने वाले तत्व के रूप में जल उद्योगों की अनिवार्य जरूरत है। ज्यादातर उद्योगों ने भूजल निकालने के लिए खुद के बोरवेल लगा रखे हैं। अत्यधिक दोहन के चलते कई बार इन उद्योगों को पानी मिल जाने के कारण कारोबार ठप्प भी करना पड़ता है। वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट की एक रिपोर्ट के अनुसार 2013 से 2016 के बीच 14 से 20 थर्मल पावर प्लांट को पानी की किल्लत के चलते अपना काम बन्द करना पड़ा था।

घरेलू बर्बादी और आर.ओ. प्यूरीफायर - ऐसा अनुमान है कि हमारे घरों में प्रयोग होने वाला 80 फीसदी पानी बर्बाद हो जाता है। अधिकांश मामलों में इस पानी को शुद्ध करके अन्य

जगह भी इस्तेमाल नहीं हो पाता है। इजरायल और आस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं है। इजरायल अपने शत-प्रतिशत इस्तेमाल पानी का शुद्धीकरण करता है और घर में इस्तेमाल होने वाले पानी के 94 फीसदी को रिसाइकिल किया जाता है वाटर प्यूरीफायर का कारोबार तेजी से बढ़ रहा है लेकिन इससे होने वाले पानी का नुकसान बड़ी चिन्ता है। आर. ओ. से एक लीटर पानी हासिल करने के लिए चार लीटर पानी की जरूरत होती है। मैसाचुसेटस इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी द्वारा अहमदाबाद में किये गये अध्ययन के अनुसार आर.ओ. आधारित वाटर प्यूरीफायर 74 फीसदी पानी का नुकसान करते हैं।

बोतल बंद पानी - ब्यूरो ऑफ इंडियन स्टैण्डर्ड से पंजीकृत 6000 कम्पनियाँ देश में बोतल बंद पानी के कारोबार से जुड़ी हुई है। औसतन हर घण्टे एक कम्पनी पाँच हजार लीटर से 20 हजार लीटर तक पानी धरती से निकाल रही है। सालाना 15 फीसदी की दर से बढ़ रहे इस उद्योग से पानी इस्तेमाल में बर्बादी की दर करीब 35 फीसदी है।5

जल प्रदूषक के रूप में प्लास्टिक/पॉलीथीन- आजकल नगरों, महानगरों में जो कचरा विभिन्न मानवीय क्रियाकलापों के फलस्वरूप पैदा होता है उसमें भारी मात्रा में प्लास्टिक तथा पॉलीथीन कचरा तो होता ही है साथ ही इस प्लास्टिकयुक्त कचरे को आजकल प्लास्टिक या पॉलीथीन की थैलियों में भरकर फेंका जाना एक प्रचलन बन गया है। जिस कारण नगरों, महानगरों और यहाँ तक कि कस्बों में भी कूड़ेदान, प्लास्टिक की वस्तुओं और पॉलीथीन की थैलियों से पट गये हैं। नदियों में प्लास्टिक की प्रयुक्त वस्तुओं और पॉलीथीन की दिनोंदिन बढ़ती मात्रा के कारण नदियों का स्थानीय पर्यावरण बुरी तरह दूषित हो जाता हैं सैकड़ों स्थलीय एवं जलीय जीवन असमय ही मौत के मुँह में समा जाते हैं। यही प्लास्टिक व पालीथीन नदियों के साथ समुद्र में मिल जाते हैं। जिससे समुद्र का स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र बुरी तरह से प्रभावित होता है।

सागर में नाभिकीय विस्फोट- सागरों में कृत्रिम रेडियोधर्मी पदार्थ मुख्य रूप से नाभिकीय विस्फोटों में उत्पन्न उस धूलि के रूप में पहुँचते हैं, जो विस्फोटों के दौरान वायुमण्डल में पहुँच जाती है और फिर धीरे-धीरे पृथ्वी पर गिरती है। साथ ही थल पर किये गये विस्फोटों से उत्पन्न रेडियोधर्मी मलबे का भी एक अंश नदियों के पानी में मिलकर अथवा वर्षा के पानी के साथ बहकर सागर में पहुँच जाता है। सागर में रेडियोधर्मी पदार्थ उस समय भी काफी मात्रा में पहुँचते हैं जब नाभिकीय विस्फोट सागर के भीतर ही या छोटे टापुओं पर किया जाता है।

निर्यात का दुष्परिणाम- हम भारी मात्रा में अपने पानी को एक तरह से चीनी, लाल मिर्च और मेंथा तेल में पैक करके विदेशों को निर्यात कर देते हैं। इस वर्ष हमने 21 लाख टन चीनी, पांच लाख टन लाल मिर्च और 17 हजार टन मेंथा तेल का निर्यात किया गया है। इन फसलों के उत्पादन में पानी की भारी मात्रा में खपत होती है। निर्यातित चीनी के उत्पादन में ही हमने 20 अरब घन मीटर पानी का उपयोग किया है। अतः केन्द्र सरकार को चाहिए कि इन फसलों पर भारी निर्यात टैक्स लगा दे, ताकि इनका निर्यात बंद हो जाए और इनमें उपयोग होने वाला पानी बच जाए। साथ-साथ अपनी घरेलू खपत के लिए भी अंगूर जैसी फसलों के उत्पादन पर नियंत्रण करने की जरूरत है। दक्कन के पठार में हजारों फीट गहरे ट्यूबवेल डालकर अंगूर की बड़ी मात्रा में खेती की जा रही है। हमें पहले पीने का पानी चाहिए। अंगूर बाद में। अंगूर के स्थान पर हम चीनी अथवा स्टीविया का उपयोग कर सकते हैं।

केन्द्र सरकार को ऐसे कानून बनाना चाहिए ताकि जल संरक्षण की दृष्टि से विशेष फसलों को प्रतिबंधित किया जा सके। देश के उन इलाकों में जहाँ भूगर्भीय जलस्तर में भारी

गिरावट आ रही है वहाँ चीनी, लाल मिर्च, मेंथा और अंगूर जैसी फसलों का उत्पादन तत्काल बंद कर देना चाहिए।[6]

पानी और आर्थिक विकास - 1962 में भारत की प्रति व्यक्ति जीडीपी चीन की दोगुनी थी और इसकी प्रति व्यक्ति स्वच्छ भूजल की हिस्सेदार चीन की 75 फीसदी थी। 2014 में भारत की स्वच्छ भूजल की प्रति व्यक्ति हिस्सेदारी चीन की 54 फीसदी रह गई। इस समय तक चीन की प्रति व्यक्ति जीडीपी भारत से तीन गुना हो चुकी थी। पिछले साल शिमला की रोजाना जलापूर्ति 4.4 करोड़ लीटर से कम होकर 1.8 करोड़ लीटर जा पहुँची। पानी के अभाव में पर्यटन चौपट हो गया। ऐसे में पानी नहीं होगा तो पर्यटन नहीं होगा, उद्योग अपने कच्चे माल को तैयार नहीं कर पाएंगे। लिहाजा देश की पांच लाख करोड़ डॉलर की अर्थव्यवस्था बनने का सपना मूर्त रूप नहीं लेगा। देश की जीडीपी में खेती की 17 फीसदी हिस्सेदारी है। पंजाब देश के चावल उत्पादन में 35 फीसदी और गेहूँ उत्पादन में 60 फीसदी की हिस्सेदारी रखता है, वहाँ भूजल स्तर हर साल आधे मीटर की दर से गिर रहा है। अभी देश में ज्यादातर सिंचाई डूब प्रणाली के तहत की जाती है जिसमें खेत को पानी से लबालब कर दिया जाता है जो गैरजरूरी है। पौधों की जड़ों तक पानी पहुँचाने के लिए इजरायल की तर्ज पर ड्रिप और स्प्रिंकलर प्रणाली को व्यापक स्तर पर विकसित करने की दरकार है। तभी हम पर ड्राप मोर क्राप को चरितार्थ कर पाएंगे। कम पानी वाली फसलों और प्रजातियों के इस्तेमाल को बढ़ावा देने की दरकार है। एक किग्रा चावल पैदा करने में 4500 लीटर पानी खर्च होता है जबकि गेहूँ के लिए यह आंकड़ा 2000 लीटर है।[7]

जल संपदा को कैसे सहेजें- 'नल से जल' सरकार की एक नई पहल है जो 2024 तक सभी शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों से मौजूदा जल संकट को दूर करने और सभी घरों में पाइप से पानी प्रदान करने का वादा करती है। यदि इसे सफलतापूर्वक लागू किया जाता है तो यह गेम चेंजर रहेगा। सभी के लिए पाइप जलापूर्ति का प्रावधान करने के लिए नए कौशल, उच्च निवेश उत्तरदायी संस्थान और जल संवर्धन और उच्च उपयोग दक्षता की आवश्यकता होगी, इसके लिए हमें ये कदम उठाने होंगे।

देश में जल के गहराते संकट को देखते हुए मोदी सरकार ने 'जल शक्ति मंत्रालय' का गठन किया हैं भाजपा ने अपने संकल्प पत्र में भी ग्राम स्वराज्य के तहत यह घोषणा की है कि वह 2024 तक सभी घरो में शौचालय के साथ ही साथ प्रत्येक घर को 'नल से जल' की आपूर्ति सुनिश्चित करेगी। सवाल यह उठता है कि घरों में जल की आपूर्ति के लिए वह जल कहां से लाएगी? क्या घरों में जलापूर्ति के लिए सरकार भी बोरिंग कर भूमिगत जल का ही उपयोग करने वाली है? यह सवाल इसलिए, क्योंकि देश के कुछ हिस्सो में भूमिगत जल का स्तर विगत चार दशक से 20 से 50 फिट तक नीचे चला गया है। देश के कई ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ अप्रैल आते-आते ताल-तलैया के साथ ही साथ हैंडपंप भी सूख जाते हैं। इसके तात्कालिक उपाय के रूप में राज्यों की सरकारें हैंडपंप की गहराई बढ़ाती जा रही है, पर चूँकि भूगर्भ जल तेजी से नीचे जा रहा है। अत: पेयजल का संकट दिन प्रतिदिन गहराता जा रहा है। देखा जाए तो तीन तरफ से समुद्र और उत्तर में हिमालय से घिरे राष्ट्र के समक्ष आज जो जल संकट पैदा हुआ है, वह हमारी अपनी देन है। वास्तव में हमने जल संरक्षण के अपने पारंपरिक तौर-तरीकों को भुला दिया है। गाँवों-देहातों में आज भी यह कहावत प्रचलित है, 'ऊपर का जल ऊपर के लिए और नीचे का जल पीने के लिए।' अर्थात् दैनिक नित्यकर्म जैसे कि शौच, स्नान, कपड़े धोने, पशुओं और कृषि

कार्यों हेतु वर्षा के जल का उपयोग किया जाता था और खाना बनाने और पीने के लिए भूमिगत जल का जो कुओं से निकाला जाता था। वर्षा जल के संग्रह के लिए बावड़ी, तालाब आदि थे, जिनकी देखभाल की जवाबदेही सभी की थी। हिमालय से निकलने वाली नदियों में भी साल भर शुद्ध जल का प्रवाह पर्याप्त मात्रा में रहता था।

एक समय हिमालय पर बरगद, पाकड़, जामुन, महुआ आदि फलदार और जड़दार पेड़ होते थे जो अपनी जड़ों से मिट्टी को बांधे रहते थे। वर्षा के समय इन्हीं वृक्षों की जड़ों के कारण बारिश का पानी हिमालय में रुका रहता था और फिर धीरे-धीरे कर रिसते हुए नदियों में बहता रहता था, लेकिन अंग्रेजों ने रेलवे की पटरी के लिए वैसे वृक्षों को हिमालय में विकसित किया जो रेलवे की पटरी के लिए काम तो आते थे, पर उनकी छाया के नीचे घास भी पैदा नहीं होती थी। हमारी उपेक्षा और वनों की अंधाधुंध कटाई से हिमालय में धीरे-धीरे जड़दार वृक्ष खत्म हो गए। परिणाम हमारे सामने हैं। वर्षा के समय जल के साथ ही हिमालय से मिट्टी और गाद के कारण नदियों में सिल्ट की समस्या पैदा हो रही है। नदियों में जल प्रवाह और जल की मात्रा में तेजी से कमी आ गई है। जलप्रवाह घटने और नगरीय संस्कृति के प्रभाव में सीवरेज और गंदे जल को प्रवाहित करने से नदियां इतनी प्रदूषित हो गई हैं कि मनुष्य की बात तो छोड़ दीजिए, पशु-पक्षी भी उस जल का उपयोग नहीं करते। जल संकट का दूसरा सबसे बड़ा कारण है आधुनिकता और सुविधायुक्त हमारी जीवन शैली। एक व्यक्ति शौच और लघुशंका के लिए जब-जब शौचालय जाता है तब-तब फ्लश चलाता है। इस दौरान वह लगभग 4-5 लीटर शुद्ध पानी को गंदे नाले में बहा देता है। प्रति व्यक्ति यह बर्बादी कम से कम 30-35 लीटर प्रतिदिन तो है ही। पहले नदी या तालाब में स्नान करने के साथ ही साथ वहाँ कपड़े भी धो लिए जाते थे। आजकल घरो में वाशिंग मशीन आ गई है। वाशिंग मशीन में कितने जल का इस्तेमाल होता है, इसका कोई हिसाब नहीं। पेयजल के लिए घरों में लगी आर.ओ. मशीन एक लीटर पानी साफ करती है और आधा लीटर बेकार बहाती है। देश में उत्पन्न जल संकट का एक और बड़ा कारण है बोरिंग। आज गांवों से लेकर शहरों तक बोरिंग के माध्यम से भूमिगत जल का तेजी से दोहन हो रहा है। सरकारें भी कृषि कार्य के लिए किसानों को बोरिंग पर सब्सिडी दे रही हैं। बोरिंग के कारण घटते भूमिगत जलस्तर का प्रभाव पेयजल के लिए लगाए गए हैंडपंप और कुओं पर पड़ रहा है।[8]

अधिकांश सुरक्षित पाइप पेयजल योजनाएँ भूजल आपूर्ति पर आधारित होंगी। इसलिए सभी पारम्परिक ओर आधुनिक भूजल पुनर्भरण हस्तक्षेपों को अपनाकर स्थानीय भूजल संसाधनों के संवर्द्धन के प्रयास किए जाने चाहिए। भारत के प्रत्येक राज्य और क्षेत्र के पास अपने समय की जांच की गई प्रौद्योगिकी और प्रथाएं हैं, जो स्थानीय जल सुरक्षा प्रदान करती हैं। सफल उदाहरणों में राजस्थान में जोहड़, तालाब, टनका, खड़ीन, दिल्ली में बावली, हौज और तालाब, बुन्देलखण्ड में चंदेला टैंक, केरल में सर्ग, मंदिर और दक्षिणी भारत में सामुदायिक टैंक, पंजाब में टोबा, बिहार में आहार और पाइनेस और ताल, और अपाटनी और उत्तर पूर्व में बांस से टपकना शामिल है।

किसी समृद्ध गाँव के निवासियों का कल्याण सुनिश्चित करने वाला महत्वपूर्ण घटक प्रभावी जल संरक्षण है। प्रधानमंत्री द्वारा मई 2015 में सूखा प्रभावित 13 राज्यों के मुख्यमंत्रियों के साथ बैठक की गई और उन्हें जल संरक्षण का ध्यान केन्द्रित करने हेतु प्रेरित किया गया। इसे गति देने के लिए राज्यों के नेतृत्व में एक मंच तैयार किया गया। राजस्थान में मुख्यमंत्री जल स्वावलम्बन अभियान, आंध्र प्रदेश में नीरू-चेट्टू, तेलंगाना में काकतीय

मिशन, महाराष्ट्र में पलयुक्त शिवार तथा पाल संरक्षण उपक्रम, झारखण्ड में डोभाफार्म तालाब का निर्माण तथा अन्य कई राज्यों में विशिष्ट राज्य जल संरक्षण कार्यक्रम चलाये गये। जल संसाधन मंत्रालय एवं भूमि संसाधन विभाग की सहभागिता में नये जल संरक्षण मिशन के दिशा-निर्देशों के अनुसार जल संबंधी समस्याओं वाले 2264 ब्लाकों को वरीयता देते हुए तकनीकी रूप से मजबूत वैज्ञानिक दृष्टि से पूरित जल संरक्षण योजनाओं पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।[9]

जल संरक्षण व जल प्रबंधन के प्रमुख तरीके- तालाबों में पुनर्भरण कुओं की स्थापना करके स्थानीय जल आपूर्ति को बढ़ाने के लिए इनका प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है। इस तरह के प्रयास से गांव को अत्यधिक बाढ़ से भी बचाया जा सकेगा। उत्तर और दक्षिण दोनों से कई अच्छे उदाहरण है।, यहाँ कैस्केडिंग चेक डैम, सोख-गड्ढों, खाइयों, गहन वृक्षों और घास रोपण के निर्माण के माध्यम से समुदाय के ठोस प्रयासों ने सूखी नदियों और नदियों को पुनर्जीवित करने में मदद की है। इस तरह के प्रयासों को गुजरात और कर्नाटक में बढ़ाया गया है।

वेटलैंड्स, झीलों, जल निकायों, जो शहर के लिए स्पंज के रूप में कार्य करते हैं उन्हें कभी भी उद्योगों और शहरीकरण के लिए अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए। क्यों कि वो बाढ़ को अवशोषित करने और भूजल को रिचार्ज करने में संतुलन रखते हैं। डेवलपर्स का ऐसा लालच चेन्नई में हाल के जल संकट का एक मुख्य कारण था।[10] जल संरक्षण हेतु प्रत्येक नागरिक को निम्नलिखित बातों का पालन करना चाहिये-

- हर नागरिक शावर की जगह बाल्टी में पानी भरकर स्नान करे।
- सेविंग करते समय नल बन्द रखें।
- बर्तन धुलते समय नल के स्थान पर टब का प्रयोग किया जाये।
- आज गाँवों और शहरों के तालाब पाट कर घर बना लिये गये हैं। अत: जरूरी है कि जल संरक्षण हेतु गाँव और शहरों में तालाब फिर से खोदे जायें।
- वर्षा का जल छत पर संरक्षण कर उसका उपयोग करना। इसलिए छत पर पानी की टंकी बनायी जाये।
- कटते वृक्षों के कारण भूमि की नमी लगातार कम हो रही है, जिससे भूजल स्तर पर बुरा असर पड़ रहा है। अत: जरूरी है वृक्षारोपण कार्यक्रम हेतु जागरुकता लाई जाये।

जल संरक्षण एवं जल प्रबंधन विषय को व्यापक अभियान की तरह सरकारी और गैर सरकारी दोनों स्तरों पर प्रचारित करने की जरूरत है जिससे सभी छोटे-बड़े इस विषय की गम्भीरता को समझें और इस अभियान में अपनी भूमिका अदा करें। जल संरक्षण हेतु रेन वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम का सहारा लेना चाहिए। यह तकनीक पानी की कमी से निबटने का तरीका भर नहीं है। कई बार तो ऐसा देखने में आया है कि इस तकनीक से इतना जल एकत्र हो जाता है कि दूसरे स्रोत की आवश्यकता ही नहीं पड़ती और यहाँ तक कि दूसरे को पानी उधार देने में सक्षम हो जाते हैं। महानगरों में सीवर-व्यवस्था को और अधिक चुस्त-दुरुस्त बनाया जाना चाहिये। जिन शहरों या कस्बों में सीवर-व्यवस्था नहीं है, वहाँ भी इसका प्रबंध करना चाहिये। सीवर को कभी भी सीधे नदी आदि में नहीं डालना चाहिये। इसके स्थान पर सीवर जल को पूर्णतया उपचारित करने के बाद ही प्राकृतिक जल-स्रोतों में डालना चाहिये।

उद्योगों आदि को कानूनन बाध्य किया जाना चाहिये कि वे अपने अपशिष्टों को उपचारित करने के बाद ही प्राकृतिक जलस्रोतों में छोड़ें। भूमि की सिंचाई में भी घरेलू व्यर्थ-जल का उपयोग किया जा सकता है। किंतु हानिकारक रसायन तथा भारी धातुएँ मिली होने पर औद्योगिक अपशिष्टों को कृषि क्षेत्र से दूर ही रखना चाहिये। जलकुंभी में भारी-धातुओं को शोषित करने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। इसलिये मल-जल में जलकुंभी उगने देनी चाहिये। यह मल-जल (सीवेज) के फॉस्फोरस और नाइट्रेट को अवशोषित करके मल-जल को कम हानिकारक बना देती है। इस तरह जलकुंभी का पौधा, बी.ओ.डी. और सी.ओ.डी. में भी काफी कमी ला देता है। चीनी-मिलों, चर्म-उद्योग और कागज उद्योग से निकले अपशिष्ट में भी जल-कुंभी उगायी जा सकती है। यह कैडमियम, लैड पारा तथा निकिल आदि को भारी मात्रा में अवशोषित कर लेती है। तीव्र औद्योगिकीकरण को रोका जाना चाहिये। इसके विपरीत वर्तमान उद्योगों की कार्य-क्षमता और उत्पादकता में वृद्धि के लिये उपाय किये जाने चाहियें। कल-कारखानों से निकलने वाले प्रदूषणकारी पदार्थों की निकासी को नियंत्रित किया जाना चाहिये। कल-कारखाने आदि शहरों तथा मानव बस्तियों से दूर स्थापित किये जाने चाहियें। पर्यावरण संबंधी विषय स्कूली पाठयक्रम में अनिवार्य रूप से शामिल किये जाने चाहिये। जनसाधारण को प्रदूषण के बारे में शिक्षित करके उन्हें प्रदूषण रोकने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। प्रदूषण रोकने के लिये जन-साधारण का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। पर्यावरण संबंधी कानूनों का कड़ाई से पालन होना चाहिये। आवश्यक होने पर नये कानून भी बनाये जाने चाहिये।[11]

नीति आयोग की /75 कार्यनीति और जल प्रबंधन- वर्ष 2018 में नीति आयोग ने अभिनव भारत /75 के लिये कार्यनीति जारी की थी जिसके तहत यह निश्चित किया गया था कि वर्ष 2022-23 तक भारत की जल संसाधन प्रबंधन रणनीति में जीवन, कृषि, आर्थिक विकास, पारिस्थितिकी और पर्यावरण के लिये पानी की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने हेतु जल सुरक्षा की सुविधा होनी चाहिये। नागरिकों और पशुओं के लिये स्वच्छता हेतु पर्याप्त और सुरक्षित पेयजल प्रदान कराना। सभी खेतों में उचित सिंचाई व्यवस्था सुनिश्चित करना (हर खेत को पानी) और कृषि जल उपयोगिता में सुधार करना।गंगा और उसकी सहायक नदियों की अविरल और निर्मल धारा सुनिश्चित करना।[12]

अपने दूसरे कार्यकाल में मोदी सरकार ने भारत में जल संकट को गंभीरता से लेते हुए जल शक्ति मंत्रालय का गठन कर दिया है, जो सभी जल संबंधी मुद्दों को व्यापक रूप से निगरानी करेगा, मौजूदा जल संसाधन मंत्रालय के पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय के साथ विलय करके और नदी संरक्षण निदेशालय को नए मंत्रालय में स्थानान्तरित करके मजबूत किया गया है। देश में बढ़ते जल संकट को ध्यान में रखते हुए केन्द्र सरकार ने जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन, पारम्परिक जल निकायों और टैंकों का नवीनीकरण, बोरवेल रिचार्ज संरचनाओं का पुनः उपयोग, वाटरशेड विकास और गहन वनीकरण पर जोर देते हुए जल शक्ति अभियान शुरू किया है। यह अभियान 255 जिलों में फैले 1599 ब्लाकों में लागू किया जायेगा, जिसमें से अधिकांश तमिलनाडु, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, तेलंगाना, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में स्थित हैं। पी.एम. मोदी ने सभी ग्राम प्रधानों को व्यक्तिगत पत्र लिखकर देश के जल संकट को दूर करने के लिए सामूहिक प्रयास करने को कहा है। अपने मन की बात कार्यक्रम के जरिये भारत के नागरिकों से आग्रह किया कि पानी की कमी के बारे में जागरुकता पैदा करे, ज्ञान साझाा करे, जल भंडारण के पारम्परिक तरीकों

और जल संरक्षण पर काम करने वाले व्यक्तियों और गैर सरकारी संगठनों के बारे में जानकारी साझा करे। समयबद्ध तरीके से सफल क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक जिले के लिए केन्द्र सरकार के 255 वरिष्ठ अधिकारियों को केन्द्रीय प्रभारी नियुक्त किया जायेगा। यह सही दिशा में सराहनीय कदम है।[13]

हालांकि विगत कुछ वर्षों में भूमिगत जल को रीचार्ज करने और 'अपशिष्ट' जल के पुनर्प्रयोग पर ध्यान दिया जा रहा है, पर यह समस्या के समाधान की दृष्टि से 'ऊँट के मुँह में जीरा' के समान है। यदि हम जल संकट से निजात चाहते हैं तो हम सभी को जितना और जैसा धरती से लिया उतना और वैसा जल धरती को लौटाने के सिद्धान्त को सख्ती से लागू करना ही होगा। साथ ही यह भी समझना होगा कि नहर, बांध और हर घर को नल से जल के बूते यह संभव नहीं। हमें परम्परागत जल प्रबंधन तकनीकों और जलोपयोग का स्वानुशासन लाने से ही यह संभव होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. डॉ. अनिल जोशी, दैनिक जागरण, 7 जुलाई, 2019
2. प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी, जल प्रदूषण, समस्या और समाधान, ओमेगा पब्लिकेशनस नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-173
3. drishtiias.com/hindi/daily updates daily news-editorials/water crisis and water management
4. https/hindi indiawaterportal.org/content/jalasanrakasana kae upaya/ content-type page/56989
5. दैनिक जागरण, रविवार, 7 जुलाई, 2019
6. डॉ. भरत झुनझुनवाला, दैनिक जागरण, मंगलवार, 2 जुलाई, 2019
7. दैनिक जागरण, रविवार, 7 जुलाई, 2019
8. हरेन्द्र प्रताप, दैनिक जागरण, बुधवार, 3 जुलाई, 2019
9. 'योजना' अक्टूबर 2017, आई.एस.एस.यन. 0971.8397ए पृष्ठ संख्या-14
10. भरत शर्मा, दैनिक जागरण, 7 जुलाई, 2019
11. प्रो. मधुसूदन त्रिपाठी, जल प्रदूशण, समस्या और समाधान, ओमेगा पब्लिकेशनस नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-174
12. https/hindi indiawaterportal.org/content/jalasanrakasana kae upaya/ content-type page/56989
13. भरत शर्मा, दैनिक जागरण, 7 जुलाई, 2019

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

इक्कीसवीं सदी के भविष्य वक्ता के रूप में जोशी का व्यक्तित्व

• **प्रभात सिंह**

सारांश - एक जीवन्त साहित्यकार लोक की दशा, व्यवस्था परिवेश और दिशा का दिग्दर्शन कराता है। मनोहर श्याम जोशी इसी कोटि के साहित्यकार थे। इक्कीसवीं सदी के भविष्य वक्ता के रूप में जोशी जी का लेखकीय व्यक्तित्व कितना यथार्थ लगता है - नयी सदी के पहले कुछ दशकों में और भी ज्यादा जोर पकड़ेगी। इन्सान अपना जीवन और ज्यादा 'फास्ट मोशन' में जीने लगेगा। समय बचाने की सतत कोशिश में लगा रहेगा और फिर भी उसके पास अपने लिए, अपनों के लिए और अपने पास-पड़ोसियों के लिए कभी समय नहीं बच पायेगा।

मुख्य शब्द - **व्यवस्था, परिवेश, दिशा, भविष्य वक्ता, व्यक्तित्व**

प्रस्तावना - जोशी जी का मत है कि, कोई भी अपना-पराया नहीं है और हर कोई धन्धा व्यापार करने के लिए एक इकाई-भर है, कोई भी देश अपना देश नहीं है लेकिन हर देश धन्धा-व्यापार करने की सम्भावनाओं से भरा है। कोई भी दोस्त या दुश्मन नहीं और हर कोई एक आसामी है, ग्राहक है, सौदागर है। जिस नयी पीढ़ी को अपनी जिन्दगी का बड़ा हिस्सा अगली सदी में बसर करना है, उसके लिए मेरी एक सलाह है कि आशावादी बनें और परिस्थितियों को गलत साबित कर दिखाएँ।[1]

जिस लोकतंत्र में बढ़ती आबादी, बढ़ते वोट बैंक और बढ़ते राजनीतिक प्रभाव का पर्याय बन सकती है, उसी में न अमीरों को अधिक बच्चे पैदा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है और न गरीबों को अधिक बच्चे पैदा करने से रोका जा सकता है। इसलिए अमीर देश चाहते हैं कि अप्रवासन रोकें, कम्प्यूटरों की सहायता से श्रमिकों को गैर-जरूरी बनायें और इस बात के लिए तैयार रहें कि तीसरी दुनिया की बढ़ती आबादी शीघ्र ही भयंकर अराजकता और पुरानी पहचानों पर आधारित छोटे-छोटे युद्धों को जन्म देने वाली है। सामाजिक पण्डित कह रहे हैं कि महानगरों में गरीब और बेरोजगार युवा शक्ति अमीरों को लूटने के धन्धे में पूरी तरह लग जायेगी और गरीबों की झोपड़-पट्टियाँ अमीरों की आलीशान इमारतों के आगे लग जायेंगी। अफ्रीका का उदाहरण देते हुए कहा जा रहा है कि समूची तीसरी दुनिया में अमीरों-गरीबों की लड़ाई धर्मयुद्ध, जातियुद्ध या कबायली लड़ाई का रूप ले लेगी।[2]

आज दुनिया में गरीबी बढ़ रही है और गरीबों की तादात भी। उधर अमीरों की तादात घट रही है और अमीरी बढ़ रही है। गरीब बेचारे को तो सिर्फ रोटी-रोजी, कपड़ा-मकान की चिन्ता है लेकिन अमीर बेचारों को तरह-तरह की चिन्ताएँ हैं। गरीबों की बढ़ती संख्या के कारण वातावरण प्रदूषित होने की चिन्ता। गरीबों में बढ़ते उपभोग के कारण सीमित प्राकृतिक साधन समाप्त होने की चिन्ता। गरीबों के कारण फैलने वाली गन्दगी और बदइन्तजामी की चिन्ता और हाँ, गरीबों में बढ़ती अनुशासनहीनता और आक्रामकता की चिन्ता। अमीरों की इन तमाम चिन्ताओं के बीच एक परेशान करने वाला सवाल मेरे मन में उठता है। वह यह कि मानवीय अधिकारों को समर्पित एक पूरी सदी बीत जाने के बाद भी सम्पन्न देश और व्यक्ति

● **शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)**

इस योग्य क्यों न हो सके कि अपनी थाली में से जरा-सा दूसरे को भी दे दें? सम्पन्न देशों में खाद्य सामग्री का इतना ज्यादा उत्पादन होता है कि वे चाहें तो दुनिया में हर इन्सान को भरपेट पौष्टिक आहार मिल सकता है। इसके बावजूद संसार में रोजाना 33 हजार बच्चे कुपोषण के कारण मरते हैं जैसा कि फीदेल कास्त्रो ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में पूछा, "अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की आधी सदी बीत जाने के बाद भी हम यह शिशु संहार क्यों होने दे रहे हैं?" अमरीका में लोग-बाग खाने-पीने की चीजें खरीद-खरीद कर बाद में जिस बड़े पैमाने पर कूड़ेदानों में फेंकते हैं, उसे देखकर मैं सोचने लगता हूँ कि इस सामग्री को गरीब देशों को भेज देते तो क्या उनमें में से कुछ की खाद्य समस्या हल न हो जाती।[3]

इक्कीसवीं सदी की देहरी पर खड़ी अमीर दुनिया के सीने में दिल तो जरूर है, तभी वह भूखे-नंगों के टिड्डी दल के टूट पड़ने के भय से काँप उठती है, लेकिन उस दिल में सच्ची करुणा नहीं है। शायद वह उस दिन जागे जिस दिन उसका भय साकार हो जाये या शायद तब भी नहीं।[4]

उच्चवर्गीय पढ़े-लिखे पति तक दारू पीकर अपनी आधुनिक पत्नी को पीटने लगे हैं। यह आक्रामकता समाज के लिए विघटनकारी है। इसलिए जरूरी है कि हम लोग बेटी और बेटे को और बेटी और बहू को एक समान मानना सीखें।[5]

मीडिया ही संस्कृति का प्रचार-प्रसार करता है और आज की तारीख में संस्कृति भी मण्डी में बिकने वाली चीज बन चली है। इसलिए मीडिया और मण्डी दोनों पर अंग्रेजी के हावी होने का यही परिणाम है कि अब संस्कृति पर भी अंग्रेजी हावी है। सभी कृतिकार अंग्रेजी-भाषी मण्डी में जगह बनाने की कोशिश करने लगे हैं। इतर भाषाओं के कई लेखक अपनी रचनाओं के साथ अंग्रेजी में अनुवाद कराने लगे हैं। मीडिया-मुग्ध युवा पीढ़ी संस्कृति के क्षेत्र में आज हर कहीं वस्तुत: अंग्रेजी के ही गीत गा रही है और अपनी भाषा के भी गा रही है तो उनमें अंग्रेजी के शब्द जरूर घुसेड़ रही है।[6]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जोशी जी हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में विलक्षण व्यक्तित्व और विशिष्ट रचनाओं द्वारा प्रसिद्ध हैं। साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा यथार्थ रचना को वे गौरवपूर्ण कार्य स्वीकार करते रहे है और उनकी प्रत्येक रचना दीर्घ साधना का परिणाम है। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा अपने बुद्धिजीवी व्यक्तित्व का और मौलिक स्पष्टवादिता का परिचय दिया है। केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में नहीं बल्कि रचनाओं में भी दूसरों का हस्तक्षेप उन्हें सहन नहीं था। मनोहर श्याम जोशी के स्वभाव और रचना धर्मिता के प्रभाव की इस विशिष्टता ने जीवन और साहित्य में अपना अलग रास्ता तय करने में उन्हें सक्षम बनायी है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. 21वीं सदी-बेघर आवारा : गर्दिश का नहीं, खुशहाली का मारा, पृष्ठ 33, मनोहर श्याम जोशी
2. 21वीं सदी-अमीरी के द्वीप गरीबी का महासागर, पृष्ठ 63, मनोहर श्याम जोशी
3. 21वीं सदी-अमीर दुनिया में करुणा गायब !, पृष्ठ 64, मनोहर श्याम जोशी
4. वही, पृष्ठ 67
5. 21वीं सदी-बेटी अब सचमुच बन रही है बेटा, पृष्ठ 91, मनोहर श्याम जोशी
6. 21वीं सदी-हिन्दी की ऐसे तो हिन्दी हो ही जायेगी, पृष्ठ 307, मनोहर श्याम जोशी

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

सामाजिक कुरीतियाँ

• वेणु साहू

सारांश - सामाजिक कुरीतियाँ प्रत्येक देश के लिए एक अभिशाप है जिसके कारण अनेक अपराध हो रही है। भारत देश में अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ देखने को मिल रहा है जिनमें युवा वर्ग अधिक हैं, सामाजिक कुरीतियों में नशे का व्यापार, देह व्यापार, अनावश्यक दलाली, ग्रह-नक्षत्रों का व्यापार, शिक्षा का व्यावसायीकरण, सट्टे का व्यापार, प्रांत, भाषा, जाति और साम्प्रदाय की राजनीति, दहेज प्रथा, लड़का-लड़कियों में भेदभाव, घरेलू हिंसाा, वैश्यावृत्ति,बाल मजदूरी, कन्या भ्रूण हत्या तथा आधुनिक परिवेश को देखे तो सबसे ज्यादा साइबर नेटवर्किंग क्राईम से व्यक्तियों की धोखाधड़ी का केस है। जिससे देश में अनेक समस्याएँ जन्म ले रही है और इन्ही समस्याओं के कारण देश पिछड़ते जा रहे है। देश में निवास करने वाले सभी व्यक्तियों को यह सोच लाना होगा कि इन सामाजिक कुरीतियों के कारण देश का विकास रूक गया है।

मुख्य शब्द - कन्या भ्रूण, घरेलू हिंसा, बाल-विवाह, नशा, देह व्यापार, युवा वर्ग, वैश्यावृत्ति, भ्रष्टाचार, जातिवाद, दलाली

प्रस्तावना - सामाजिक कुरीतियों के बारे में हम बात करे तो एक नवीन विषय समाजशास्त्र में सामाजिक समस्या की पृष्ठिभूमि, परिवर्तन की अवधारणा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। समाजशास्त्र का विकास समस्यामूलक परिवेष एवं परिस्थितियों का अध्ययन करने एवं निराकरण के लिए हुआ है, परन्तु आधुनिक समय में विद्यमान संचार की क्रान्ति तथा शिक्षा के प्रति लोगों की जागरूकता के फलस्वरूप इन समस्याओं के प्रति संवेदनशील एवं सजग हो गया है। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए लोगों का ध्यान आकर्षित करने में जनसंचार की माध्यम से टेलीविजन, अखबार एवं रेडियो ने अति महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है मुख्यत: टेलीविजन पर प्रसारित विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से चाहे वह स्थानीय, प्रादेशिक व अन्तर्राज्यीय कार्यक्रम हो लागों का ध्यान आकर्षित किया है।

वर्तमान समय में भारतीय समाज अनेक सामाजिक समस्याओं से पीड़ित है, जिनके निराकरण के लिए राज्य एवं समाज द्वारा मिलकर प्रयास किये जा रहे है। भारतीय समाज में प्रमुख समस्याएँ जनसंख्या में वृद्धि, निर्धनता, बेरोजगारी, क्षेत्रीय असमानता, अशिक्षा, आतंकवाद, घुसपैठ, बाल श्रमिक, छात्र असंतोष, भ्रष्टाचार, नशाखोरी, जानलेवा बीमारियाँ, दहेज प्रथा, बाल विवाह, भ्रुण हत्या, विवाह विच्छेद की समस्या, मद्यपान, अस्पृश्यता की समस्या ये सभी सामाजिक बुराईयाँ है। इन सभी बुराईयों को दूर करने के लिए भारत सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम है जिसमें जागरूकता रैली, स्लोगन, पोस्टर, पैनल के माध्यम से लोगों को जागरूक कर रहे है।

भारत में मुख्य सामाजिक कुरीतियाँ

लड़का-लड़की में भेदभाव- प्राचीन काल से भारत देश पुरूष प्रधान रहा है, जिसके चलते देश में अनेक सामाजिक कुरीतियाँ होती रहती है। यहाँ महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय है कारण पुरुषों का बोलबाला अधिक है, हम यह कह तो देते है कि बेटा-बेटी एक समान है,

• शोधार्थी शास. वि.या.ता.स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय दुर्ग (छ.ग.)

परन्तु वास्तविकता यह है कि आज भी लड़का और लड़कियों में भेदभाव करते है। लोगों को अपना कुल चलाने के लिए एक बेटा चाहिए जिसके कारण बेटी के जन्म होते ही उसकी हत्या कर दी जाती हैं। लोग यह क्यों भूल जाते है, कि जिस पुत्र की चाह करते है, उसे जन्म देने वाली माता एक लड़की ही होती है।

लड़कियों को शिक्षा नही- 21 वीं सदी में आने के बाद भी भारत में लड़का और लड़कियों में भेदभाव किया जाता है। इसी समाज में लड़को को अच्छे स्कूलों में दाखिल कराते है जिससे वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर सके वही लड़कियों के लिए सोच निम्न हो जाती है लड़कियों को सरकारी स्कूलों में दाखिल कराया जाता है एवं कई बार लड़कियों को पढ़ने के लिए स्कूल ही नही जाने देते, लोगों का यह मानना है, कि लड़कियाँ पढ़ लिख का क्या करेगी? शादी के बाद उन्हें अपने ससुराल ही सम्भालना है।(जैसे- चूल्हा, चौका,खाना बनाना) लोग ये क्यों भूल जाते है बिना शिक्षा के लड़की की भविष्य कमजोर हो जाएगी तथा अपने परिवार व अपने बच्चों का देखभाल व अच्छे संस्कार भी नही दे पाएगी। पूरे राज्यों के आकड़े को देखे तो राजस्थान एक मात्र ऐसा राज्य है, जहाँ पर महिलाओं की साक्षरता दर सबसे कम केवल 52.66 प्रतिशत ही है।

दहेज प्रथा- भारत देश में दहेज प्रथा एक बड़ा कारण है। लड़की के पिताजी द्वारा अपनी लड़की की शादी के लिए लड़के वालों को एक बड़ी मोटी रकम चुकानी पड़ती है,जिससे बेटी की शादी आसानी से हो जाये। कई बार लड़की के पिताजी द्वारा मोटी रकम नही जुटाने के कारण बेटी की शादी नही हो पाती इसका परिणाम बाप को मजबूरन आत्महत्या करना पड़ता है। इस सामाजिक कुरीतियों के कारण कई लड़कियों का विवाह नही हो पाता ऐसी स्थिति में उन्हें अधिक उम्र के व्यक्ति या विदुर के साथ विवाह करते है। दहेज न मिलने पर ससुराल में नववधु को कई तरह से प्रताड़ित किया जाता है जिसका शारीरिक एवं मानसिक होता है।

घरेलू हिंसा- भारत में घरेलू हिंसा एक बड़ी सामाजिक कुरीतियाँ है, भारतीय समाज में पुरूष अक्सर अपनी धर्मपत्नी से लड़ाई मार-पीट करते है इतना ही नही लड़के के घर वाले इनमें सास-ससुर, देवर, जेठ भी शामिल रहते है जो नववधु महिला के साथ मार-पीट करते है। इन प्रताड़नाओं के कारण कई बार महिलाएँ आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाती है। अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन में घरेलु हिंसा के खिलाफ सख्त कानून बनाया गया है, लेकिन भारत में अभी तक ऐसा कोई सख्त कानून नही बना है जिसके कारण यहाँ घरेलू हिंसा अधिक होती रहती है।

जातिवाद - जातिवाद भी सामाजिक कुरीतियों में से एक है। जातिवाद समाज के लिए समस्या बनी हुई है। इन कुरीतियों के कारण समाज में कई बार व्यक्तियों के बीच मतभेद पैदा होती है। भारत देश हमेशा से धर्मनिरपेक्ष देश है,यहाँ सभी धर्म एवं जाति के लोग निवास करते है, लेकिन देश में कुछ भ्रष्ट राजनीतिक दलों के कारण कई बार लोग जाति, वर्ग एवं सम्प्रदाय में बाँट दिये जाते है। यदि देश में सभी जातियों के लोग आपस में मिलजुल कर रहे तो देश की एकता एवं अखण्डता को कोई तोड़ नही सकता और देश शीघ्र ही विकास की ओर अग्रसर होगा।

भ्रष्टाचार - वर्तमान में भ्रष्टाचार बहुत अधिक फैल गया है, बड़े अधिकारियों से लेकर छोटे बाबू तक भ्रष्टाचार में लगे हुए है। प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार देखने को मिलता है चाहे वह शिक्षण क्षेत्र, अस्पताल, सरकारी, निजी कम्पनी एवं निजी संस्था हो यह सभी पैसा कमाने का जरिया बना हुआ है।

वेश्यावृत्ति - वेश्यावृत्ति भी सामाजिक कुरीतियों का सबसे बड़ा कारण है। गरीब वर्ग से बहुत सी लड़कियाँ एवं स्त्रियाँ साहूकार या उद्योगपति के कर्ज तले दबी होती है जिससे वैश्यावृत्ति करने के लिए मजबूर हो जाती है। भारत में बड़े-बड़े शहरों में वेश्यावृत्ति एक धंधा एवं व्यापार करने का साधन बना हुआ है।

बाल-मजदूरी – भारत में बाल मजदूरी एक बड़ी समस्या है। 2011 के आकड़ों के अनुसार भारत में 33 मिलियन बाल मजदूरी है, जिनकी उम्र 5 वर्ष से 18 वर्ष तक है। 10 मिलियन ऐसे मजदूर है जिनकी उम्र 5 वर्ष से 14 वर्ष तक तथा 44 मिलियन ऐसे बाल मजदूर है जो 18 वर्ष से कम आयु के है यह भारत की आबादी का 37 प्रतिशत है। बिहार, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, झारखंड, पश्चिम बंगाल ऐसे राज्य है, जहाँ पर बाल मजदूर सबसे अधिक पाए जाते है। बाल मजदूरी को दूर करने के लिए बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देना तथा स्कूल भेजना अनिवार्य करना चाहिए जिससे बच्चों का भविश्य सुनहरा हो।

कन्या-भ्रुण हत्या- कन्या भ्रुण हत्या लड़को को प्राथमिकता देने तथा कन्या जन्म से जुड़े निम्न मूल्य के कारण जानबूझ कर की गई कन्या शिशु की हत्या होती है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा यह बात कही गई है कि भारत में बढ़ती कन्या भ्रुण हत्या को देखते हुए जनसंख्या से जुड़े समाज में बुराईयाँ फैल रही है इसका कारण कम महिलाओं की वजह से सेक्स से जुड़ी हिंसा,बलात्कार एवं बाल हत्या के साथ ही पत्नि की दूसरे पुरूश के साथ हिस्सेदारी में बट रही है इसी वजह से सामाजिक मूल्यों का भी पतन हो रहा है।

(1) यूनीसेफ(UNICEF) की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लिंग भेद भारत की जनसंख्या से 5 करोड़ लड़कियाँ एवं महिलाएँ गायब है।

(2) विश्व के अधिकांश देशों में प्रति 100 लड़को के पीछे लगभग 105 लड़कियाँजन्म लेती है।

(3) भारत की जनसंख्या में प्रति 100 पुरुषों के पीछे केवल 93 से कम स्त्रियाँ है।

कन्या भ्रुण हत्या रोकने के उपाय -

(1) जो व्यक्ति लिंग परीक्षण करवाकर गर्भपात कराते है, उसे कानून द्वारा कड़ी से कड़ी (कठोर) सजा देनी चाहिए।

(2) लोगों में यह जागरूकता लाना चाहिए कि लड़का और लड़की एक समान है। वर्तमान परिवेश में आज लड़कियाँ लड़को से कम नही है प्रत्येक क्षेत्र में लड़कियाँ आगे बढ़ रही है जो कार्य पहले केवल लड़के करते थे अब वही कार्य को लड़कियाँ करने लगी है।

(3) लिंग परीक्षण पर रोक लगाना, विशेष समस्या में ही परीक्षण करवाना चाहिए।

(4) महिलाओं और लड़कियों के लिए सरकार द्वारा अभियान चलाना चाहिए एवं इनके लिए विशेष योजनाओं का लाभ देना चाहिए।

आधुनिक भारत अनेक समस्याओं से घिरी हुई है इनमें से नशे का व्यापार, बढ़ती जनसंख्या, महंगाई, गरीबी के कारण भुखमरी,आतंकवाद,नक्सलवाद, निरक्षरताऔर बरोजगारी भी एक बड़ीसमस्या का कारण है जो समाज में जहर की तरह फैल रहा है।

नशे का व्यापार- शराब, स्मैक, अफीम,तंबाकू, सिगरेट, भांग, चरस और गांजे का व्यापार भारत में कई वर्षों से चल रही है, जिसमें युवा वर्ग इस नशे में डूबते चले जा रहे है।

सिगरेट का व्यापार - 20 से 30 वर्ष पहले भारत के केवल रईसों के पास उसकी जेब में ही हुआ करता था लेकिन अब बच्चे-बच्चे की जेब में देखने को मिलता है। यहाँ तक की महिलाएँ भी शराब और सिगरेट का सेवन कर रही है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की नई रिपोर्ट के अनुसार पूरी दुनिया में करीब 1 अरब स्मोकर्स है।

अंग्रेजी एवं देशी शराब - देश में शराब पीने से मरने वालों की संख्या अखबारों में पढ़ने को मिलता है। सरकार द्वारा शहरों में अंग्रेजी एवं देशी शराब के दुकानों को बढ़ावा दे दिया है, जिसके कारण अब हर आधा किलोमीटर की दूरी पर शराब की दुकानें खुल गई। यदि हम एक जिले की बात करे तो सालाना देशी शराब लगभग 15 लाख लीटर तक बिक जाती है।

देह व्यापार - पूंजी के बाद स्त्री को समाज में एक वस्तु की तरह इस्तेमाल किया जाता है। जिस समाज में जितनी ज्यादा महिलाएँ उतनी ही वेश्यालयों की संख्या अधिक होता है एवं वह समाज भी कमजोर होता है, क्योकि जिस समाज में महिलाओं की सम्मान नही उस समाज का कोई अस्तित्व ही नही होता। आधुनिक युग में देह व्यापार का धंधा अब वेबसाइटों तक पहुँच गया है, कॉलेज की लड़कियाँ विदेशी मॉडल्स बनने के लिए टीवी सीरियल, फिल्मों में नायिकाओं का रोल निभाने के लिए मध्यवर्गीय परिवार की लड़कियाँ अधिक संख्याओं में देह व्यापार का कारण बनी हुई है।

महिलाओं की तस्करी - नेपाल और बांग्लादेश की महिलाएँ अक्सर तस्करों के हाथ लग जाती है। लेकिन अबभारत के कई गरीब वर्ग की महिलाएँ एवं मासूम लड़कियाँ इस धंधे में तेजी से बड़ी संख्या में धकेला जाता है। जिसमें से ज्यादातर कम उम्र की लड़कियाँ एवं किशोर वर्ग की युवतियाँ होती है।

सामाजिक संस्था की रिपोर्ट के अनुसार भारत में 1 करोड़ 60 लाख महिलाएं देह व्यापार का शिकार है। नेशनल क्राइम ब्यूरों के आकड़ो के अनुसार 2008 में मानव तस्करी के तमाम प्रावधानों में मात्र 3030 केस ही दर्ज किये गए थे इसी प्रकार 2013 मे बढ़कर 3940 हो गया।

अनावश्यक दलाली - वर्तमान में प्रत्येक जगह दलालों का बोलबाला है, इन दलालों के चलते देश की अर्थव्यवस्थाएँ ठप है तथा लोगों में असंतोष फैला हुआ है। इन दलालों के कारण खाद्य वस्तुओं एवं प्रापटी का रेट आसमान पर है। शेयर बाजार, सरकारी विभागों, स्कूल, कॉलेजों में एडमिशन, अस्पतालों में मरीजों की भर्ती को बढ़ाने के लिए भी दलाली की जाती है और इनका साथ डॉक्टर, निजी सेंटर, दवा के दुकानदार, सुरक्षा गार्ड और अन्य कर्मचारी शामिल होते है। फैक्ट्री में यदि किसी ट्रक से माल को जल्दी खाली करवाना है, तो भी यहाँ दलालों की अहम भूमिका रहता है।

ग्रह-नक्षत्रों का व्यापार- भारत में ज्योतिष विद्या का कोई विरोध नही करता जिसका उल्लेख वेदों में मिलता है तथा जो एक खगोल विज्ञान भी है। ज्योतिष एवं खगोल विज्ञान के दम पर ही हम मौसम की जानकारी लेते है। लेकिन वर्तमान में इसका प्रचलित रूप लोगों में भ्रम और वहम फैला रही है।

शिक्षा का व्यवसायीकरण- जिस राष्ट्र में राष्ट्रीय शिक्षा का अभाव हो वह राष्ट्र कभी भी खुशहाल, सम्पन्न, एवं सुरक्षित नही रह सकता क्योकि ऐसे राष्ट्र में इन सबका स्थान स्वार्थ ले लेता है। ऐसे में देश का हर संस्थान, संगठन और विभाग भ्रष्ट होकर अपने अपने स्वार्थ में लगा रहता है और इसका लाभ विदेशी लोग लेते है। जैसे- अपने विचार, भाषा, संस्कृति और प्रॉडक्ट को लादकर उस राष्ट्र को मानसिक तौर पर गुलाम बनाते है।

सट्टे का व्यापार - देश में सट्टा कई तरह से चलता है वैध और अवैध। मुबंई में मटका

का सट्टा चलता है जिसे रतन और कल्याण का सट्टा कहते है, वह भी सट्टे का सबसे बड़ा बाजार है।

प्रांत, भाषा, जाति और सांप्रदाय की राजनीति -राजनीति पहले देश सेवा होती थी, फिर एक दौर ऐसा आया जबकि यह पेशा बन गई और अपराध में बदल गई। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी प्रांत, भाषा और संप्रदाय की राजनीति करती है।

प्राकृतिक संसाधनों का दोहन - बिजली उत्पादन के लिए नदियों की अविरल धारा को रोक दिया गया जिसके चलते हजारों दुर्लभ जल जंतु अपना अस्तित्व खे बैठे है। करोड़ों हेक्टेयर भूमि के जंगल नष्ट हो गए है। पानी का व्यापार तेजी से बढ़ता जा रहा है और निश्चित ही एक दिन ऐसा होगा दूध से ज्यादा महंगी पानी होगी।

नकली खाद्य पदार्थ - मानव जीवन की तीन मूलभूत आवश्यकताएँ होती है- अन्न, जल, वायु, वत्र और आवास। अन्य खाद्य पदार्थ जहाँ महंगे होते जा रहे है, वही उनके वही उनके और असली होने की कोई गारंटी नही। शहरों में अशुध्द वायु के कारण कम उम्र में ही लोगो को अस्थमा और दमा जैसी रोग हो रही है। वस्त्रों की बात करे तो अब आम गरीब वर्ग की जनताओं के लिए मुश्किल है तथा घर खरीदना भारी कर्ज लेने के बाद घर खरीद सकते है। अधिकांश आबादी किराये के मकान में ही गुजर बसर कर रही है, उससे कहीं ज्यादा लोग झोपड़ी मे निवास कर रहे है।

संपूर्ण देश में मिलावटखोरों की कालाबाजारी धड़ल्ले से जारी है, जिसके चलते देश की सेहत खराब हो रही है। बाजार में नकली मिठाई, दूध, और घी बिक रहे है साथ ही अन्य खाद्यन्न सामाग्री में भी मिलावट हो रही है।

सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के उपाय- सामाजिक कुरीतियाँ समाज के लिए एक अभिशाप है, इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए कठोर कानून बनाना,लोगों को शिक्षित करना एवं सरकार द्वारा लोगों के लिए जागरूकता अभियान चलाना।

ग्रामीण अंचल में लोगों का मन बदलना- ग्रामीण अंचल में अधिकांश बाल विवाह करते है, जिससे बच्चों का भविष्य बिगड़ जाता है। इनमें ऐसे बच्चे होते है जिसकी शारीरिक एवं मानसिक विकास नही हुए रहते है। गाँवों में माता- पिता इन बच्चों का बाल विवाह करवा देते है परिणाम यह होता है बच्चे न अपने बारे में सोचते है और न ही अपने भावी भविश्य के बारे में सोच पाते है। बाल विवाह होने के कारण लड़कियाँ कम उम्र में माँ बन जाती है जिससे उसके बच्चे का विकास ठीक से नही हो पाताऔर कई बार जच्चा एवं बच्चा दोनों की मृत्यु हो जाती है।

सरकार द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर पूरी तरह रोक लगाना - सरकार द्वारा इस सामाजिक कुरीतियों को रोकने के लिए कठोर कानून बनाना तथा उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को कड़ी सजा दें। इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार द्वारा समय-समय पर इससे संबंधित सेमिनार करवाना चाहिए जिससे लोग जागरूक हो सके।

महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना - सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना जिससे महिलाएँ अपने कानूनी अधिकार समझ सके। महिलाओं को प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक हो महिलाएँ सक्षम एवं सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में सहयोग प्रदान करेगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. डब्लू. एच. ओ. की रिपोर्ट
2. यूनीसेफ की रिपोर्ट

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

पंचायतीराज संस्था तथा ग्रामीण विकास : कुछ प्रश्न तथा स्पष्टीकरण

• कल्याणी

सारांश - प्रस्तुत शोध पत्र पंचायत राज संस्था के माध्यम से होने वाले ग्रामीण विकास से संबंधित हैं। यह शोध पत्र इस क्षेत्र में किए गए प्रमुख शोध कार्यों की समीक्षा पर आधारित हैं। इस शोध पत्र में पंचायती राज संस्था तथा ग्रामीण विकास से संबंधित कुछ प्रमुख बिंदुओं को स्पष्ट किया गया हैं तथा प्रमुख शोध कार्यों की एक आलोचनात्मक व्याख्या को भी विस्तार से प्रस्तुत किया गया हैं। पंचायत राज प्रत्यक्ष लोकतंत्र का आधुनिक रूपांतरण है, जिसमें शासन के निचले स्तर की संस्थाओं के माध्यम से प्रजातंत्र को प्रत्यक्षतः साकार होते देखा जा सकता हैं। पुरातन काल से चली आ रही संस्थाओं में यद्यपि समय-समय पर परिवर्तन हुआ हैं और हमने अभी भी इन्हें हमारे विकास का आधार मान रखा हैं। प्रजातंत्र की इन महत्वपूर्ण संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण विकास की धारा को गति प्रत्यक्षतः मिलती हैं। इन संस्थाओं की उपदेयता एवं महत्व को दृष्टिगत रखते हुए ही संविधान के 73वें संशोधन के माध्यम से इनमें विभिन्न परिवर्तन लाए गए। उपरोक्त के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष सामने आए हैं जो इस प्रकार से हैं. (1) पंचायत की बैठकों में ग्राम के कुछ प्रमुख लोग ही भागीदारी करते हैं। (2) ग्राम सभा की बैठक नियमित रूप से नहीं हो पा रही हैं। (3) यद्यपि प्रारंभ में सामने आने वाली महिलाएं राजनीति में नवांगतुक थी लेकिन अधिक शिक्षित नहीं थी। (4) महिलाओं की उपस्थिति के कारण पंचायतों की कार्य संस्कृति में परिवर्तन आया है। (5) यद्यपि कुछ महिलाओं ने राजनीति में अनिच्छा से प्रवेश किया था लेकिन अब उनके दृष्टिकोण में उत्साह तथा परिपक्वता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उपरोक्त निष्कर्षो को शोध पत्र में विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया हैं।

मुख्य शब्द - पंचायत राज संस्था, ग्रामीण विकास, प्रत्यक्ष लोकतंत्र, 73वॉसंविधान संशोधन, पंचायत, ग्राम सभा, महिलासशक्तिकरण

प्रस्तावना - पंचायतीराज संस्था ग्रामीण विकास देश की सामाजिक आर्थिक स्थितियों निर्धारण में ग्रामीण विकास की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि आज भी देश की जनसंख्या का एक बड़ा प्रतिशत गांवों में गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है। आज देश की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या गांवो में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले इन लोगों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है।

ग्रामीण विकास एक बहुआयामी गतिविधि है जिसमें कृषि के अतिरिक्त ग्रामीण उद्योग धंधे, सामाजिक तथा आर्थिक सुविधाएं प्रदान करने हेतु आधारभूत ढांचे जैसे स्कूल, चिकित्सालय एवं स्वास्थ्य केन्द्र, संचार साधन, जल आपूर्ति, बाजार व्यवस्थाएं, पोषक आहार, साक्षरता आदि सम्मिलित होते है। इस प्रकार यदि ग्रामीण विकास की बृहत अवधारणा को देखा जाये तो इसमें ग्रामीण लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार की बात अत्यंत महत्वपूर्ण है। विशेष रूप से उन लोगों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार की बात जो ग्रामीण समाज में गरीब एवं कमजोर वर्गो से है।

ग्रामीण विकास में पंचायतीराज की मुख्य भूमिका है। भारत में किसी भी लोकतांत्रिक संरचना की स्थापना गांवों के ही माध्यम से संभव है क्योंकि ग्रामीण जीवन में

• शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल, मध्य प्रदेश

भारत में सामुदायिक जीवन की सर्वाधिक प्राचीन इकाई के रूप में माना जाता है इसलिये, भारत के विकास की कल्पना को शसक्त करने के लिए गांवों का विकास महत्वपूर्ण है एवं गांवों का विकास पंचायतों के बिना संभव नहीं है। भारत में आज भी आधी से अधिक जनसंख्या गांवों में निवास करती है, इसलिये शासन को भी यह ध्यान रखना होगा कि हमारे ग्रामीण क्षेत्र विकास की दौड़ में पिछड़ न जाए क्योंकि किसी भी देश में विकास की सार्थकता तभी है जब उसका लाभ समाज को सबसे निचले तबके तक पहुचें। इनके विकास के लिए अब यह व्यापक रूप से स्वीकार हो चुका है कि स्थानीय स्तर पर स्वाशासी संस्थाओं का होना राष्ट्रीय विकास के लिये आवश्यक है एवं यह लोगों में जनतंत्र के मूल्यों को पैदा करने एवं उनमें जनतंत्र के प्रति जिम्मेदारी की भावना जगाने के लिये भी आवश्यक है।

पंचायती राज की अवधारणा निश्चित रूप से भारतीय मूल की है। भारत में यह संस्थाएं एक बहुस्तरीय प्रशासनिक संरचना का उत्तम उदाहरण हैं, साथ ही यह लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का भी उदाहरण हैं। ये संस्थाएॅ बड़ी संख्या में ग्रामीणों को विकास एवं लोकतांत्रिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में हिस्सा लेने का पर्याप्त अवसर देती है।

हमारे संविधान का अनुच्छेद 40 राज्यों को, पंचायतों को बनाने एवं उन्हें स्वशासीय ढंग से कार्य करने के लिए शक्तियाँ एवं अधिकारों को प्रदान करने का निर्देश देता है। राष्ट्रीय विकास परिषद में बलवंत राय की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया था। समिति ने अपनी 1957 में प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट में मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की स्थापना का सुझाव दिया था। अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक और समिति का गठन किया गया था जिसमें 1959 से 1964 तक लोकतांत्रिक चुनावों और नियमित समीक्षा के अभाव में इन संस्थानों ने कई कठिनाईयों का सामना किया है। अत: परिषद ने यह सुझाव दिया की पंचायतीराज संस्थाओं को पुन: निर्मित किया जाना चाहिए एवं उन्हें उपयुक्त संवैधानिक स्थान एवं मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।[1]

राजीव गांधी सरकार द्वारा तैयार पंचायत राज संस्थाओं में संबंधित विधेयक को पी. वी. नरसिम्हाराव सरकार ने संशोधित कर दिसम्बर 1992 में 73वें संविधान संशोधन के रूप में संसद से पास करवाया। 24 अप्रैल, 1993 से यह 73वॉ संविधान संशोधन अधिनियम लागू किया गया।[2] संविधान में एक नया अध्याय, 9 इस संशोधन द्वारा जोड़ा गया जिसका शीर्षक "पंचायत" है। इसके द्वारा अनुच्छेद 243 में पंचायतों के बारे में प्रावधान किये गये है। अध्याय 9 द्वारा संविधान में 16 अनुच्छेद और एक अनुसूची अर्थात् ग्यारहवीं अनुसूची जोड़ी गई।[3]

पंचायत राज के लिए संविधान का 73वां संशोधन बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। इस संशोधन से पंचायतीराज (व्यवस्था) में क्रांति की लहर दौड़ गई है। संवैधानिक दर्जा मिलने से उनका अस्तित्व सुरक्षित हो गया है। सबसे बड़ी उपलब्धि इस अधिनियम की यह है कि इससे पंचायतों में एकरूपता आयी है एवं निर्वाचन नियमित हुए है। इस अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि पंचायतों को अधिक समय के लिए स्थगित अथवा निरस्त नहीं किया जा सकेगा क्योंकि 6 महीनें के भीतर चुनाव करना अनिवार्य है।

पचांयती राज व्यवस्था तथा लोकतांत्रिक प्रक्रियाऐं - माथुर और नारायण (1969) ने दो मुद्दो पर मूलरूप से ध्यान केन्द्रित किया (I) पंचायत राज और लोकतंत्र (ii) पंचायत राज के राजनीतिक-प्रशासनिक पहलुओं में वे दृश्य जो पंचायत राज और संसदीय के बीच एक संघर्ष है। इस अध्ययन में उन्होने सरकारी और गैर अधिकारिक संबंधो की समस्या पर प्रकाश डाला जिसमें समस्या के चौंका देने वाले परिणाम बाहर निकल कर आए। अंत में

उन्होंने सुझाव दिया कि प्रशिक्षण तथा शिक्षा कार्यक्रम निर्वाचित प्रतिनिधियों को उनकी सफलता के लिए आवश्यक है।[4]

एन.आर.इनामदार (1970) ने महाराष्ट्र के चार ग्राम पंचायतों का अध्ययन किया। इसमें उन्होनें विभिन्न पहलुओं में सरकार तथा प्रशासन के इस बुनियादी इकाई के काम करने के तरीके को पेश किया। इसमें इन्होनें अपने विभिन्न पहलुओं चुनाव, कार्मिक (निर्वाचित और नियुक्त), कार्य वित्त, ग्राम सभा और सबसे महत्वपूर्ण नेतृत्व, इन चार मामलों का अध्ययन यह जानने के लिये किया, कि क्या महाराष्ट्र सरकार के ग्राम पंचायत कानून का जमीनी स्तर पर कोई असर हुआ है और इस अध्ययन में उन्होंने महाराष्ट्र राज्य का 1958 का ग्राम पंचायत अधिनियम अंर्तनिहित व्यवहार में महसूस किया। वे अपने अध्ययन के बीच के अंतर को "आदर्श" और "असली" बताते है। अपने इस अध्ययन में उन्होंने जाना कि ग्राम पंचायते सामाजिक रूप से जागी है, और आर्थिक रूप से सुरक्षित लोकतंत्र की नींव रखने में एक और महत्वपूर्ण भूमिका हासिल की है। जो एक गहरी समझ के लिए योगदान देता है। इन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि ग्राम पंचायतों का सफल संचालन संसाधन, कल्पनाशील और सक्रिय पंचायत नेतृत्व की उपलब्धता पर निर्भर करता है।[5]

ए.आर. दरसानकार (1979) ने पंचायतों में नेतृत्व संबंधी अध्ययन किया है। महाराष्ट्र में एक जिले की तीनों स्तरों की पंचायत संस्थाओं के नेतृत्व अध्ययन के माध्यम से इन्होनें बताया है कि शहरी क्षेत्रों में शहरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रियाओं के कारण जाति व्यवस्था का प्रभाव कम हुआ है किंतु ग्रामीण क्षेत्रों में इन संस्थाओं में अभी भी इस तथ्य की प्रभावशाली भूमिका रहती है।[6] वी.एस. भार्गव (1979) ने देश में पंचायत राज आंदोलन के संबंध में मुद्दो और समस्याओं पर चर्चा की और विशेष रूप से कर्नाटक में। उन्होंने कहा की यह प्रयास पंचायत राज में सुधार के मुद्दों और महान महत्व की समस्याओं को उजागर करने के लिए एक मुद्दे पर (एक दृश्य के साथ) अशोक मेहता समिति की प्रमुख सिफारिशों पर चर्चा करने के लिए किया गया है। उन्होंने स्थानीय नेतृत्व सम्बन्धी अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है, कि पंचायत संस्थाओं के प्रमुख नेताओं एवं उच्च स्तर के नेतृत्व के बीच नए प्रकार के राजनीतिक संबंध विकसित हुए है तथा सौदेबाजी की नई राजनीति का प्रचलन हुआ है। अंत में भार्गव ने यह सुझाव दिया कि विकास के लिए ग्रामीण विकास निकायों के लिये समय पर चुनाव होने की जरूरत है।[7]

कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (पी.ई.ओ.) (1960) ने अपने अध्ययन में पाया कि ग्राम सभा की कभी कोई बैठक आयोजित नहीं हुई और ना ही बजट अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया गया। शुरूआत में कहा जाता था बैठक फोरम के अभाव (मुख्य व्यक्तियों की अनुपस्थिति) में स्थगित कर दिया जाना चाहिए। इसका मुख्य कारण बैठकों में लोगो की कम उपस्थिति तथा वयस्क महिलाओं की भागीदारी का ना होना था।[8]

इसके अतिरिक्त 26 जनवरी 1963 में सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्रालय ने एक अध्ययन दल का गठन आर.आर. दिवाकर (राज्यसभा, केन्द्रीय मंत्री और गांधीवादी के एक पूर्व सदस्य) की अध्यक्षता में किया। दिवाकर समिति की रिपोर्ट में पाया गया कि "यहां तक कि उन राज्यों में भी जहां ग्राम तथा सभा संस्थाओं का गठन 1997 में कर लिया गया था। वहां पर भी यह नहीं कहा जा सकता था, कि इन संस्थाओं द्वारा कोई भी कार्य किया गया हो। आमतौर पर ग्राम सभा में लोगो की उपस्थिति कम होती थी। " इसके साथ यह

भी पता चला कि ग्रामीणो को ग्राम सभा द्वारा आकर्षित न कर पाने का मुख्य कारण यह था कि ग्राम सभा द्वारा उनकी बुनियादी समस्याओं एवं उनके समाधान ढूँढ़ने का कोई प्रयास नहीं किया गया। वर्तमान में एक भी ग्रामीण नहीं मिलेगा जो गांव से जुड़े विकास में रूचि रखता हो। ऐसे क्षेत्र जहां तक सीमित हद तक भी कोशिश की गई है, इन बैठको में उपस्थिति में सुधार हुआ है और ग्रामीणों ने अधिक से अधिक रूचि दिखाई है। अत: ग्राम सभा को एक खुले मंच की तरह विकसित करना होगा। जहां लोग अपने गांव से जुड़ी सभी समस्याओं पर चर्चा कर सके। "इन चर्चाओं का उद्देश्य पूर्ण करने के लिए पंचायतों को कुछ अर्द्धनियामक चरित्र की गैर विकास गतिविधियों से संबंधित विषयों में से कुछ हस्तांतरण करना आवश्यक है। "समिति ने ग्राम सभा की बैठको के बारे में यह सूचना भी दी है कि इन बैठकों में भी जो थोड़े लोग सम्मिलित होते है, उनमें बुद्धिमान भागीदारी की काफी कमी है। इन बैठकों की कार्यवाही सरपंच या मुखिया द्वारा की जाती है।[9]

हर्वे (1989) ने अपने लेख "चौराहे पर पंचायतराज" में पंचायतराज की अवधारणा पर अध्ययन किया है। इसमें वह इन अवधारणाओं की अपर्याप्तता तथा हमारी राजनीतिक व्यवस्था में पंचायत राज की क्षमता की जाँच करती है। इन्होंने अलग-अलग राज्यों और इन अनुभवों के निष्कर्षो के आधार पर अनुभवों का विश्लेषण किया है। फिर इन्होंने 64 वें संशोधन विधेयक समीक्षकों की जांच की और देश में पंचायत राज को मजबूत बनाने के निहितार्थ के बारे में अनुमान दिया। इन्होने निष्कर्ष निकाला है कि पंचायत राज संस्थान हमारे देश में बहुत अच्छे से स्थापित नहीं हो रही है। उन्हें पुर्नजीवित करने की जरूरत है: मौजूदा संस्थान बदलने, या कम से कम शोषण के खिलाफ गरीबों की स्थिति को मजबूत बनाने के लिए पंचायत राज की सफलता एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। वह कहती है कि 64 वें संशोधन विधेयक द्वारा आंशिक और कमजोर पंचायत राज को बचाने के लिए सबसे अच्छा प्रयास किया गया था। यह केन्द्र द्वारा दुरूपयोग किया जाने की तुलना में विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में मदद की सम्भावना थी।[10]

सिंह (1986) ने पंचायत राज की तीन स्तरीय संरचना और "पंचायतों के पुनरोद्धार" शीर्षक नामक अपने लेख में पंचायतों के कामकाज की चर्चा की है। वह कहते है कि यहां एक संवैधानिक प्रावधान होना चाहिए पंचायत सदस्यों को वापस बुलाने के लिए जिन्होंने अपने आचरण से लोगो का विश्वास हासिल कर लिया है एवं सांविधिक प्रावधान होना चाहिए मतदाताओं के लिए। ये संस्थाएं पर्याप्त संसाधनों के साथ प्रदान की जानी चाहिए। पंचायतों में संसाधनों के उचित वितरण के प्रयोजन के लिए, अपनी सिफारिशें की समीक्षा करने के लिए एक राज्य स्तरीय पंचायत वित्त आयोग का गठन पांच साल में एक बार करने की जरूरत है। अन्त में वे कहते है कि शक्ति और ग्राम पंचायतों की प्रभाव शीलता गांव समुदाय के एक बुद्धिमान, उत्साही और निरंतर ब्याज और भागीदारी पर निर्भर करेगा।[11]

बी.एस. खन्ना (1994) ने 'भारत में पंचायती राज' पर अपने अध्ययन में कहाँ कि यह बहुत निराशाजनक है कि ग्राम सभाओं के पास संवैधानिक रूप से वार्षिक प्रशासनिक रिपोर्ट एवं पंचायती खातो की जाँच एवं करो को प्रस्तावित करने का अधिकार होते हुए भी ऐसी कोई बैठक नहीं की गई जबकि कानूनी तौर पर अगर सरपंच साल में ग्राम सभा की ऐसी दो बैठक करने में यदि विफल होता है तो अपना सरपंच पद खो सकता है।[12]

विद्युत मोहंती (2000) ने अपने क्षेत्रीय अध्ययन में पाया कि 80-90 महिलाएँ पंचायत की मीटिंग में नियमित रूप में उपस्थित रहती है। ग्राम पंचायतों के स्तर पर

अधिकांश महिलाएँ निम्न आर्थिक वर्ग से थी। महिलाओं की उपस्थिति के कारण पंचायतों की कार्य संस्कृति में भी बदलाव पाया गया। उनमें साक्षर और शिक्षित होने की इच्छा में वृद्धि हुई है। मोहंती का अवलोकन यह है कि महिला आरक्षण के कारण राजनीतिक संस्थानों का स्तर गिरा नहीं है, बल्कि विकास की प्रक्रिया तेज हुई है।[13]

पंचायतीराज तथा महिला सशक्तिकरण- नवीन पंचायतीराज व्यवस्था जो कि 73वें संविधान संशोधन के अनुच्छेद 243 का प्रावधान है। इस पंचायती राज व्यवस्था में प्रथम बार महिलाओं को आरक्षण दिया गया है। और यह एक ऐसा महत्वपूर्ण कदम है जिसके माध्यम से ग्रामीण विकास उन्नति की ओर अग्रसर। 73वें संविधान की धारा 243 में प्रावधान है कि पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से चुने जाने वाले कुछ पदों में महिलाओं के लिए एक तिहाई पद तो आरक्षित रहेंगे ही इसके अलावा अनुसूचित जाति, जनजाति और पिछड़े वर्ग को दिये जाने वाले आरक्षण में भी महिलाओं को एक तिहाई पद आरक्षित होंगे। पंचायतों में अध्यक्ष पद पर महिलाओं का एक तिहाई हिस्सा आरक्षित रहेगा। सत्ता में महिलाओं की इस भागीदारी से महिलाओं की जो मौजूदा सामाजिक स्थिति है, उसमें भी क्रांतिकारी परिवर्तन आना शुरू हो गया है।[3]

सुशीला कौशिक (1993) ने महिलाओं की राजनीति में सहभागिता विषय पर एक पुस्तक का सम्पादन किया है। इस पुस्तक में उन्होनें इंडियन एसोसिऐशन ऑफ वोमेन्स स्टडीज द्वारा आयोजित चार राष्ट्रीय सम्मेलनों में पढ़े गए पत्रों में से चयनित पत्रों को सम्मिलित किया है। स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न स्थानीय आंदालनों में महिलाओं की राजनीतिक एवं महिलावादी सहगता की भूमिका को इससे स्पष्ट किया गया है।[14]

सुशीला कौशिक (1993) ने महिला एवं पंचायती राज पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया है। 73वें संविधान संशोधन के बाद एक तिहाई स्थानों में महिलाओं के लिए आरक्षण के संविधिक प्रावधान के पश्चात् उन्होनें यह विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जो विषय की समझ के लिए महत्वपूर्ण आगत है। इस अध्ययन में उन्होनें स्थानीय स्वशासन हेतु महिलाओं की सुरक्षा एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है।[15]

प्रेमलता पुजारी एवं विजय कुमारी कौशिक (1994) ने भारत में महिलाओं की शक्ति विषय पर तीन जिलों में एक अध्ययन संपादित किया है। यह अध्ययन महिलाओं के विकास से संबंधित विविध विषयों पर लिखे गये निबंध, शोध पत्र, उद्धरण संकलन पर आधारित है। प्रथम भाग में लोकतंत्र से विकास के संदर्भ में भारतीय महिलाओं की स्थिति में संबंधित विषय समाहित किये गये है। द्वितीय भाग में महिलाओं के विकास के लिए संस्थागत व्यवस्था के विषय शामिल किये गये है। तृतीय भाग में महिलाओं के विकास के लिए कार्य एवं अधोसंरचना जैसे महत्वपूर्ण विषय है। यह सम्पादित कार्य महिलाओं की वर्तमान स्थिति को स्पष्ट करता है।[16]

प्रभा आप्टे (1996) ने 'भारतीय समाज में नारी' विषय पर पुस्तक लिखी है। यह पुस्तक ऋग्वेद से लेकर वर्तमान समाज तक में नारी की स्थिति की व्याख्या करती है इसमें बदलते सामाजिक परिदृश्य में महिलाओं की समस्याओं एवं शोषण के विरूद्ध महिला संगठनों की भूमिका को भी स्पष्ट किया है।[17]

पाण्डा (1996) ने उड़ीसा के एक गांव में पंचायत के अध्ययन में पाया कि महिलाओं ने राजनीति में प्रवेश आरक्षण के अनिवार्य प्रावधान के तहत् किया। जिसमें

ज्यादातर महिलाएं गैर-राजनीतिक पृष्ठभूमि से थी। जिन्होनें ग्राम समुदाय या परिवार के सदस्यों के दबाव के कारण राजनीति में प्रवेश किया था। उन्होनें अपने अध्ययन में महत्वपूर्ण पहलू यह पाया कि महिलाओं को जो अनिच्छा से राजनीति में प्रवेश मिला उसमें उनके दृष्टिकोण में महान परिपक्वता उत्साह दिखाई दिया इसके साथ ही उनकी राजनीतिक चेतना बढ़ रही है, और उनकी भूमिका और जिम्मेदारी की धारणा भी बदल रही है।[18]

के. सांथी (1998) ने महिलाओं के सशक्तिकरण पर एक पुस्तक का सम्पादन किया है। इस पुस्तक में इन्होंने जो शोध पत्र सम्मिलित किये है उनमें अधिकांश वर्तमान सशक्तिकरण की स्थिति एवं कमियों से संदर्भित है वहीं कुछ शोध पत्र सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन पर केन्द्रीत हैं।[19]

सुधा पिल्ले (2001 : 31-37) ने अपने लेख ''पंचायती राज द्वारा अधिकार सम्पन्नता'' में लिखती है, महिलायें (पंचायतों) त्रि-स्तरीय ढांचें में सदस्य ओर अध्यक्ष पदों पर कार्यरत् हैं। इससे निश्चित ही अभी तक ठहरे हुए ग्रामीण समाज में बदलाव आया है। महिलाओं की अध्यक्षता वाली पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी और नेतृत्व का न केवल जमीनी प्रशासन पर असर पड़ा है बल्कि घरों के बाहर शक्ति और जिम्मेदारियां सम्भाल पाने की समर्थता के बारे में कई भ्रांतियां भी दूर हुई है। गांवों के भीतर धन का बेहतर उपयोग हुई है। कहीं पंचायतों का ध्यान राजनीतिक जोड-तोड़ से हटकर पेयजल की व्यवस्था, स्कूली शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा और साफ-सफाई व ईधन समस्याओं से निपटने की ओर गया है।[20]

भारत डोगरा (2001 :11-16) ने अपने लेख'' सार्थक है महिलाओं का आरक्षण'' में चुनाव में निर्वाचित महिलाओं पर पारिवारिक दबाब से उत्पन्न तनावों के बारे में लिखते है कि राजनीतिक महत्वकांक्षा वाले पुरूष अपने परिवार की महिलाओं को अपनी निजी महत्वकांक्षा की दौड़ का साधन मात्र बनाना चाहते है। वे चाहते है कि आरक्षण का लाभ उठाकर उनके परिवार की महिला चुनाव में निर्वाचित हो और इसके साथ ही वे यह भी चाहते है कि निर्चाचित होने के बाद उनके दबाव में रहकर उनके कहे अनुसार काम करें। यदि वह महिला स्वतंत्र रूप से उचित कार्य करना चाहती है तो इस नियंत्रण से उसे बहुत घुटन होती है और निरंतर उसे यह भय सताता रहता है कि उससे अनुचित कार्य करवाया जा रहा है। गलत कार्य का दंड उसे भुगतना पड़ेगा यह तनाव भी उसे निरंतर परेशान करता रहता है। इस तरह महिलाओं का चुनावों में निर्वाचित होना एक अनचाही मुसीबत बन जाता है।[21]

पंचायतीराज, ग्रामीण विकास तथा कार्य संस्कृति- एसब्रिजसम्मेलन (1958) में सामाजिक विकास पर जोर दिया गया कि समुदाय की सक्रिय भागीदारी और पहल के साथ ग्रामीण विकास को पूरे समुदाय में सभी के लिये बेहतर जीवन यापन करने के लिये डिजाइन किया जाना चाहिए।[22]

चेम्बर्स (1983) ने विशेष रूप से यह उल्लेख किया है कि ग्रामीण विकास के लिए लक्षित समूह के विकास में गरीब महिलाएं, पुरूष एवं बच्चों तथा गरीब से गरीब छोटे पैमाने के किसान किराएदारों एवं भूमिहीन मजदूरों को शामिल करना चाहिए। उन्होनें गंभीर रूप से विश्लेषण किया और कहा कि पहले अमीर और गरीब के बीच के अंतर को कम करने के लिए गरीबों को सबसे पहले रखा जाना चाहिये।[23]

हेरोल्ड इसाक्स (1965) ने अस्पृश्यता उन्मूलन तथा अनुसूचित जाति के सदस्यों पर अध्ययन किया है अपने अध्ययन में उन्होंने पाया के कानून द्वारा अस्पृश्यता उन्मूलन के पश्चात् भी अनुसूचित जाति के सदस्य अनेक प्रकार की सामाजिक और आर्थिक

निर्योग्यताओं से ग्रसित है। उनका यह अध्ययन समूह तादात्मीकरण और राजनीति परिवर्तन के पारस्परिक संबंध को विश्लेषित करने के लिए अनुसूचित जाति के पचास शिक्षित सदस्यों पर आधारित है। अध्ययन से यह मालूम होता है कि शिक्षा और सरकारी नौकरी के कारण अभी भी अनेक समस्यायें बनी हुई है। उनका निष्कर्ष है कि अनूसूचित जाति को दी गई गई सुविधाओं के कारण जाति समीकरण और तादात्मीकरण की वृद्धि हुई है न कि उसमें शिथिलता आयी है। नवीन राजनीतिक संरचना ने व्यक्ति को अपनी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ाने का जो अवसर प्रदान किया है उससे अनुसूचित जाति के सदस्य सामान्यत: वंचित है।[24]

गौलेट (1971) ने पाया के विकास सामाजिक प्रणाली के भीतर से शुरू होता है और व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक व्यक्ति तक पहुंचता है। विकास प्रक्रिया बाहरी तत्वों से प्रभावित नहीं होती यह व्यक्तियों को आत्मनिर्भरता की और अग्रसर करती है। इसलिए यह एक सामाजिक-आर्थिक दिशा में परिवर्तन का आंदोलन है। वॉल (1974) का विचार भी इसी तरह का है कि विकास में लोगों के जीवन में बदलाव होना भी शामिल है।[25]

विश्व बैंक (1975) के अनुसार ग्रामीण विकास एक विशिष्ट समूह (गरीबों) के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को सुधारने की एक रणनीति है। इसमें उन लोगों के बीच विकास के लाभो का विस्तार शामिल है जो ग्रामीण क्षेत्र में आजीविका तलाशते है। इस समूह में छोटे किसान, किरायेदार एवं भूमिहीन आते है। विश्व बैंक एवं अन्य अंतर्राष्ट्रीय एजेंसिया एवं बृद्धि, रोजगार में बृद्धि एवं उत्पादन के सभी कारकों जैसे भूमि, श्रम एवं उत्पादन के सभी कारकों जैसे भूमि, श्रम एवं पूंजी को एकत्रित करने पर जोर देते है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी एवं असमानता को मिटाने के लिए गरीबों के विकास संबंधी गतिविधियों में शामिल होना आवश्यक है। केन्द्र सरकार ने पंचायती राज संस्थानों को सशक्त बनाया है और अन्य स्थानीय-स्व-सरकार को विका एवं विकास संबंधी गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया है। शिखर सम्मेलन (2002) के समापन पर अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों ने विश्व में गरीबी के खिलाफ लड़ाई जारी रखने एवं जोहान्सबर्ग, दक्षिण अफ्रीका के निरंतर विकास का फैसला लिया है।[26]

चक्रवर्ती एवं भट्टाचार्य (1993) ने राजनैतिक समाजशास्त्र पर आधारित सूक्ष्म अध्ययन किया। अपने इस अध्ययन में उन्होंने नेतृत्व, गुटबंदी एवं पंचायती राज को व्याख्यायित किया है। इसके साथ ही अपने अध्ययन में इन्होंने ग्रामीण संरचना के साथ जाति एवं वर्ग का ग्रामीण राजनीति से संबंध स्पष्ट करते हुए ग्रामीण नेतृत्व की विवेचना की है।[27]

बी.एस. खन्ना (1994) ने भारत में पंचायतीराज व्यवस्था का राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में गहराई से अध्ययन किया है। साथ ही इस अध्ययन में भारत के दस प्रमुख राज्यों में पंचायतों की कार्य प्रणाली को प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन में उन्होंने पंचायती राज व्यवस्था की उपलब्धियों, कमियों एवं संभावनाओं को सुस्पष्ट ढंग से रेखांकित किया है।[28]

के.के. गौड़ (1997) ने ग्रामीण नेतृत्व की व्याख्या की है। उन्होनें ग्रामीण औपचारिक एवं अनौपचारिक नेतृत्व की सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन का उनका तुलनात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ऐसा नेतृत्व जो बड़े परिवारों से आता है तथा जिसका शैक्षणिक एवं आर्थिक स्तर उच्च है तथा ग्राम से बाहर भी राजनीतिक नेताओं एवं अधिकारियों के साथ अच्छे संबंध रखता है। ऐसा नेतृत्व ग्रामीणों की समस्याओं को हल करने की क्षमता रखता है एवं ग्राम से नेतृत्व प्रदान कर नेता बनने की योग्यता रखता है।[29]

महीपाल (1997) ने अपने अध्ययन में पंचायती राज व्यवस्था में अतीत से लेकर

आज तक जो बदलाव आये है। उनकी क्रमबद्ध एवं संक्षिप्त विवेचना करते हुए वर्तमान व्यवस्था का विस्तार से वर्णन किया है। इसके साथ ही देश के 15 राज्यों- आंध्रप्रदेश, आसाम, बिहार, गुजरात, हरियाणा, तमिलनाडू, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उडीसा, पंजाब राजस्थान, पश्चिम बंगाल के अधिकारियों की मुख्य विशेषताओं को रेखांकित किया है।[30]

पोस्टर (2002) अपने अध्ययन में बताते है कि अभिगम्यता एवं गतिशीलता, विकास के गठजोड़ मे समाहित है तथा यहीं प्रगति का साधन है। घाना (अफ्रीका) में (फील्ड अध्ययन में पाया के) खराब सड़को की गतिशीलता का क्षेत्रीय अध्ययन वहां के ग्रामीण लोगो की हताशा को एवं सड़क किनारे रहने की लागत को दर्शाता है। ये लोग स्थानीय प्रशासन के द्वारा उपेक्षित एवं एक तरह से अदृश्य भी है किंतु राज्य के विकेन्द्रीकरण का कच्ची सड़कों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है एवं ग्रामीण वितरण सेवाओं में सुधार हुआ है।[31]

निष्कर्ष -

1. प्रशिक्षण तथा शिक्षा कार्यक्रम निर्वाचित प्रतिनिधियों को उनके कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।
2. ग्रामीण पंचायतों का सफलता पूर्वक संचालन इस बात पर निर्भर करता है कि पंचायतों में कल्पनाशील एवं सक्रिय नेतृत्व उपलब्ध है अथवा नहीं।
3. ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी जाति व्यवस्था प्रभावशाली भूमिका में है।
4. निकायों के समय पर चुनाव होने की जरूरत है।
5. पंचायतीराज व्यवस्था भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्रतिबिम्ब है क्योंकि पंचायतों में ग्रामीण लोग ही शासन-प्रशासन के लिए जिम्मेदार है एवं नि:संदेह सक्षम भी है।
6. पंचायतों की बैठकों में ग्राम सभा के कुछ लोग ही भागीदारी करते है।
7. 64वें संविधान संशोधन विधेयक द्वारा पंचायतराज को पुर्नजीवित करने का सबसे अच्छा प्रयास किया गया।
8. ग्राम सभा की बैठकें नियमित रूप से नहीं हो पा रही है।
9. महिलाओं की उपस्थिति के कारण पंचायतों की कार्य संस्कृति में परिवर्तन आया है।
10. स्वतंत्रता के पश्चात् विभिन्न आंदोलनों में महिलाओं की राजनीतिक सजगता की भूमिका को स्पष्ट किया गया है।
11. स्थानीय स्वशासन के लिए महिलाओं की सुरक्षा एवं प्रशिक्षण आवश्यक है।
12. राष्ट्रीय महिला आयोग जैसे संगठनों द्वारा महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार आया है।
13. यद्यपि कुछ महिलाओं ने राजनीति में अनिच्छा से प्रवेश किया था लेकिन अब उनके दृष्टिकोण में उत्साह तथा परिपक्वता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।
14. महिलाओं के पंचायतों में सदस्य और अध्यक्ष पदों पर कार्यरत् होने की वजह से ग्रामीण समाज में परिर्वतन आया है।
15. महिलाओं को मिले आरक्षण की सुविधा का लाभ प्राप्त करने के लिए राजनीतिक

महत्वाकांक्षा रखने वाले पुरूष अपने परिवार की महिलाओं को चुनावों में खड़े करते है, वे चाहते है कि वह निर्वाचित हो और उनके दबाब में रहकर उनके कहे अनुसार कार्य करें।

16. यद्यपि प्रारंभ में सामने आने वाली महिलायें राजनीति में नवांगतुक थी लेकिन अधिक शिक्षित नहीं थी।

17. संविधान के 73वें संशोधन में दिए गए 33 प्रतिशत महिला आरक्षण के कारण ग्राम पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी में बढ़ोत्तरी हुई है। जिसमें ग्राम पंचायतों की कार्यप्रणाली में बदलाव देखने को मिला जो कि महिलाओं के हित में है।

18. ग्रामीणों विकास के लिए अमीर और गरीब के बीच के अंतर को कम करने के लिए गरीबों को सबसे पहले रखा जाना चाहिए।

19. नवीन राजनीतिक संरचना ने व्यक्ति को अपनी प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ाने का जो अवसर प्रदान किया है उसमें अनुसूचित जाति के सदस्य सामान्यतः वंचित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. वीर, गौतम (2009), पंचायती राज व्यवस्था, ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
2. https://wwwaajtakin.cdn.ampproject.org/v/s/www.aajtak.in/amp/education/story/rajiv-gandhi-brought-reforms-in-panchayati-raj-system-in-indiatedu105732720200424?amp_js_v=a6&amp_gsa=1&usqp=mq331AQFKAGwASA%3D#aoh=16040609011022&referrer=https%3A%2F%2Fwww.google.com&amp_tf=From%20%251%24s&ampshare=https%3A%2F%2Fwww.aajtak.in%2Feducation%2Fstory%2Frajiv-gandhi-brought-reforms-in-panchayati-raj-system-in-india-tedu-1057327-2020-04-24
3. https://www.hindinotes.org/2018/05/constitutional-development-and-73rd-constitution-amendment-act-1992.html
4. Mathur, M.V. and Narain, Iqbal (1969), Panchayat Raj Planning and Democracy, Asia Publishing House, London.
5. Inamdar, N.R. (1970), Functioning of village Panchayats, Popular Prakashan, Bombay.
6. Darsankar, A.R. (1979), Leadership in Panchayti Raj, Panchsheel Prakashan, Jaipur.
7. Bhargawa, B.S. (1979), Panchayat Raj Institution: an analysis of Issues, Problems and Recommendation of Ashok Mehta Committee, Ashish Publishing House, New Delhi.
8. Some Successful Panchayat, Case Studies. The Program Evaluation organization (PEO), (1960), Tirga Gram Panchayat of Madhya Pradesh.
9. Ministry of Community Development and Co-operation, Govt. of India (1963), Report of the study team on the position of Gram sabha in Panchayat Raj Movement. New Delhi, Govt. of India.
10. Hirway, India, Panchayat Raj at Cross Roads The Economic and Political Weekly, 1989 vol. 24, no. 29, Pp 63-67
11. Singh, Sitaram, Revitalization of Panchayats, Kurukshetra, April 1986, Vol 34,

No. 6 Pp. 68-75

12. Khanna, B.S. (1994), Panchayat Raj in India (Rural Local Self-Government: National Perspective and state Studies), Deep & Deep, New Delhi.
13. Mohanty, Vidyut (2000), Political Empowerment of women and the Gross Roots, Kanishka Publishers, New Delhi.
14. Kaushik, Susheela (1993), Women's Participation in politics (women in changing society), S.Chand (G/L) & Company Ltd. New Delhi.
15. Kaushik, Susheela (1993), Women & Panchayat Raj, Har Anand Publication, New Delhi.
16. Kaushik, Vijay Kumari and Premlata Pujari (1994), Women Power in India, New Delhi.
17. आप्टे, प्रभा (1996), भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर।
18. Panda, Snehlata, Emerging Pattern of Leadership Rural Women is orissa, Indian Journal of Public Administration, 1996, Vol. 42, No. 324, Pp 33-39
19. Shanthi, K. (1998), Empowerment of Women, Anmol Publications Pvt. Ltd., New Delhi.
20. पिल्लै, सुधा (2001), पंचायत राज द्वारा अधिकार सम्पन्नता, योजना, अंक 45, अगस्त पृष्ठ 31–37।
21. डोगरा, भारत (2001), सार्थक है महिलाओं का आरक्षण, कुरूक्षेत्र, अंक 46, मई 9 पृष्ठ 11–16
22. Asbirdge Conference (1958), A hand Book of Community Development, Majesty's Stationary office, London, Pp 5.
23. Chambers, Robent (1983), Rural Development: Putting the last first, Longman, London, Pp 147.
24. Isaacs, Harold R (1965),India's Ex-Untouchables, The John Day Company, Newyork.
25. Goulet, D.A. (1971), The Cruel Choice: A New Concept in the Theory of Development, Newyork, Chapter-2.
26. Word Bank (1975), The Assault on world Poverty, Problems of Rural Development, Education and Health, Baltimore, Md. Johans Hopkins University Press.
27. Chakraborty, K. and Bhattcharya, S.K. (1993), Leadership Functions and Panchayat Raj, Rewat Publications, Jaipur.
28. Khanna, B.S. (1994), Panchayat Raj in India (Rural Local Self-Government: National Perspective and state Studies), Deep & Deep, New Delhi.
29. गौड़, के.के. (1997), भारत में ग्रामीण नेतृत्व का उदीयमान स्वरूप, मानव पब्लिकेशंस, अतीत, वर्तमान एवं भविष्य, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली।
30 महीपाल, (1997), पंचायतेः अतीत, वर्तमान एवं भविष्य, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली।
31 Poster, G. (2002), Living in a walking world: Rural Mobility and social Equity Issues in Subsaharan Africa, World Development, Oxford, Vol 30 (2), Pp 285-300

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

दल बदल की राजनीति

• सीमा अग्रवाल

सारांश - भारतीय लोकतांत्रिक शासन प्रक्रिया के सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व राजनीतिक दलों के सदस्यों से दलीय निष्ठा एवं जनप्रतिनिधि के दायित्वों में संतुलन के साथ लोकतांत्रिक मूल्यों का निर्वहन भी अपेक्षित है, परंतु दलबदल की राजनीति से इन मूल्यों एवं राजनीतिक नैतिकता का ह्रास हुआ है दलबदल की बढ़ती हुई प्रवृत्ति ने भारतीय राजनीति में अस्थिरता, विचारधारा के ह्रास, सत्ता लोलुपता और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है। प्रस्तुत पत्र इसी दल बदल की राजनीति, उससे संबंधित कानूनों, 52 वे एवं 91वे संविधान संशोधन की व्याख्या करता है साथ ही दल बदल के कानूनों के पक्ष और विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हुए सुझावों पर भी प्रकाश डालता है। पत्र इस विकृति को दूर करने के लिए विशेष रूप से नागरिकों की सतत जागरूकता एवं सकारात्मक भूमिका की आवश्यकता को प्रतिपादित करता है।

मुख्य शब्द- कार्पेट क्रोसिंग,वाका जंपिंग, अनुसूची, सत्ता लोलुपता

प्रस्तावना- दल लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली का अनिवार्य अंग है। संसदीय एवं अध्यक्षात्मक दोनों प्रकार के शासन प्रणाली में दल व्यवस्था का विकास अधिकांश संविधानेतर हुआ है। क्योंकि दल प्रणाली के बिना शासन का क्रियान्वयन संभव नहीं है। भारतीय राजनीति में भी अनेक राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दल है जो चुनावों के माध्यम से सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ।सत्ता प्राप्ति के इस खेल में सर्वाधिक प्रचलित शब्द है वह है दलबदल। दल प्रणाली एवं दलबदल की घटनाओं का घनिष्ठ रहा है।

दलबदल का सामान्य अर्थ एक दल को छोड़कर दूसरे मे जाना है। भारत में यदि कोई विधायक या सांसद किसी दल के टिकट पर निर्वाचित हो एवं किसी अन्य दल में शामिल हो जाए या नया दल बना ले या फिर निर्दलीय स्थिति अपना ले या पार्टी व्हिप की अवहेलना करें तो दल बदल की स्थिति मानी जाती है। लेकिन ब्रिटेन में किसी खास मुद्दे पर सांसदों द्वारा दल परिवर्तन की परंपरा को मान्यता प्राप्त है क्योंकि वहाँ किसी विषय पर विचार धारा की भिन्नता की स्थिति में सदस्य अपने स्थान से उठकर फ्लोर पार करके दूसरे खेमे में आकर बैठ जाते थे। इसी तरह की परंपरा अलग-अलग देशों में प्रचलित है इनके लिए कार्पेट क्रोसिग,टर्न कोटिज्म, वाका जम्पिंग, पॉलिटिक्स ऑफ म्यूजिकल चेयर्स, पॉलिटिक्स ऑफ हॉर्स ट्रेडिंग या पॉलिटिक्स ऑफ डिफेक्शन इत्यादि शब्दों का प्रयोग होता रहा है।भारत में ही नहीं अपितु अनेक लोकतांत्रिक देशों में दलबदल की घटनाएं होती रही है। भारतीय राजनीति में दल बदल की घटनाएं कोई नई बात नहीं है लेकिन 1967 के चतुर्थ आम चुनाव के बाद इन घटनाओं में बहुत ज्यादा वृद्धि हुई है।

भारतीय राजनीति में स्वतंत्रता से पूर्व दलबदल की घटनाएं-

1 1920 में शाम लाल नेहरू का कांग्रेस टिकट से जीतकर बाद में ब्रिटिश पक्ष में शामिल होना

2 1937 में संयुक्त प्रांत के मुस्लिम लीग के सदस्यों द्वारा दल बदल कर कांग्रेस में शामिल होना इत्यादि इस प्रकार के कुछ उदाहरण है।

• नेट, जे.आर.एफ. (यू.जी.सी. एवं आई.सी.एस.एस.आर. फेलो) सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर कैम्पस, जयपुर

स्वतंत्रता के बाद दलबदल की घटनाएं- 1948 में कांग्रेस संगठन छोड़कर कांग्रेस समाजवादी दल का गठन आचार्य नरेंद्र देव सहित सभी विधायकों द्वारा इस्तीफा एवं पुनःचुनाव लड़ना, वैचारिक असहमति के आधार पर दल बदल का आदर्श उदाहरण माना जा सकता है पर ऐसे उदाहरण भारतीय राजनीति में कम दिखाई देते है सामान्य स्वार्थ सिद्धि या सत्ता प्राप्त करने के लिए ही दलबदल किए जाते रहे हैं।

1952 में मद्रास राज्य में राज्यपाल द्वारा टी प्रकाशम के स्थान पर अल्पमत प्राप्त कांग्रेस दल के सी.राजगोपालाचारी को सरकार बनाने का निमंत्रण एवं जोड़-तोड़ की राजनीति द्वारा 16 विपक्षी विधायकों को कांग्रेस में मिलकर सरकार बनाना, 1953 में प्रजा समाजवादी पार्टी के नेता टी. प्रकाशम को आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री पद का प्रलोभन एवं उनके द्वारा दल छोड़कर कांग्रेस में शामिल होना।1957 में उड़ीसा में चार निर्दलीय सदस्यों का कांग्रेस में जाना, 1962 में राजस्थान में जोड़-तोड़ की सरकार बनाना आदि इसी तरह की सत्ता लोलुपता और राजनीतिक नैतिकता के पतन के कुछ उदाहरण है।

1967 के बाद कांग्रेस पार्टी अधिकांश राज्यों में चुनाव हार गई और येन केन प्रकारेण सत्ता में बने रहने के लिए सत्तारूढ़ दल के द्वारा दल बदल के अधिकतम प्रयास किए गए। डॉक्टर सुभाष कश्यप की पुस्तक दलबदल और राज्यों की राजनीति के अनुसार 1967 से 1970 के चुनावों के मध्य भारत के राज्यों और संघ शासित प्रदेशों के लगभग 3500 सदस्यों में से 550 सदस्यों ने अपना दल बदला था एवं करीब 1000 से अधिक दलबदल हुए ,51 मंत्रिमंडल बने और टूटे।

1967 के बाद के कुछ प्रमुख दलबदल - 1967 में हरियाणा के एक विधायक गया लाल ने 1 दिन के अंदर दो दल बदले एवं 15 दिन में तीन दल बदले। वे पहले कांग्रेस छोड़कर विहपा में, फिर विहपा छोड़कर कांग्रेस में एवं फिर कांग्रेस छोड़कर फिर विहपा में चले गए। जिनका परिचय एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में इस तरह कराया गया कि गया राम अब आयाराम है तभी से भारतीय राजनीति में दलबदल करने वाले लोगों के लिए आया राम-गया राम की उक्ति प्रचलित हो गई।

1970 में उत्तर प्रदेश की त्रिभुवन नारायण सिंह की सरकार भी दलबदल एवं जोड़-तोड़ के आधार पर बनाई गयी। इसी प्रकार 1979 में बनी जनता पार्टी की सरकार के मुख्यमंत्री भजनलाल , 1980 में केंद्र में श्रीमती इंदिरा गांधी की कांग्रेस सरकार बनने पर अधिकांश विधायकों के साथ दल बदल कर कांग्रेस में शामिल हो गए एवं जनता पार्टी की सरकार कांग्रेस की सरकार बन गई जबकि मुख्यमंत्री भजनलाल ही रहे। इसी प्रकार की घटनाएं राजस्थान, बिहार, पंजाब, मध्य प्रदेश , कर्नाटक,गुजरात सहित देश के अनेक राज्यों में हुई। सामान्यत: दलबदल की घटनायें तब ज्यादा परिलक्षित होती है जब केंद्र में भिन्न दल की सरकार होती है जबकि राज्यों में केंद्र मै सत्तारूढ़ दल के विपक्षी दलों की सरकारें होते हैं। विधायकों का सबसे संपर्क काटकर उन्हें सुरक्षित स्थान पर ले जाना या पांच सितारा होटलों में रखना या बंधकों की तरह प्राइवेट विमानों या बसों से एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाना।

यह परंपरा 1984 में आंध्र प्रदेश के एनटीआर एवं चंद्रबाबू नायडू द्वारा शुरू की गई जिसमें कांग्रेस द्वारा एनटीआर की अनुपस्थिति में उनकी सरकार को गिरा कर भास्कर राव को मुख्यमंत्री बनाया गया तब चंद्रबाबू नायडू द्वारा 163 विधायकों को सुरक्षित स्थान पर ले जाकर उनका सबसे संपर्क काट दिया गया एवं राष्ट्रपति के समक्ष उनकी परेड कराई गई आखिरकार भास्कर राव की सरकार को हटाकर एनटीआर की सरकार बहाल की गई।

इसके बाद तो इस प्रकार की घटनाएं सामान्य हो गई है। दलबदल करके सरकार बनाने का एक प्रभाव यह भी हुआ की अनेक राज्यों में बहुत बड़े-बड़े मन्त्रीमंडलों का निर्माण हुआ, जिनमें दलबदल करने वाले विधायकों को मंत्री पद देकर पुरस्कृत किया जाने लगा।

इस प्रकार की दलबदल की घटनाओं को रोकने के लिए तथा जनादेश का उल्लंघन करने वाले सदस्यों के विरुद्ध कार्यवाही के लिए 1985 में 52 वा संविधान संशोधन अधिनियम दल बदल विरोधी कानून के रूप में अस्तित्व में आया इसमें संविधान के 4 अनुच्छेदों 101, 102, 190, 191 में परिवर्तन किया गया है। इसमे सांसदों एवं विधायकों द्वारा एक राजनीतिक दल से दूसरे राजनीतिक दल में जाने पर निरहर्ता या अयोग्यता के बारे में प्रावधान है साथ ही संविधान में एक नई अनुसूची दसवीं अनुसूची (दल परिवर्तन विरोधी कानून से संबंधित) जोड़ी गई है। इस अधिनियम का उद्देश्य भारतीय संसदीय लोकतंत्र को मजबूती प्रदान करना तथा असैद्धांतिक एवं अनैतिक दल प्रवर्तन पर रोक लगाना था। इस कानून के द्वारा-

1 किसी भी संसद या विधानसभा सदस्य की सदस्यता समाप्त हो जाएगी यदि वह स्वेच्छा से अपने दल को छोड़कर अन्य दल में जाए या नया दल बनाएं या निर्दलीय स्थिति अपना ले या प्रतिकूल मतदान करें या निर्दलीय सदस्य किसी दल में शामिल हो जाए।

2 लेकिन यदि विधायक दल के (एक तिहाई)सदस्य दल छोड़ दें तो वे अयोग्य घोषित नहीं होंगे।

3 दल बदल के किसी भी प्रश्न पर अंतिम निर्णय सदन के अध्यक्ष का होगा तथा इसे क्रियान्वित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार भी उसी का होगा

प्रारंभ में दसवीं अनुसूची के अनुच्छेद के अनुसार अध्यक्षों के फैसलों पर न्यायालय को पुनर्विचार का अधिकार नहीं होने का प्रावधान था जिसे न्यायालय ने किहातो-होलाहन बनाम जाचिल्लहु मामले में निरस्त कर दिया एवं दलबदल संबंधित पीठासीन अधिकारियों के निर्णय को न्यायिक समीक्षा के दायरे में रखा गया।

52 वें संविधान संशोधन अधिनियम एवं दसवीं अनुसूची की व्यवस्था के अनुसार यदि किसी दल के 1 या 2 या कुछ सदस्य दल बदल करते हैं तो स्वत: ही उनकी सदस्यता रद्द हो जाएगी लेकिन यदि दल के एक तिहाई सदस्य सामूहिक रूप से दलबदल करेंगे तो वह वैध होगा। इस प्रकार से इस कानून ने व्यक्तिगत दलबदल पर तो रोक लगाई लेकिन यह अप्रत्यक्ष रूप से सामूहिक दलबदल को स्वीकृति प्रदान करता है।

अधिनियम के इसी अयोग्यता से छूट संबंधी प्रावधान होने छुटपुट दलबदल को तो रोका लेकिन बड़े पैमाने पर दलबदल को प्रोत्साहित किया जिसकी वजह से यह दलबदल रोकने में प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाया। अंततः चुनाव सुधार समिति, विधि आयोग की 170 वीं रिपोर्ट ,संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए गठित राष्ट्रीय आयोग , (NCRWC) तथा अनेक विधि एवं संविधान विशेषज्ञों की अनुशंसा पर दलबदल पर पूर्ण रोक लगाने तथा मंत्री परिषद का आकार सीमित करने के उद्देश्य से 91 वां संविधान संशोधन(2003) लाया गया

91 वे संशोधन द्वारा 52वें संविधान संशोधन के एक तिहाई वाले प्रावधानों को हटा दिया गया। अब दलबदल करने वाले सांसद और विधायक की सदस्यता स्वत: ही समाप्त हो

जाएगी चाहे उसकी संख्या कितनी भी क्यों ना हो। ऐसा सदस्य किसी प्रकार के लाभ के पद को प्राप्त नहीं कर सकता । मंत्रिपरिषद का आकार 15 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता है। इसके बावजूद भी दल बदल की प्रवृत्तियों को नहीं रोका जा सकता है अपितु अब वे और अधिक विक्रत एवं सुनियोजित तरीके से संपन्न हो रहे हैं ।

इन कानूनों को लागू करने एवं दलबदल से संबंधित अंतिम निर्णय विधानसभा या लोकसभा अध्यक्ष के पास है और उनके द्वारा अधिकांशत: अपनी पार्टी के हित एवं नेतृत्व के निर्देश अनुसार कार्यवाही की जाती रही है। ऐसे मामलों में कई बार राज्यपालों की राजनीतिक निष्ठा से प्रेरित भूमिका भी प्रश्नचिन्ह खड़े करती है। साथ ही दल बदल विरोधी कानून के तहत सदस्यों की सदस्यता समाप्त करने की याचिकाओं में फैसला लेने में लिया गया बहुत अधिक समय भी उनके फैसले के महत्व को समाप्त कर देता है।

हाल के दिनों में मध्य प्रदेश, कर्नाटक में दल बदल से सरकारें बदल चुकी हैं। उत्तराखंड,अरुणाचल प्रदेश भी विधायकों के दल बदल के चलते राजनीतिक अस्थिरता के शिकार हो चुके हैं। झारखंड, छत्तीसगढ़, गोवा में भी ऐसे ही हालात हुए तथा पूर्वोत्तर के छोटे राज्यों में तो अक्सर ऐसी स्थिति होती रहती है । छोटे राज्यों की विधानसभा में जहां दो दलों के मध्य बहुत कम सदस्यों का अंतर होता है वहां विधायकों द्वारा दलबदल करने पर अक्सर राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति पैदा हो जाती है।

राजस्थान का हाल ही का संकट भी इसी की एक कड़ी है जिसमें दल से असहमति या पार्टी व्हिप को ना मानने के आधार पर दलबदल की स्थिति है या नही ? तथा विचार या अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार बनाम राजनीतिक अनुशासन पर बहस जारी है। निरंतर हो रही इन दल बदल की घटनाओं ने यह सोचने को विवश किया है कि आखिर दल बदल के क्या कारण है जिनकी वजह से इसे रोक पाना मुश्किल हो रहा है दलबदल की बढ़ती प्रवृत्ति के मुख्य कारण किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलना ,मिली जुली सरकारे, प्रभावशाली दलीय नेतृत्व का अभाव, पार्टी में बढ़ती निरंकुशता की प्रवृतियां , प्रत्येक विधायक की निर्णायक स्थिति, व्यक्तिगत अपेक्षाएं, पद लोलुपता, धन का प्रलोभन, जनता की निष्क्रियता एवं सबसे मुख्य कारण विचारधारा या मूल्यों से रहित राजनीति रहा है। इसके कारण दलबदल की घटनाएं निरंतर बढ़ रही है जिनके परिणाम स्वरूप शासन में अस्थिरता बढी है, निर्वाचित सरकारों का पतन हुआ है, राजनीतिक दलों में विघटन और सिद्धांत विहीन राजनीति का चलन चला है, अवसरवादिता, पद लोलुपता एवं सदस्यों की खरीद-फरोख्त में वृद्धि हुई है।

इस पर रोक लगाने वाले कानून बहुत प्रभावी सिद्ध नहीं हो पाए हैं और अधिक सख्त कानून के भी पक्ष और विपक्ष दोनों में अपने-अपने तर्क हैं इसके पक्ष में तर्क यह है कि इन कानूनों से राजनीतिक शुचिता एवं संसदीय लोकतंत्र को मजबूती देने के साथ साथ असैद्धान्तिक व अनैतिक दल परिवर्तन को रोका जा सकता है यह राजनीतिक संस्था में उच्च स्थिरता प्रदान करते हैं तथा अनियमित निर्वाचन पर होने वाले अतिरिक्त धन को कम करते हैं साथ ही सदस्यो की खरीद-फरोख्त पर भी रोक लगा सकते हैं। इनसे राजनीति में भ्रष्टाचार रोकने एवं शासन में एकाग्रता में वृद्धि की जा सकती है ।

लेकिन विपक्ष के तर्क यह कहते हैं कि यह कानून असहमति एवं दल परिवर्तन के बीच के अंतर को नहीं समझ सकते हैं तथा ऐसे कठोर कानूनों से मधु लिमए के अनुसार जनप्रतिनिधियों की विचार स्वतंत्रता का अधिकार बाधित होता है तथा पार्टी के

आंतरिक लोकतंत्र की समाप्ति हो सकती है तथा शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत को भी हानि पहुंच सकती है। इनसे पार्टी आलाकमान की निरंकुशता को बढ़ावा मिला है साथ ही अध्यक्ष पर निर्णय करने की सारी शक्ति के कारण इसमें अध्यक्ष पद को भी पक्षपात पूर्ण और महत्वपूर्ण बना दिया है।

वैसे भी यदि निर्वाचित प्रतिनिधि अपना दल बदलना चाहता है तो उसे रोका नहीं जा सकता। प्रावधानों को और अधिक कठोर बनाने का परिणाम यही होगा कि दलबदल की कीमत और अधिक बढ़ जाएगी और दलबदल चाहने वाला हर कोई व्यक्ति इस्तीफे का रास्ता अपनाएगा या अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयास करेगा।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या दलबदल को रोकने के कोई अचूक उपाय हो सकते हैं या फिर दलों के साथ ही दलीय राजनीति एवं दलबदल निश्चित रूप से संबंधित है जिनका कोई अचूक उपाय नहीं हो सकता है। इसका उपाय या तो विनोबा भावे एवं जयप्रकाश नारायण की दलविहीन लोकतंत्र के आदर्श मत में खोजा जा सकता है या फिर इसका निर्णय मतदाताओं को अपने विवेक एवं जागरूकता द्वारा किया जाना चाहिए यदि वे दल बदलूओं को पुन: निर्वाचित होने में हतोत्साहित करेंगे तो शायद ऐसी घटनाओं पर रोक लगाई जा सके। साथ ही स्पीकर की भूमिका को कम करके न्यायालय की भूमिका में वृद्धि की जानी चाहिए एवं शासन के सभी अंगों में संतुलन स्थापित करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

- बॉल एलेन, आधुनिक राजनीति और शासन, मैकमिलन ,1971
- कश्यप्सुभाष, दलबदल एवं राज्यों की राजनीति, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1970, पृष्ठ 121,44
- माहेश्वरी संजय व मौर्य, लोकतंत्र, राजनीति व आदर्श, IRJ- Vol 1
- कोठारी रजनी, भारत मे राजनीति, दिल्ली ,ओरिएंट लॉगमन, पृष्ठ 128, 227
- लिमये मधु, कंटेम्परेरी इंडियन पॉलिटिक्स, रेडियंट, 1989
- भाम्भरी सी.पी., बेउरोक्रेसी एंड पॉलिटिक्स इन इंडिया, विकास, दिल्ली,1971, पृष्ठ 54
- सिंह एम. पी एंड सक्सेना रेखा, इंडियन पॉलिटिक्स , pHI, delhi, 2011
- नारायण इकबालरू पोलिटिकल चेंज इन इंडिया, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, 1972
- किहातो होलोहून बनाम जचिल्हु 1992
- कश्यप सुभाष, एन्टी डिफेक्शन लॉ एंड पार्लियामेंटरी प्रेवेलेज, एन, एम त्रिपाठी प्राइवेट लिमिटेड, बॉम्बे, 2011

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

भारतीय लोक संगीत की संकल्पना

• निष्ठा शर्मा

सारांश - जगत में जो भी दिखाई देता है, वह 'लोक' है। 'लोक' शब्द जन सामान्य का नामकरण है। उसका हृदय गाँवों में धड़कता है। उसकी उदात्त भावनाओं और उसके हर्षोल्लास, आशाओं आकांक्षाओं के स्वर ग्रामवासियों के कोटि-कोटि कंठों से मुखरित होते हैं और इसी से जन्म होता है हमारी लोककलाओं और लोक संस्कृति का।

मुख्य शब्द- बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, नैसर्गिक, पार्श्वभूमि, अचिन्त्य, अभिसिंचित, उद्भावना, स्थूलता, विकृतीकरण, अनुष्ठानपरक।

प्रस्तावना - कविवर सुमित्रानन्दन पंत के शब्दों में 'भारतमाता ग्रामवासिनी' है।[1] दूसरे शब्दों में – भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। उसका हृदय गाँवों में धड़कता है। उसकी उदात्त भावनाओं और उसके हर्षोल्लास, आशाओं आकांक्षाओं के स्वर ग्रामवासियों के कोटि–कोटि कंठों से मुखरित होते हैं और इसी से जन्म होता है हमारी लोककलाओं और लोक संस्कृति का।

प्राचीन काल से ही मानव का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहने के कारण उसकी हर क्रिया प्राकृतिक थी। प्रत्येक अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थिति में वह प्रकृति को ही देखता था। भारत के कृषक जीवन का पूर्ण प्रतिबिम्ब लोक संगीत में दिखाई देता है। प्रकृति और कृषि का जो साहचर्य भारतीय लोक मानस में अपनी परम्पराओं के साथ छोड़ गया, वही सहज रूप से हमारी रागात्मक प्रवृत्तियों में मुखर हो उठता है।

जगत में जो भी दिखाई देता है, वह 'लोक' है। 'लोक' शब्द जन सामान्य का नामकरण है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में 'लोक' शब्द का प्रयोग 'दिव्य' अथवा 'पार्थिव' अर्थों में किया गया है। बुद्ध के 'बहुजनहिताय' और 'बहुजनसुखाय' में भी लोक की भावना निहित है। 'भरत' के अनुसार – 'लोक' अनेक देशों में विभक्त है। उसके वेश–भूषा और आचार विभिन्न हैं। मर्मस्पर्शी दृष्टि सम्पूर्ण लोक पर पड़ती है। जो देखा जाये अर्थात् दर्शन का विषय हो, उसे ही लोक कहते हैं। लोक की विशेषतायें अनन्त हैं, इसीलिये भरत का कथन है कि अपने ग्रन्थ में मैंने जो कुछ नहीं कहा है, वह बुद्धिमानों को लोक से ग्रहण कर लेना चाहिये। मुनि का यह वाक्य सिद्ध करता है कि 'लोक' गुरूओं का भी गुरू है।[2] अकेला व्यक्ति 'लोक' नहीं कहलाता। बहुत्व अथवा समष्टि लोक की आत्मा है, अभिव्यक्ति है। 'लोक' में सबका सबके लिये, सब कुछ मिलता है। सहजता, सरलता, निश्छलता तथा आडम्बर विहीनता 'लोक' के गुण व स्वभाव है। यही गुण आनन्द का स्रोत है और इसी में लोक कल्याण, लोक मंगल निवास करता है।

लोक हमारे जीवन का समुद्र है। उसमें भूत, भविष्य वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है।[3] पं. जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में – लोककला में हमकों अपने उस सांस्कृतिक वैभव को देखने का अवसर मिला है, जिसने हमारे देश को एकता के सूत्र में बांधा है।[4] किसी भी

• असिस्टेंट प्रोफेसर (संगीत, गायन) महात्मा गाँधी बालिका विद्यालय (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद

राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रस स्रोत लोकगीत होते हैं।

जीवन और संगीत के नैसर्गिक संबंध का वास्तविक परिचय लोक संगीत में मिलता है। सामान्य लोक जीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्य रूप से अनायास फूट पड़ने वाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोक संगीत है। लोक संगीत देश के प्रत्येक निवासी विशेषकर आदिवासी या ग्रामीणवासी के निजीपन को रंगीन बनाता आया है। कालान्तर में वास्तविक गुण और प्रकृत आकांक्षायें इन्हीं कला रूपों में समाहित होकर जातीय अभिव्यक्ति में ढलती हैं। प्रकृति के अलग-अलग रंगों ने लोक जीवन और लोक संगीत को भी अलग-अलग रंग और रूप दिये है। यह रंग और रूप हमें परम्परा के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में मिलते चले आये हैं। कहा भी गया है - ''तीन कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी।''

इतिहास के साथ परम्परा का भी परिवर्तनशील होना अनिवार्य है। परम्परा अपने समय के दर्शन और चिन्तन से जुड़ी हुई होती है। परम्पराओं की अभिव्यक्ति संस्कारों के रूप में हमारी जीवन शैली में होती है। इन परम्पराओं की स्वरबद्ध, लयबद्ध अभिव्यक्ति हम लोग गीतों और लोक नृत्यों में पाते हैं। इन लोक गीतों और नृत्यों में समय का भूगोल बोलता है, मौसम बोलता है, सामाजिक और दार्शनिक मान्यताएं बोलती हैं और उनके पीछे से झांकते हैं हमारे पूर्वजों के सपने। कवि नरेश सक्सेना के शब्दों में कुछ इस तरह -

जैसे नदी लौट आती है बारिश में
पेड़ों पर लौट आते हैं नये पत्ते,
बसन्त में वैसे ही लौट आते हैं हमारे पूर्वज
तीज त्योहारों में वे हमारे साथ होते हैं
हमारे बोलों में उनके बोल,
हमारी हंसी में उनकी हंसी
और हाथों में उनके हाथ होते हैं
उनके झुर्रीदार चेहरों से
झांकते हैं नये जन्मे शिशुओं के चेहरे
गाते-गाते चौंककर अचानक हम सुनते हैं
यह हमारी आवाज है या उनकी आवाज है
हमारे मौन मे होता है उनका मौन।[5]

लोक संगीत के अंतर्गत गीत तथा नृत्य दोनों ही मिले-जुले संबंधों में खुले वातावरण के साधन हैं। कृषि जीवी जातियों के लिये ये कलाएं व्यवहार स्वरूपा हैं। उनके जीवन-यापन की पद्धति है जो उन्हें आपस में जोड़ती है तथा अपने सुख व दुःख को इन्हीं माध्यमों से अभिसिंचित करती है। यदि यह प्रश्न आता है कि लोक संगीत की उत्पत्ति कब हुई, तो यही कहा जा सकता है कि लोक संगीत में क्यूंकि भाव होते हैं, अतः हृदय की उत्पत्ति या मानव की भावपूर्ण संवेदनाओं के साथ ही इसकी उत्पत्ति हुई। देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि भी लोक संगीत है। जीवन के अनेक पहलू लोकगीतों के विषय है। लोकगीतों के वर्गीकरण के तीन आधार परिकल्पित किये गये हैं - जातिभेद, ऋतु-परिवर्तन और अवसरानुकूल। डा. चिन्तामणि के शब्दों में - ''लोकगीतों में मानव हृदय के भाव लोकजीवन के सामान्य धरातल पर आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, प्रणय एवं कलह आदि के रूप में व्यक्त हुये है। इस अभिव्यक्ति में हमें मानव जीवन की उस प्रारम्भिक स्थिति के दर्शन होते हैं जहाँ साधारण

मनुष्य अपनी लालसा, उमंग, उल्लास, प्रेम व घृणा आदि भावों को प्रकट करने में समाज द्वारा शिष्टाचार के कृत्रिम बन्धनों को स्वीकार नहीं करता। स्वच्छन्द भावना शिष्टाचार के बनावटी बन्धनों से मुक्त होती है। स्वछन्द भावना व स्वछन्द अभिव्यक्ति लोकगीतों का प्रथम लक्षण है।[6] इग्लैंड के प्रसिद्ध कवि वर्ड्सवर्थ ने स्वाभाविकता को ही कविता का सर्वप्रधान गुण माना है।[7] इस आदर्श की दृष्टि से तो हमारे ग्राम गीत सर्वोच्च श्रेणी के कहे जा सकते है हैं। इनमें भाषा की हीं नहीं, भावों की भी नैसर्गिकता बड़ी प्रचुरता से पाई जाती है। इसकी उद्‌भावना में व्यक्ति विशेष प्रधान न रहकर, सामाजिक मूल्य, परम्परा, रीति–रिवाज प्रधान होते हैं। इन्हीं तत्वों के द्वारा विभिन्न प्रकार की घुने प्रस्फुटित होकर विशेष परम्परा स्थापित करती हैं। पाश्चात्य विचारकों में ही 'ग्रिम' के मतानुसार – लोक गीत तो स्वतः जन्मा है। 'परसी' आदि विचारक कहते हैं – मानव के उल्लासमय संगीत को ही लोक संगीत कहते हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल कहते हैं – लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।[8]

लोक संगीत समाज का सच्चा चित्र उपस्थित करते हैं। लोक संगीत में भाव पक्ष की प्रधानता पाई जाती है तथा इसका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि किसी भी सरल व सुमधुर धुन को आत्मसात कर लेता है। लोकगीतों में स्वर रचना थोड़े स्वरों में, सरल धुनों में होती हैं। ये गीत स्वर प्रधान होने से अधिक लय प्रधान होते हैं। 'गीत' शब्द भाषा, सभी भाव–प्रधान होते हैं। कुछ धुने निश्चित होती है अर्थात् एक ही धुन में अनेक गीत होते हैं जो लय तथा गीत के बोलों के परिवर्तन द्वारा भिन्न होते हैं। प्रसिद्ध संगीतज्ञ कुमार गन्धर्व का कहना है कि लोक धुनों की स्वर रचना प्रसंगानुकूल भी होती है, उन स्वरों के प्रसंग अनुरूप भाव व्यक्त होते है।[9] **लोकगीतों के दो अंग होते हैं -** कविता और धुन अथवा शब्द और स्वर। कुछ रचयिता पहले कविता बनाते हैं फिर संगीत निबद्ध करते हैं, कुछ पहले धुन बना लेते हैं फिर उस पर शब्दों की रचना करते हैं; किन्तु कुछ के मुख से स्वर और शब्द एक साथ निकल पड़ते हैं, जो कि विशेष भाव के कारण अन्तः प्रेरणा से निकलते हैं। अधिकांशतः तीसरा प्रकार ही लोकगीत की विशेषता है। लोक गीतों में कविता तथा धुन के भावों में साम्य रहता है। लोक गायक अपने सुख–दुःख के समय अपने अनुभवों को गीतों के माध्यम से प्रकट करते हैं। इन गीतों में सूक्ष्मता की अपेक्षा स्थूलता तथा स्पष्टता का अधिक महत्व रहता है। लोक गीतों में स्वरों के उतार–चढ़ाव का विचित्र तथा चमत्कार नहीं मिलता, किन्तु जो भी स्वर प्रयोग उनमें मिलते हैं, उनमें सम्पूर्ण संवेदनाओं और अनुभूति की निष्कपट सरल अभिव्यक्ति के कारण हृदय को बरबस खींचने का आकर्षण होता है।

स्वरों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि लोक गीतों में अधिकतर सात शुद्ध स्वर तथा दो विकृत – कोमल गंधार तथा कोमल निषाद स्वरों का प्रयोग मिलता है।[10] अधिकतर लोक संगीत का विस्तार चार या पाँच स्वरों में ही होता है। अनेक रागों का जन्म ही लोक धुनों से हुआ है, जैसे – आसा, मॉड, झिंझोटी, पहाड़ी इत्यादि। लोक संगीत में प्रयुक्त होने वाले अवनद्ध अथवा घन वाद्यों में ढोलक, खंजरी, झांझ और करताल उल्लेखनीय हैं। इनमें भी ढोलक सबसे महत्वपूर्ण है। ढोलक के बाज में अद्‌भुत विकास मिलता है, इसके पृथक बोल होते हैं। लोक गीतों में अधिकतर कहरवा, दादरा, खेमटा तथा दीपचन्दी (चाचर) तालों का प्रयोग मिलता है। वाद्यों की उत्पत्ति के इतिहास में सर्वप्रथम ताल यंत्रों की ही उत्पत्ति मानी गई है। लोक संगीत में भी ताल यंत्रों की तुलना में स्वर यंत्रों का प्रयोग गौण है। डॉ. लालमणि मिश्र कृत 'भारतीय संगीत वाद्य' में उल्लेख किये हुये वर्गीकरण में से दो वर्गीकरण को लोक संगीत के वाद्यों हेतु सरलतापूर्वक ग्रहण किया जाना चाहिये। पहला स्वरोत्पत्ति हेतु, जिसमें

तत एवं सुषिर वाद्य हैं। इनकी संख्या एवं भेद लोक संगीत में अधिक नहीं है। दूसरा वर्ग तालोत्पत्ति हेतु, जिसमें अवनद्ध तथा घन वाद्य हैं। भारतीय लोक संगीत में इनकी संख्या इतनी अधिक हैं कि इनको वर्गीकरण भेद में बाँटना कठिन हैं।[11]

वास्तव में लोकगीत कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं। हृदय को आनन्दित करने वाले हैं। ये लोकगीत सदैव लोक की निधि रहे है। इन पर सबका समान अधिकार है।[12] लोक गीत जाग्रत विचार और आचार है। लोक संस्कृति के संबंध में संरक्षण की पुकार है, किन्तु सत्य यह है कि लोक संस्कृति से लगाव का दावा करने वाले उसके रूपों का खूब दोहन कर रहे हैं। लोक धुनों पर अलबम तथा फिल्मी गायक व संगीतकार लोक संस्कृति का बड़े पैमाने पर व्यवसायिक भद्दा दुरूपयोग कर रहे हैं। इसलिये लोक संस्कृति के सामने शुद्धतावाद के अलावा विकृतीकरण दूसरी ओर सबसे बड़ी चुनौती है। लोक संस्कृति की अस्मिता पर बाजारवादी चिन्तन ने अनेक प्रश्न खड़े कर दिये हैं।

सत्य यही है कि भारत की चिर प्राचीन संस्कृति की झांकी लोक जीवन में मिलती है। जनजीवन में प्रचलित परंपरायें ही प्राचीन हैं। ग्रामीण जीवन में आज भी उन मान्यताओं को संजोये रखा है। इसी कारण संसार में जन्म से लेकर, धार्मिक पर्वो, मेलों, ऋतुओं, खेती की सफलता के लिये, देवताओं को प्रसन्न रखने के लिये सुख-समृद्धि तथा दैनिक जीवन की क्रिया-कलापों में लोक संगीत मुखर हो उठता है। भारत की इस लोक संस्कृति की अस्मिता के दर्शन इसकी प्राचीनता के साथ ही इसकी निरन्तरता में है। यह निरन्तरता मिलती है सामान्य जन के आचार में, उसकी जीवन शैली में, उसके अनुष्ठानों में, उसके अनुष्ठानपरक गीतों, चित्रों में, उसके मकान की बनावट में। इन सभी में एक मंगल भावना व्याप्त है। 'जैसे उसके दिन लौटे हैं, वैसे सबके दिन लौटें'। लोक गीत का आन्तरिक राग यही है। कुटुम्ब भाव में ही लोक संस्कृति तथा लोक संगीत की अस्मिता एवं विकास है। भारतीयता का यही स्थाई भाव है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. लोकरंग, दया प्रकाश सिन्हा, पृष्ठ – 5
2. संगीत (लोक संगीत अंक), सुमित्रा आनन्द पाल सिंह, पृष्ठ-10
3. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक पृष्ठ-40
4. सांगीतिक निबंध माला, डॉ. सीमा जौहरी, पृष्ठ-76
5. 'पहचान' विजय नरेश, पृष्ठ-301
6. उपर्युक्त, डॉ. सीमा जौहरी, पृष्ठ-71
7. कला वसुधा (लोक प्रसंग), रामाज्ञा द्विवेदी, पृष्ठ-36
8. भारतीय लोक वाद्य, डॉ. कौशल कुमारी, पृष्ठ-31
9. उपर्युक्त, डॉ. सीमा जौहरी, पृष्ठ-77
10. लोक संगीत अंक, महेश नारायण सक्सेना, पृष्ठ-46
11. उपर्युक्त डॉ. कौशल कुमारी, पृष्ठ-31

12- Old English Ballads, F.B. Gummera, Page – 90 भारतीय लोक गीत, डॉ. सुरेश गौतम, पृष्ठ-33पृष्ठ-33

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय संविधान में मानवाधिकार बोध

● रंजन शर्मा

सारांश - मानवाधिकारों का वर्तमान भारत के स्वतंत्रता संग्राम में किए जनआन्दोलनों का ही परिणाम है। भारत में मानवाधिकारों को लेकर कोई विशेष विधि नहीं बनाई गई है अपितु भारत के संविधान में ही इन्हें मूल अधिकारों के रूप में स्थान प्रदान किया गया है। मूल या मौलिक अधिकारों को ही भारत में मानव अधिकार के रूप में क्रियान्वित किया जाता रहा। मूल अधिकारों के विषय में प्रसिद्ध विचारक सर आइवर जेनिंग्स, डायसी तथा अन्य लेखकों व विचारकों का मत है कि संविधान में मूल अधिकारों का उल्लेख करना विवाद को जन्म देता है। आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैंड, ब्रिटेन तथा दक्षिण अफ्रिका आदि देशों में, संविधान में मूल अधिकार पद का कोई प्रयोग नहीं किया जाता है। न ही संविधान में इनका पृथक विधि से वर्णन है लेकिन वहाँ की जनता फिर भी अपने अधिकारों व स्वतंत्रता का खुलकर उपयोग करती है। भारत के संविधान के गठन में इन देशों के संविधान में से कुछ प्रमुख पदों को लिया गया है, जैसे संविधान के अनुच्छेद-21 में वर्णित "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" पद को जापान के संविधान से लिया गया है। लेकिन फिर भी भारत के संविधान में मूल या मौलिक अधिकार पद का प्रयोग किया गया है। इसका प्रमुख कारण इन देशों तथा भारत की जनता में जागरूकता तथा मानसिकता के स्तर का अन्तर माना जाता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में मौलिक रूप से भारत में मानव अधिकारों के स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यह विषय एवं क्षेत्र मेरे शोध कार्य से संबन्धित है।

मुख्य शब्द- **मानवाधिकार, जनआन्दोलन**

प्रस्तावना - अनेक संघर्षो के पश्चात ब्रिटिश संसद में 4 जुलाई, 1947 को "भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम" प्रस्तावित किया गया। 18 जुलाई, 1947 को यह स्वीकृत हो गया। इस अधिनियम में भारत को प्रभुसत्ता सौंपकर अंग्रेजी शासन के अन्त का पूर्ण प्रावधान हो गया। यह निर्धारित किया गया कि 15 अगस्त के पश्चात भारत तथा पाकिस्तान पर ब्रिटिश शासन का कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। इसके पश्चात भारत में नए संविधान की रचना के लिए संविधान सभा का गठन हुआ। इसके स्पष्टीकरण के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने कहा है कि "भारत में इन अधिकारों को विधान मण्डलों या सरकार की इच्छा पर छोड़ देना उचित नहीं था। क्योंकि भारत में अब तक लोकतंत्र पूर्ण रूप से पनप नहीं पाया है, इसलिए इन अधिकारों को संविधान में रख दिया गया।"

संविधान सभा किसी देश के उन नागरिकों का एक सर्वमान्य संगठन होता है, जो स्थानीय होकर पूरे देश के प्रत्येक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और संविधान निर्माण में उन समस्त तथ्यों को समाहित करते हैं जो जनसामान्य के हित को ध्यान में रखकर, संविधान में अनिवार्य रूप से निर्धारित कर दिए जाएँ। इस प्रकार संविधान सभा किसी देश में न्यायप्रणाली की स्थापना तथा नागरिक अधिकारों की जननी है।

जेनिंग्ज के अनुसार- "संविधान सभा एक ऐसी प्रतिनिध्यात्मक संस्था होती है जिसे नवीन संविधान पर विचार करने और अपनाने या विद्यमान संविधान में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए चुना जाता है।"

● **सहायक प्राध्यापक, (हिन्दी) मालवा कॉलेज ऑफ एजुकेशन बीनागंज जिला-गुना (म.प्र.)**

संविधान सभा के गठन की परिकल्पना 17वीं तथा 18वीं सदी की देन मानी जाती है। इन सदियों में हुई क्रान्तियों ने इस विचार को जन्म दिया कि शासन के मूलभूत कानूनों का निर्माण नागरिकों की एक विशिष्ट प्रतिनिधि सभा द्वारा किया जाना चाहिए। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जुलाई 1946 ई. में संविधान सभा के चुनाव हुए। संविधान सभा में पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, गोपालास्वामी आयंगर, ए.के. अय्यर, पट्टाभि सीतारमैया, मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, ठाकुरदास भार्गव तथा अन्य कई प्रमुख नेता चुने गए और इनका संविधान के गठन में महत्वपूर्ण योगदान रहा। डॉ.राजेन्द्र प्रसाद को इस सभा का अध्यक्ष चुना गया। संविधान सभा द्वारा ही भारत के संविधान का उद्देश्य पारित किया गया और इसमें लोकतंत्र को ही सर्वोपरि मानकर समस्त प्रभुसत्ता को जनता में ही समाहित किया गया तथा लोगों को आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, अभिव्यक्ति तथा धर्म की स्वतंत्रता व अन्य मानव अधिकारों की घोषणा की गई।

इसके पश्चात स्वतंत्रता प्राप्ति का शुभ दिन आया और संविधान के गठन के लिए एक प्रारूप समिति का गठन किया गया। डॉ. अम्बेडकर को इस समिति का अध्यक्ष चुना गया। इस संविधान सभा में भारत के सभी वर्गों ने प्रतिनिधित्व किया। मानवाधिकारों के विश्लेषण की दृष्टि से इस संविधान में मानव को मूल स्वतंत्रता देने की घोषणा की गई। जिस योजना पर संयुक्त राष्ट्र संघ कार्य कर रहा था वे मानवाधिकारों के संरक्षण संबंधी समस्त लक्षण इस संविधान में समाहित थे। इसके निर्माण में 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन लगे तथा 26 जनवरी 1950 को संविधान देश पर लागू कर दिया गया। इसके निर्माण से पूर्व अमेरिका, आयरलैंड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जापान, दक्षिणी अफ्रिका आदि देशों के संविधान का भी भलीभांति अध्ययन किया गया। उनमें उल्लेखित उन सभी बिन्दुओं को भारत के संविधान में भी समाहित कर संविधान को व्यापक दृष्टिकोण से परिपूर्ण संविधान बनाने का प्रयास किया गया है। भारतीय संविधान में संसदात्मक प्रणाली को अपनाया गया है और लोकतंत्र अर्थात् जनता की भावना को सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है। इस प्रकार भारत के संविधान को मानवाधिकारों की दृष्टि से संतोषजनक कहा जा सकता है। किन्तु राज्य और नागरिक के संघर्ष में राज्य ही आगे रहा है। न्यायालयों व मानवाधिकार आयोगों की रचना-

भारत में संविधान सभा का जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गठन किया गया था, वह था एक ऐसे संविधान का निर्माण जो देश के नागरिकों के अधिकारों की रक्षा कर सके और लोकतंत्र तथा स्वराज्य के स्वप्न को पूर्ण कर सके। भारत के संविधान की उद्देशिका स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही रच ली गई थी। इस उद्देशिका के अनुसार ही संविधान का निर्माण किया गया है।

न्यायमूर्ति सुब्बाराव के अनुसार- ''प्रस्तावना संविधान के आदर्शों व आकांक्षाओं को बताती है।'' अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए और जैसा कि भारत के संविधान की प्रस्तावना में कहा गया-

भारत को ....''गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता...।''

भारतीय संविधान के भाग-चार के अनुच्छेद 123 के अनुसार संघ की न्यायपालिका का गठन करने हेतु राज्य को उपबंधित किया गया है। भारत अनेक प्रान्तों से

मिलकर एक राष्ट्र के रूप में संगठित हुआ है। इसमें देशी रियासतों को भी सम्मिलित कर एक राष्ट्र का निर्माण किया गया है। प्रस्तावना के अनुसार भारत एक संघात्मक तथा लोकतांत्रिक गणराज्य होगा, इसलिए समस्त प्रान्तों को, रियासतों को मिलाकर एक गणराज्य की स्थापना की गई। इस भारत गणराज्य या संघ के लिए उच्चतम न्यायालय की स्थापना का प्रावधान है। केन्द्र सरकार तथा संसद से संबंधित किसी भी प्रकार के विवाद या प्रकरण या प्रश्न का निराकरण उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाता है। इसका कार्यक्षेत्र संपूर्ण भारत है। यह केन्द्र तथा राज्यों के बीच, दो राज्यों के बीच तथा कई राज्य तथा केन्द्र के बीच वाले वादों पर अपनी राय या निर्णय देती है। इसे सर्वोच्च न्यायालय भी कहते हैं। वर्तमान में उच्चतम न्यायालय का मुख्यालय दिल्ली है।

उच्चतम न्यायालय एवं मूल अधिकार- मानवाधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा में जिन्हें मानव अधिकार कहा गया है उन्हें भारत के संविधान में मौलिक या मूल अधिकार कहा गया है। लेकिन मानव अधिकार मौलिक अधिकारों की तरह ठीक उसी भाषा तथा रूप में वर्णित नहीं हैं जिसमें मूल अधिकारों को वर्णित किया गया है। भारत के संविधान के भाग-तीन में कतिपय अधिकार भारत के नागरिकों को प्रदान किए गए हैं और ये सभी अधिकार मूल अधिकार कहे जाते हैं।

इनकी विशेषता यह है कि इनका अतिक्रमण करने या राज्य द्वारा इनका उल्लंघन करने पर उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में जाकर, इनके संरक्षण हेतु राज्य को बाध्य किया जा सकता है। भारतीय संविधान इन अधिकारों को प्रदान करने की गारंटी देता है और प्रत्येक नागरिक को ये अधिकार बिना किसी भेदभाव के उपलब्ध होंगे। यदि राज्य ऐसा नहीं करता है तो न्यायालय उसे अपने आदेश द्वारा परिपालन हेतु बाध्यकारी आदेश जारी कर सकता है। इन अधिकारों को न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय माना जाता है। ये मूल अधिकार अपने मूल रूप में इस प्रकार है -

1. समता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18 तक)
2. स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19)
3. अपराधों से दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण (अनुच्छेद-20)
4. प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद-21)
5. गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण (अनुच्छेद-22)
6. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद-23,24)
7. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद-25 से 28)
8. संस्कृति और शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद-29,30)
9. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद-32)

अनुच्छेद 32 नागरिकों को व्यापक स्तर पर संरक्षण प्रदान करता है। इस अनुच्छेद के अनुसार भारत संघ का कोई भी नागरिक अपने किसी भी मूल अधिकार का हनन होने पर, राज्य या शासन के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में जाकर संरक्षण मांग सकता है। शर्त यह है कि ये अधिकार संविधान के भाग.. तीन में वर्णित उपरोक्त मूल अधिकारों की श्रेणी में आने चाहिए। इसके लिए वह सीधे तौर पर सर्वोच्च न्यायालय की शरण ले सकता है। उच्चतम न्यायालय उसे अनुच्छेद-32 के अनुसार प्राप्त शक्तियों के आधार पर न्याय प्रदान करेगी। इसे ही संवैधानिक उपचारों का अधिकार कहा गया है। यदि सामान्य नागरिकों के लिए कुछ विशेष है तो यही है कि वे अपने अधिकारों के लिए

सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा बिना किसी झिझक के खटखटा सकते हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इस अनुच्छेद को संविधान की आत्मा कहा है।

इसकी विशेषता यह भी है कि कोई भी व्यक्ति, किसी अन्य के अधिकारों के लिए भी उच्चतम न्यायालय की शरण में जा सकता है। इसे वर्तमान में जनहित याचिका का नाम दिया गया है। इसमें यदि कोई नागरिक यह पाता है किसी व्यक्ति, समूदाय, समूह या अन्य किसी भी रूप में किसी का शोषण या अधिकारों का हनन या मानसिक या शारीरिक प्रताड़ना किसी व्यक्ति या राज्य द्वारा कारित की जा रही है तो वह अन्य व्यक्ति जो इसमें हित न भी रखता हो, संसूचना प्रदान कर सकता है या स्वयं जाकर न्यायालय का ध्यान इस ओर आकर्षित कर सकता है।

संविधान में मानवाधिकारों की प्रास्थिति- भारतीय संविधान में मानवाधिकारों को मौलिक अधिकारों के अंतर्गत ही पारिभाषित किया गया है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 में जिन अधिकारों मानव अधिकार के रूप में मान्यता प्रदान की गई है, वे मानव समुदाय के लिए परम्परागत अधिकार हैं। उन्हें मानवीय गरिमा का उच्चतम मापदण्ड़ कहा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों ने इस प्रसंविदा पर हस्ताक्षर किए हैं, उन देशों ने अपने देश के मूल संविधान में इन अधिकारों को समेकित किया है। इस प्रकार मानव अधिकार संवैधानिक रूप में उस स्तर पर बाध्यकारी नहीं हैं जिस स्तर पर मौलिक अधिकारों को राज्य के विरुद्ध बाध्यकारी माना गया है।

भारतीय संविधान में प्रास्थिति- मोतीलाल बनाम उत्तरप्रदेश राज्य के एक वाद में उच्चतम न्यायालय ने नैसर्गिक या मूल अधिकारों को ही मानव अधिकार माना है। नैसर्गिक अधिकारों को नैतिक अधिकार भी माना जाता है। मूल अधिकार वे अधिकार हैं जिन्हें संविधान में सूचीबद्ध किया गया है और कतिपय अधिकार ऐसे हैं जिन्हें मूल अधिकार की सूची में नहीं जोड़े जाने पर भी मूल अधिकार की तरह ही प्रवर्तित किया जाता है। कतिपय वादों में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि किसी अधिकार को संविधान के भाग-तीन में निर्दिष्ट नहीं किया गया है तो भी यदि वह अधिकार मूल अधिकार नामोद्दिष्ट मूल अधिकार को प्रभावी बनाने में सार्थक है या आवश्यक है तो इसे प्रभावी माना जाएगा। यह सिद्धान्त भारतीय विधि में अमेरिका की उस विधि से आया है जिसमें अमेरिकी संविधान के नवें संशोधन में यह निर्धारित किया गया है कि अधिकार-पत्र में कुछ अधिकारों के प्रगणन का अर्थ यह नहीं होगा कि नागरिकों के वे अधिकार न्यून हो गए हैं जिनका उपबंध अधिकार-पत्र में नहीं किया गया है। इसी प्रकार भारतीय उच्चतम न्यायालय ने मानव अधिकारों को मूल अधिकारों के साथ जोड़ते हुए ही प्रवर्तित किया है।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि विदेश जाने का अधिकार प्रमुख रूप से मूल्यवान अधिकार है। यह मनुष्य दैहिक स्वतंत्रता का अनिवार्य अंग है। इसमें सरकार स्वेच्छाचारी तरीके से हस्तक्षेप नहीं कर सकती। विवेचना का बिन्दु यह है कि विदेश जाने का अधिकार संविधान में किसी अनुच्छेद के अनुसार उल्लेखित मूल अधिकार नहीं लिखा गया है। इसमें प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता को अनुच्छेद-21 में लिखित किया गया है।

लेकिन न्यायालय ने प्रतिवाद में पीड़ित के अधिकारों की रक्षा करने के लिए इसे प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का एक अंग मान लिया है। अस्तु, यह मूल एवं मानव अधिकार

दोनों का प्रवर्त्तन है। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों को ही मानव अधिकार के रूप में निर्देशित एवं व्यवहृत किया जा रहा है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993 के अनुच्छेद-2 में मानव अधिकार की परिभाषा दी गई है। भारत के संविधान के भाग तीन के अनुच्छेद-13 के अनुसार कोई भी विधि संविधान से ऊपर नहीं हो सकती। इसका अर्थ इस प्रकार लगाया गया है कि यदि राज्य कोई नियम या अधिनियम इस प्रकार से पारित करता है कि इससे नागरिकों को प्रदान किए जाने वाले अधिकारों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता हो, तो इस प्रकार मूल अधिकारों से असंगत विधि को न्यायालय शून्य घोषित कर सकता है। रोमेश थापर बनाम स्टेट ऑफ मद्रास के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि यदि किसी अधिनियम में यह विनिश्चित करना कठिन है कि उसका कौन-सा भाग असंवैधानिक है तो ऐसे संपूर्ण अधिनियम को ही असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।

मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध- एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी विवेचनीय है कि क्या मूल अधिकारों पर कभी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता? लेकिन भारतीय संविधान में इस प्रकार का प्रावधान किया गया है कि यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाता है कि भारत के किसी राज्य क्षेत्र या पूरे भारत पर किसी प्रकार वित्तीय संकट या देश की सुरक्षा को संकट है तो वह अधिसूचना द्वारा कतिपय मूल अधिकारों को न्यून या प्रतिबन्धित कर सकता है। संविदान के अनुच्छेद-352(1), 358 तथा 368 के अनुसार मूल अधिकारों को संशोधित या न्यून किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य, शांति, सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता तथा देश की सुरक्षा संबंधी प्रश्नों पर आधारित कारणों से प्रतिबन्ध लगाए जा सकते हैं लेकिन उनका युक्तिसंगत होना आवश्यक है। अमेरिकी संविधान में इस प्रकार का कोई प्रावधान नहीं है कि आपातकाल में भी मूल अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाए जा सकें।

मूल अधिकार व्यापक अर्थ धारण किए हुए हैं। विवेचना करने पर इनकी कोई निर्धारित परिभाषा नहीं की जा सकती। परिस्थिति तथा पात्र की आवश्यकता के अनुसार न्यायालय स्वविवेक से एवं संविधान में उल्लेखित गारंटी के अनुसार इनका क्रियान्वयन कराता है। लेकिन अब इतना सुनिश्चित है कि मानवाधिकारों का हनन करना सहज नहीं रह गया है।

भारतीय संविधान में मानवाधिकारों को अभी तक किसी प्रकार की लिखित मान्यता या उल्लेख मानव अधिकार जैसे पद का प्रयोग करते हुए नहीं है लेकिन मूल अधिकारों का प्रवर्तन इस प्रकार किया जा रहा है कि मानव अधिकार उनके अंग बन गए हैं। लेकिन मानव अधिकार का अर्थ अधिनियम में उल्लेखित है।

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993- मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात 8 जनवरी, 1994 को विधिवत को लागू हो गया था जिसे मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इसी अधिनियम की धारा-2 में मानव अधिकारों की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि- "मानव अधिकार का अर्थ है प्राण, स्वतंत्रता, समानता एवं व्यक्ति की गरिमा जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हो अथवा अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट हो तथा भारत के न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय हो।"

इस अधिनियम के अध्याय-2 में मानव अधिकार आयोग के गठन का प्रावधान है। अधिनियम की धारा-3 के अनुसार केन्द्र सरकार को एक राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के

गठन हेतु निर्देशित किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायामूर्ति को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है। इसका मुख्यालय दिल्ली में है और इसका संपूर्ण व्यय केन्द्र सरकार वहन करती है। यह आयोग मानवाधिकारों से संबंधित संसूचनाएँ तथा विवरण केन्द्र सरकार को भेजता है तथा इसमें मानवाधिकारों को लेकर नवीन अनुशंसाएँ तथा सुझाव होते हैं।

यहाँ उल्लेखनीय बिन्दु यह है कि अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा में वर्णित अधिकार, भारतीय संविधान में वर्णित मूल अधिकारों की तरह सीधे तौर पर प्रवर्तनीय नहीं हैं। प्रसंविदा के अधिकारों को प्रवर्तित करना न्यायालय के विवेकाधीन है कि वह किस प्रकार इन अधिकारों को मूल अधिकारों से संबंद्ध करते हैं। ये अधिकार प्रकृति में मूल अधिकारों से पृथक नहीं है किन्तु इनकी परिभाषा संविधान में उस प्रकार नहीं दी गई है जिस प्रकार मौलिक अधिकारों की है। इसी कारण से ये अधिकार निर्वर्चनीय हो जाते हैं। कभी-कभी इनको प्रवर्तित कराने या प्रत्याभूत कराने में नागरिकों को निराशा भी हाथ लग सकती है। किसी पंक्ति का अर्थ, की गई मांग या चाहा गया अनुतोष इस बिन्दु पर भी निर्भर करता है कि वह मानव अधिकार तो हो सकता है किन्तु क्या वह मूल अधिकारों की लिखत की परिभाषा के अंतर्गत है समाविष्ट है।

मानवाधिकार आयोग के कार्य- मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा-12 आयोग के कार्य निर्धारित करती है जिसमें सम्मिलित हैं-

1. स्वप्रेरणा से अथवा पीड़ित के आवेदन पर या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा दी गई याचिका पर मानवाधिकार के उल्लंघन होने पर जाँच तथा कार्यवाही करना।
2. न्यायालय के अनुमोदन के पश्चात मानवाधिकार हनन के किसी मामले पर हस्तक्षेप करना।
3. पूर्व सूचना देकर सरकार द्वारा संचालित अथवा नियंत्रित किसी कारागार, चिकित्सालय, सुधार गृह या सार्वजनिक प्रकृति के आवास गृहों में लोगों के रहन-सहन के स्तर का निरीक्षण करना।
4. अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार लिखतों का अध्ययन करना तथा उनके क्रियान्वयन हेतु सिफारिश करना।
5. मानव अधिकार के क्षेत्र में शोध करना तथा शोध को बढ़ावा देना।
6. मानव अधिकार साक्षरता का प्रचार-प्रसार करना, सम्प्रेषण करना, मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं तथा संगठनों को सहयोग प्रदान करना।

शिकायत की प्रक्रिया- मानवाधिकार आयोग में शिकायत करने या याचिका लगाने की कोई विशेष विधिक प्रक्रिया नहीं है। इसके लिए पीड़ित स्वयं, उसका कोई प्रतिनिधि या संगठन सादे कागज पर आवेदन पर दे सकता है। इसके लिए अधिवक्ता की आवश्यकता नहीं होती। प्रमाण अवश्य होना चाहिए। आयोग को शिकायत फैक्स, पत्र द्वारा या व्यक्तिगत रूप में जाकर दर्ज कराई जा सकती है।

राज्य तथा जिला मानव अधिकार आयोग- राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की तर्ज पर ही राज्य मानव अधिकार की स्थापना राज्य सरकार द्वारा की जाती है। किसी उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायधीश को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया जाता है। राज्यपाल द्वारा इसकी नियुक्ति की जाती है। इसके कार्य भी वही हैं जो राष्ट्रीय आयोग के हैं। इसके अतिरिक्त अधिनियम की धारा-30 जिला स्तर पर मानव अधिकार न्यायालय की स्थापना का प्रावधान करती है। लेकिन जिला स्तर पर अभी तक किसी स्वतंत्र जिला मानव अधिकार न्यायालय की स्थापना प्रकाश में नहीं आई है। इसी कारण मानवाधिकारों का संरक्षण स्थानीय स्तर पर अभी तक उपेक्षित ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. जैन, डॉ.पुखराज राजनीति विज्ञान, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, प्रथम संस्करण-2009,
2. भारतीय संविधान की उद्देशिका का सार
3. गोलकनाथ बनाम स्टेट ऑफ पंजाब, (ए.आई.आर.1967 एस.सी.1643)
4. बावेल डॉ. बसन्तीलाल, भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन,इलाहाबाद, 7 वा संस्करण, 2005
5. पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट बनाम भारत संघ, ए.आई.. आर.,1982, एस, सी. 1473
6. मोतीलाल बनाम उत्तरप्रदेश राज्य. आई. एल. आर. 1967, एस .सी. 1643
7. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993, अनुच्छेद (2)घ
8. रोमेश थापर बनाम स्टेट ऑफ मद्रास ए .आई.आर., 1950, एस.सी. 124.
9. भारत का संविधान, अनुच्छेद 352, 358 तथा 368 के आशय अनुसार
10. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993, धारा 12
11. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम-1993, धारा 30
12. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, ए.आई.आर., 1978, एस.सी. 597

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

स्वतंत्रता संग्राम में बालाघाट जिले की भूमिका

• आशा गोहे

सारांश - भारत के मध्यप्रदेश जिले में स्थित बालाघाट जिले का अपना एक प्राचीन गौरवशाली इतिहास रहा है एक और इस जिले में गुप्तकालीन, कलचुरी कालीन गोड़कालीन प्रतिमाएं मिलती है, जो पुरातात्विक दृष्टिकोण से अत्यंत ही महत्पूर्ण है व अनेकों ऐतिहासिक स्थल देखने को मिलते है। वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रता की अलख जगाने के लिए 1920 से लेकर 1942 तक के आंदोलन में भी जिले के सैकड़ों रणबांकुरों ने हिस्सा लिया था झण्डा सत्याग्रह हो या सविनय अवज्ञा आंदोलन या भारत छोड़ो आंदोलन इस जिले से हजारों सत्याग्रहियों ने भाग लिया था साथ ही महात्मा गांधीजी की 1933 की बालाघाट यात्रा भी अत्यंत ही ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण है, प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन में बालाघाट जिले की भूमिका को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द - पुरातात्विक, सत्याग्रह, इतिहास

प्रस्तावना - भारत के ह्रदय स्थल मध्यप्रदेश में स्थित बालाघाट जिले का गौरवमय प्राचीन इतिहास रहा है तथा एक और यहाँ प्रागैतिहासिक काल से अंग्रेजों के शासनकाल तक के अत्यंत प्राचीन अवशेष मिले है वही राष्ट्रीय आंदोलन में भी बालाघाट जिले के रणबांकुरों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

सन् 1920 के नागपुर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें प्रांतों की पुर्नरचना के लिए भाषा के आधार को अंगीकार किया गया। तदानुसार प्रांतीय कांग्रेस समीतियों की रचना के परिणाम स्वरूप मध्यप्रदेश कांग्रेस संगठन तीन समीतियों में विभक्त किया गया। बरार के लिए विदर्भ प्रांतीय समीति हिन्दी भाषी म.प्र. के लिए महाकौशल प्रांतीय समीति और मराठी भाषी मध्यप्रांत के लिये नागपुर प्रांतीय कांग्रेस समीति गठित की गई। सन् 1930 की रायपुर राजनीतिक परिषद् में पं.डी.पी. मिश्रा के प्रस्तावनुसार मध्यप्रांत के हिन्दी भाषी क्षेत्र को 'महाकौशल' नाम दिया गया। महाकौशल में सागर, दमोह, जबलपुर, नरसिंहपुर, होशंगाबाद, खण्डवा, बैतूल, छिंदवाड़ा, सिवनी, मण्डला, बालाघाट, सरगुजा, बिलासपुर, रायगढ़, दुर्ग, रायपुर, बस्तर आदि जिले आते थे। इन्हीं जिलों में मध्यप्रदेश का बालाघाट जिला आता है।

पुष्य सलिला वैनगंगा नदी के पावन तट पर बसा हुआ बालाघाट सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। सतपुडा पर्वत श्रृंखला में वैनगंगा घाटी का यह भू-भाग मध्यप्रदेश के मानचित्र में 21 प्रतिशत 19 व 22 प्रतिशत 24 उत्तर अक्षांश तथा 71^{0}39 पूर्व देशांश में उड़ते हुए सुनहरे पक्षी के समान सा आकार लिए बालाघाट के नाम से जाना जाता है। यह जिला सर -सरिताओं से परिपूर्ण वन एवं खनिज संपदाओं से सम्पन्न, आर्य अनार्य जातियों से समृद्ध तथा सांस्कृतिक धरोहरों से रत्न मंडित हैं जिले में गुप्तकालीन, कलचुरी कालीन गोड़कालीन प्रतिमाएं है। शेष जो 15वीं, 16वीं, 17वीं, 18वीं शताब्दी की है और पुरातात्विक दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण है। बालाघाट जिला प्राचीनकाल में छँठवीं शताब्दी में चेदि जनपद के अंतर्गत रहा और वहीं से सभ्यता और संस्कृति के विकास की धारा से

• सहा. प्राध्यापक इतिहास शास.जटा.त्रिवेदी स्ना.महा. बालाघाट

अबाधगति से चलता रहा पूर्व मध्यकाल में चंदेल एवं कलचुरियों का यहां शासन रहा है ये राजवंश अपनी लोकप्रियता के लिए प्रसिद्ध माने जाते है। यहां जैन एवं शैवकालीन संस्कृति के भी दर्शन होते है। बालाघाट में तथा इस जिले की तहसीलों में अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल देखने को मिलते है।[1]

वहीं दूसरी तरफ स्वतंत्रता की अलख जगाने के लिए 1920 से लेकर 1942 तक आंदोलन मे जिले के सैकड़ों रणबांकुरों ने हिस्सा लिया था और जेल भी गये थे। आंदोलन के दौरान अंग्रेजों के सामने सभी सीना तान कर खड़े हो गये थे और अंग्रेजों भारत छोड़ो के नारे लगाए, रणबांकुरों में सिर्फ देश को आजाद कराने का ही जुनून था, जिले के वारासिवनी क्षेत्र निवासी नत्थूजी वल्द नाथाजी मनगढे ने 1942 के भारत छोडो आंदोलन में हिस्सा लिया था और वे गिरफ्तार हुये थे, उन्हें दो साल की सजा हुई। 9 माह भण्डारा जेल में तथा 15 माह रायपुर जेले में रहे, जेल यात्रा के कारण उनकी खेती-बाड़ी एवं रोजगार को गहरी क्षति हुई थी, इसी प्रकार जागों वल्द गनपत खटीक को चार दिन बालाघाट जेल मे तथा साढे आठ माह जबलपुर जेल रहना पड़ा। आंदोलन में शामिल योद्धाओं में प्रमुख रूप से बालाघाट से चिंतामनराव केलकर, करायत हुसैन, बद्रीनारायण अग्रवाल, स्वामी नित्यानंद, अब्दुल सत्तार मियां, अमीर मन्नू खां, शेख करीम, शेख फरीद, सगमन नैरकर, विक्टर, लल्लूभाई सुनार, मोहनलाल गणेश फूलसूंघे, रामचंद विठ्ठल, इंदा पवार, कन्हैयालाल खरे, शंकरलाल तिवारी, धनराज, संतराम पंजाबी, दुर्गाप्रसाद दीक्षित, ठाकुर फतेसिंह, गिरवर सिंह, जुगल किशोर, विश्वेश्वर प्रसाद शुक्ला, अनंतराम, पन्नालाल शुक्ला, श्रीमती गंगाबाई चौबे, गोकुल सिंह बैस, श्यामलाल जैन, अमीरचंद जैन, हरिशंकर अग्रवाल, राधेलाल ढीमर, मोहन पंडा पाथरवाडा बालाघाट, हट्टा से पीताम्बर प्रसाद वैश्य, पूनमचंद लखेरा, लॉजी पालडोंगरी से भवानीप्रसाद पटैल, ,मोहरा से दौलतराम, वारासिवनी नगपुरा से प्रेमलाल हरचंद गढेवाल, किसन लोधी, सुब्याजी, सालिकराम लोधी, कनकी से किशन दौलत कलार, खोंगाटोला से भंडारी चमरा लोधी समेत जिले के तहसील एवं ग्रामीण अंचलों से सैकडों की तादाद में रणबांकुरों ने हिस्सा लिया था, जिनके शौर्य को जिले की जनता नमन करती हैं।[2]

बालाघाट जिला इस बात पर गौरव करता है कि उसने देश के लिए बलिदान होने वाले वीरों को जन्म दिया, अपनी गोद में खिलाया और मातृभूमि के लिए त्याग करने के अवसरों पर उन्हें वतन पर भेंट भी कर दिया। स्वतंत्रता की जंग में शामिल रहे आजादी के दीवानों के परिजनों से मिली जानकारी के अनुसार वर्ष 1923 में नागपुर के सिविल लाइन्स में तिरंगा झंडा लेकर घूमना जुर्म करार दिया गया । इस रूकावट ने तत्कालीन मध्यप्रदेश और बरार मे एक राष्ट्रीय आंदोलन का रूप धारण कर लिया और 1923 का आंदोलन झंडा सत्याग्रह के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

जानकारी के अनुसार 1 सितम्बर 1930 बालाघाट के इतिहास के लिए सबसे शानदार तिथि है उस दिन हजारों सत्याग्रहियों का एक विशाल जुलूस गांधी चौक बालाघाट से रवाना हुआ इस जुलूस में अंदाजन बीस हजार से भी ज्यादा लोगों की मौजूदगी होना कहा गया है, बालाघाट, वारासिवनी, कटंगी, लालबर्रा, बैहर, लॉजी से करीब हजारों स्वयंसेवक कतारों मे प्रदर्शन में शामिल थे। स्वयंसेवकों की डण्डो से पिटाई भी हुई सैकडों लोग गिरफ्तार हुए और जेल गए यह सत्याग्रह लगभग 5 महीने चला, बालाघाट जिले की वारासिवनी तहसील में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास अमर है। वारासिवनी में 20 अगस्त

1942 की घटना है, आज भी उसे याद करके रोंगेटे खडे हो जाते है। उस दिन खुशालचंद जैन और रोशनलाल ने गांधी चौक से जुलुस निकाला था। शुरू में जुलुस में 20-25 ही व्यक्ति थे, जुलूस को सर्किल इंस्पेक्टर ने महावीर चौक में रोका और आगे बढ़ने से मना कर दिया और लाठी चार्ज कर दिया गया और फायरिंग शुरू हो गई इस दौरान ही दशाराम फुलमारी डाखिया पर गोली चला दी गई और दशाराम इस आंदोलन में शहीद हो गया। वारासिवनी में तब से इस चौक का नाम शहीद गोलीबारी चौक है। जहां स्वतंत्रता के दीवाने अमर शहीद दशाराम फुलमारी डाखिया की प्रतिमा स्थापित की गई है। हर वर्ष राष्ट्रीय पर्व एवं अन्य अवसरों पर शहीद दशराम की शहादत को नमन किया जाता हैं जिले के वारासिवनी क्षेत्र में ऐसे कई अनमोल रत्न हुए जिन्होने देश की आजादी में अपना सर्वस्व न्योछावर तक कर दिया। देश को आजादी दिलाने में बालाघाट जिले के रणबांकुरों ने अहम भूमिका निभाई थी, देश को आजाद कराने के लिए सर्वस्व अपने प्राणों की आहुति देकर शहीद हो गये। अंग्रेजी हुकुमत से देश को 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली थी, आखिरी लड़ाई अंग्रेजों से भारत छोंडो व असहयोग आंदोलन के रूप में हुई थी, लेकिन जिले में इस आंदोलन के काफी पहले ही स्वराज की ज्वाला जल गई थी स्वाधीनता के आंदोलन में जिले का नाम आज भी अमर इतिहास है।[3]

आजादी के दीवानों एवं स्वतंत्रता की जंग में अपनी अहम भूमिका निभाने वाले स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के परिजनों से मिली जानकारी के अनुसार 28 नवम्बर सन् 1933 में महात्मा गांधी बालाघाट जिले मे ंपधारे थे, गांधीजी 28 नवम्बर 1933 को रायपुर से रेल द्वारा गोंदिया पहुंचे थे। बालाघाट प्रवास के दौरान उन्होने बालाघाट में अनुसूचित जाति सुमदाय के मोहल्ले का निरीक्षण किया था और महिलाओं की सभा को संबोधित किया था इसमें गांधीजी ने अस्पृश्यता को समाज का कलंक बताते हुये लोगों से आव्हान किया था कि वे इसका परित्याग करें। अन्य स्थानों की तरह बालाघाट शहर और इसके आसपास के गांवों में उनके स्वागत के लिए एक बड़ी भीड एकत्र हुई बालाघाट पहुंचने पर गांधीजी पहले अनुसूचित वार्ड गए थे। इसके बाद उन्होने महिलाओं की सभा को संबोंधित किया था जो सात घंटे से अधिक समय तक गांधीजी को देखने और सुनने के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रही थी बैठक में अनुसूचित जातियों के कल्याण के लिए एक निधि भी एकत्र की गई थी।

बालाघाट की महिलाओं में प्रमुख महिला श्रीमती गंगाबाई चौबे रही, इनका जन्म 1901 में धामनागांव में हुआ और अल्पायु में ही इनका विवाह श्री बालाराम से हुआ था और 1921 से ही इन्होने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना प्रारंभ कर दिया था अपने अप्रतिम शौर्य और साहस के बल पर ही इन्होने जंगल सत्याग्रह तथा 1930 में नागपुर में एक आम सभा की अध्यक्षता की और बंदी बना ली गई, जिसके कारण इन्हें 6 माह का कारावास भोगना पडा इन्होने 1932 के आंदोलन में भी भाग लिया और 9 माह का कारावास और 100रू. अर्थदण्ड भोगा और यह साबित कर दिया कि महिला शक्ति किसी भी कष्ट को सहन कर सकती है किंतु अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए सतत् युद्धरत रहेगी। महात्मा गांधीजी की बालाघाट यात्रा की एक दिलचस्प विशेषता यह थी कि समय की कमी के कारण गांधीजी बालाघाट से सीधे सिवनी पहुँचना चाहते थे और लॉजी के लक्ष्मण पटेल ने गांधीजी से लॉजी आने का अनुरोध किया था लेकिन समय के अभाव के कारण गांधीजी को मुश्किल लगा और उन्होने मना कर दिया इस पर लक्ष्मण पटेल ने भूख हडताल कर दी और गांधीजी को उनकी इच्छाओं

का सम्मान करते हुये लॉजी जाना पडा था, गांधीजी के लांजी पहुंचने पर ही लक्ष्मण पटेल ने उपवास तोडा था, वे लांजी और किरनापुर तहसीलों में भी गये जहां बड़ी संख्या में लोगों ने आत्मीय स्वागत किया। गांधीजी की दान झोली गरीब-अमीर, किसी के सामने से खाली नही गई बालाघाट में वे स्व. श्री नारायण केलकर के निवास पर ठहरे थे। उनकी व्यवस्था नगर के युवकों द्वारा की जाती थी, बालाघाट के इतवारी गंज में महात्मा गांधी ने आमसभा को संबोधित किया तथा नगर के हरिजनों व भंगियों को भी भेंट दी।[4]

सन् 1925 में जब महात्मा गांधी ने अखिल भारतीय स्तर पर चरखा संघ की स्थापना की बालाघाट नगर की संभ्रात महिलाओं में भी चरखों का प्रचार हुआ तथा देहातों में भी प्रचलन हुआ। सन् 1926 में श्रद्धानंदजी के बलिदान पर इस जिले में जगह-जगह आम सभायें हुई तथा हड़तालें हुई। इसी तरह 1926 में बारदोली सत्याग्रह की गूंज इस जिले के देहात में फैली आज भी इस जिले का देहाती समाज बारदोली सत्याग्रह से परिचित है। 1930 में बालाघाट जिले ने जंगल सत्याग्रह प्रारंभ किया। जबकि महात्मा गांधीजी ने नमक कानून तोडने के लिए दांडी यात्रा की इस जिले ने नमक सत्याग्रह को जंगल सत्याग्रह के रूप में ग्रहण किया तथा 25 जनवरी 1931 को जब गांधीजी की जेल से रिहाई हुई देश के समस्त सत्याग्राहियों की भी सामूहिक रिहाई हुई उसी साल 6 फरवरी को स्व. मोतीलाल नेहरू का देहावसान हुआ तब उन्हें बालाघाट जिले ने आम सभाओं तथा आम हड़ताल के द्वारा अपनी श्रद्धांजली अर्पित की थी। 24 मार्च 1931 को भगतसिंह को फांसी हुई उनकी शहादत से देश के युवा वर्ग में गहरा दुख व रोष पैदा हुआ बालाघाट के उच्च कक्षा के छात्रों ने विद्यार्थी संघ का निर्माण किया तथा विद्यार्थियों के बीच भी राजनैतिक अधिकारों की चर्चा होने लगी 25 मार्च 1931 को शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी के बलिदान अवसर पर बालाघाट के विद्यार्थी संघ ने छात्र सभा का आयोजन कर अपना क्षोम एवं दुख व्यक्त किया।

गर्वमेंट हाईस्कूल बालाघाट के छात्रों ने अपनी शाला पर तिरंगा झण्डा फहराने का दुःसाहस किया शाला लगभग 1 माह बंद रखी गई, 1933 में महात्मा गांधी के इस जिले में आगमन से गरीब तबके के तथा मध्यमवर्गीय लोगों में देशभक्ति और त्याग की भावना का संचार किया। 1933 के बाद जब आंदोलन की हवा बही सैकड़ों लोग मैदान में कूद पडें सन् 1934 में बिहार भूकंप के कारण महात्मा गांधी ने सारे देश की जनता से सहायता की अपील की इस जिले ने यथासंभव योगदान किया। सन् 1935 में कांग्रेस ने 50वीं वर्षगांठ मनाई तब बालाघाट में भी पूरे धूमधाम से मनाई गई। सन् 1939 में जबलपुर के पास त्रिपुरा में कांग्रेस का महान ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ इस अधिवेशन में बालाघाट जिले के हजारों व्यक्तियों ने हिस्सा लिया था। 11 अक्टूबर 1940 को कांग्रेस कार्यसमीति ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ करने का निश्चय किया। फलस्वरूप महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन चलाया, व्यक्तिगत सत्याग्रह का प्रभाव महाकौशल पर भी पड़ा, जब नरसिंहपुर में 1940-41 में व्यक्तिगत सत्याग्रह चल रहा था, तो बालाघाट जिले के सत्याग्रही पैदल ही रवाना हुये, नरसिंहपुर चांवरपाठा तक गये, वहां गिरफ्तार करके एक सप्ताह बाद उन्हें छोड़ा गया। इस प्रकार 1942 के भारत छोडो आंदोलन का विलक्षण प्रादुर्भाव बालाघाट जिले में भी हुआ। बालाघाट में कांग्रेस के सभी कार्यालय बंद कर दिये, शहर के हाईस्कूल के पुस्तकालय तथा ऑफिस के शीशे तोड दिये गए, इसका सर्वाधिक उग्र रूप वारासिवनी में देखने को मिला।

सन् 1920 मे बालाघाट जिले की जनता में आजादी के नारे को बुलंद करने और राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य से सेठ, जमनालाल बजाज, देवदास गांधी, चक्रवती राजगोपालाचारी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने अपने उद्बोधनों द्वारा जनता को आंदोलन में भाग लेने के लिए अपील की। महाकौशल में 1930 के आंदोलन में जेल जाने वाले युवा वर्ग में बालाघाट के 150 लोग शामिल हुये । 11 अक्टूबर 1940 को कांग्रेस कार्यसमिति ने व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन प्रारंभ करने का निश्चय किया। फलस्वरूप गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाया, इसका प्रभाव महाकौशल पर भी पड़ा, बालाघाट और वारासिवनी भी उच्च कक्षाओं के विद्यार्थी राष्ट्रीय युवक संघ के माध्यम से सत्याग्रहियों की सहायता कर रहे। इसी अभियान के दौरान बालाघाट हाईस्कूल में कलेक्टर के कांग्रेसी आंदोलन की निंदा करने पर छात्रों में उत्तेजना फैल गई और उन्होने जमकर विरोध करके सभा भंग करवा दी। दूसरे दिन प्रार्थना के समय ''झंडा ऊँचा रहे हमारा'' तथा ''वंदेमातरम्'' गीत गाने पर कुछ छात्रों को गिरफ्तार कर लिया गया। अतः शासन के इस दमन का प्रतिकार छात्रों ने आम हड़ताल करके किया। जानकारी के अनुसार 1930 में बालाघाट जिले ने जंगल सत्याग्रह प्रारंभ किया था जबकि महात्मा गांधी ने नमक कानून तोड़ने के लिए दांडी यात्रा की। इस जिले ने नमक सत्याग्रह को जंगल सत्याग्रह के रूप में ग्रहण किया तथा 25 जनवरी 1931 को जब गांधीजी की जेल से रिहाई हुइ देश के समस्त सत्याग्रहियों की भी सामूहिक रिहाई हुई।[5]

बालाघाट जिले के शहर बालाघाट, वारासिवनी, कटंगी, तिरोड़ी, कनकी, वरूड, उमरी, मिरगपुर, मंडीवाडा, नारवान्जार, धानीटोला, कटंगझरी, गुनई, हट्टा, टेमनी, खुरसोडी, सालई, जाम, लवादा, खोंगाटोला, खैरलॉजी, सरेखा, बालाघाट, नगपुरा, नंदौरा, सालेबर्डी, पांडरपानी, धारावासी, औलियाकन्हार, अमोली, लालबर्रा, बल्हारपुर, देवरी, खारी, खिर्री, मुरझड़, मोहझरी, बिरसोला, सिहारटोला, डोंगरगांव, अतरी, आरंभा, मंगेझरी, भंडाबोडी, कायदी, डोंगरमाली, महाराजपुर, बोदलकसा, बकेरा, पालडोंगरी, लॉजी, कुम्हारी, पाथरगांव, दीनी, नांदगांव, पाथरवाडा, मेहंदीवाडा, जागपुर, बिठली, बैहर, बांदरी, रामपायली, गर्रा, बेनी, सेलवटपार, टुईयापार, बासीदेवरी समेत अन्य गांवों के रणबांकुरों ने स्वतंत्रता संग्राम में प्रतिनिधित्व किया था।[6]

स्वतंत्रता संग्राम में देश को आजादी दिलाने मे बालाघाट के इन रणबांकुरों के शहादत की अमरगाथा आज भी जिले में बने स्मारकों में जीवंत है, आजादी के परवानों ने अंग्रेजी हुकुमत को लोहे के चने चबाकर देश को आजाद कराने में अपने प्राणों की आहुति तक दे दी थी। गांव, गलियों से फूटी चिंगारी ने ऐसा सैलाब लाया कि देश आजाद हो गया। कई सेनानियों ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। अपने प्राणों की आहुति दे दी। बालाघाट शहर के अलावा जिले में बने शहीद स्मारक उनके शौर्य की अमर गाथा का बखान करती है। बालाघाट जिले जनता गांव-गांव में उनके शौर्य को नमन करती है।[7]

निष्कर्ष- इस प्रकार महाकौशल का क्षेत्र राजनीतिक जागरूकता और स्वातंत्र्य आंदोलन का केन्द्र रहा राष्ट्रीय आंदोलन को सशक्त नेतृत्व प्रदान करने में महाकौशल क्षेत्र अग्रणी रहा है। असहयोग आंदोलन, झण्डा सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन, जंगल सत्याग्रह, भारत छोडो आंदोलन सभी में महाकौशल के बड़ी संख्या में स्वतंत्रता सेनानिओं ने भाग लिया जिसमें बालाघाट के सत्याग्रही भी शामिल रहते थे, इस प्रकार स्पष्ट होता है स्वतंत्रता

आंदोलन में बालाघाट जिले के स्वतंत्रता सेनानियोंकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।[8]

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. कापशीकर डॉ. सूर्यकांत, महात्मा गांधी जीवन, कार्य एवं विचार, कापशीकर प्रकाशन नागपुर संस्करण 30 जनवरी 2020 पृ. 124 से 128.
2. दैनिक भास्कर समाचार पत्र दिनांक 14 अगस्त 2020.
3. दैनिक भास्कर समाचार पत्र 11 अगस्त 2020.
4. पुरातत्व संग्रहालय बालाघाट से प्राप्त पत्र।
5. गुरू शंभुदयाल, मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन 1857-1950, प्रकाशन मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी संस्करण 2008 पृ. 171 से 173.
6. दैनिक भास्कर समाचार पत्र 12 अगस्त 2020.
7. दैनिक भास्कर समाचार पत्र 13 अगस्त 2020.
8. गुरू शंभुदयाल, मध्यप्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन 1857-1950.
प्रकाशन मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी संस्करण 2008. पृ. 188-189.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

भारत में कोविड 19 की लड़ाई में नगरीकरण की चुनौती

• कुमुद श्रीवास्तव

सारांश- कोरोना काल में दुनिया भर की अर्थव्यवस्था को पटरी सेउतार दिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सबसे बड़ी वैश्विक आर्थिक अस्थिरता की स्थिति है। साथ ही निम्न आर्य वर्ग वाले करोड़ों लोगों के भूखों मरने जैसी नौबत आ सकती है की संभावना व्यक्त की गई थी। विश्व अर्थव्यवस्था को कोरोना से झटका तो लगा दुनिया के कुछ हिस्सों में आर्थिक स्तर बुरी पूरी तरह से गिर सकता है। जिसे टालना करीब-करीब नामुमकिन है। निःसंदेह वैश्विक स्तर पर होने वाले नुकसान, अर्थव्यवस्था को प्रभावित अवश्य करता है लेकिन लंबे समय तक नहीं। महामारी के आर्थिक परिवेश बदलता है लेकिन इसके परिणाम नकारात्मक ही हो, यह जरूरी नहीं। उद्योगों और कृषि को आसानी से मजदूर काम करने हेतु मिलने लगे तो स्थितियों में परिवर्तन होता है। भारत में विश्व के सामने प्रवासी पलायन जैसे समस्याओं से सामना करते हुये एक ऐसे वातावरण का निर्माण किया है जिससे प्रवासी श्रमिक पुनः अपने कार्यस्थल पर लौट सकें, जिससे देश के उत्पादन के स्तर को बनाया जा सके तथा श्रमिकों को रोजगार देकर मांग को बढ़ाया जा सके जो वर्तमान की आवश्यकता है। लेकिन कोविड 19 प्रवासी पलायन के स्थायी हल को ढूंढने के लिए भी हमें प्रेरित करता है कि भविष्य में पुनः इस तरह की महामारी से पलायन से जो असुरक्षा नगरों में देखने को मिली वह स्थिति भविष्य में उत्पन्न न होनी पाये। इस समस्या के निवारण हेतु सुझाव इस लेख में प्रस्तुत हैं।

मुख्य शब्द- कोरोना काल की मुख्य चुनौती, भारतीय जनगणना का परिमाणात्मक पहलू, नगरीकरण असुरक्षा

प्रस्तावना - भारत में कोरोना की वजह से जो देश में दृश्य उपस्थित हुआ रहा है। वह हम भारतीयों को बहुत से विषयों का विश्लेषण करने को प्रोत्साहित करता है। हाल के दशकों में बहुत हद तक दुनिया विश्वग्राम के रूप में विकसित हुई है। विभिन्न देश और समाज आपस में संचार, जन माध्यम, परिवहन और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों एवं संस्थाओं के माध्यम से जुड़े हुए है। ऐसे वातावरण में भारत की आर्थिक गतिविधियां विश्व की गतिशीलता को बढ़ाती है। साथ ही हमारी अर्थव्यवस्था भी सुदूर घट रही घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। अतः हमारी आर्थिक नीति भी विश्व की आर्थिक प्रणाली से जुड़ती ही है। इसी तरह भारतीय राज्यों का विकास केन्द्र के उपांगों से शुरू होकर राष्ट्रीय विकास के वास्तविक चालकों के रूप में हुआ देश का विकास ही राज्यों का राष्ट्रीय लक्ष्य होगा, तभी राज्यों के साथ-साथ देश की प्रगति होगी। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के अनुसार जहां भारत की रणनीतियां वैश्विक अनुभवों तथा राष्ट्रीय सहक्रिया से उपजे और विकसित हो, वहीं वे स्थानीय जरूरतों एवं अवसरों के अनुरूप हो, इस पर भी नजर बनाकर रखना होगा।

शोध के प्रमुख उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य है-

(1) महामारी जैसी आपदाओं से निपटने के लिए पूर्व योजना बनाये में सहायता करना।
(2) नगरीकरण के कारण को ज्ञात करके दूर करना।
(3) नगरीकरण के पश्चात नगरों में लोगों को सुरक्षा प्रदान करने के उपाय ज्ञात करना।
(4) रोजगार के स्त्रोतों को ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कराने के तरीकों पर ज्ञात करना।

• प्राध्यापक, शासकीय तिलक महाविद्यालय,कटनी म.प्र.

शोध विधि- प्रस्तुत शोध पत्र हेतु अध्ययन क्षेत्र भारत देश लिया है, अध्ययन को अवधि मार्च 2020 से लेकर वर्तमान समय तक की अवधि ली है। अध्ययन क्षेत्र के अध्ययन हेतु द्वितीयक समंकों का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक समंकों के अंतर्गत प्रकाशित स्त्रोतों का प्रयोग किया है। प्रकाशित स्त्रोतों के साथ-साथ इंटरनेट,मीडिया,समाचार चैनल का भी प्रयोग किया गया है। तथ्यों का वर्गीकरण उपस्थित समस्याओं के आधार पर विश्लेषण कर निष्कर्ष प्राप्त किया गया है।

वर्ष 2020 की शुरूआत में कोरोना की महामारी ने दस्तक दी। मार्च 2020 में पूरा देश लॉकडाउन में थम गया। जानलेवा बीमारी एवं रोजी-रोटी का संकट उत्पन्न हो गया। भारत, पाकिस्तान विभाजन के बाद सबसे बड़ा पलायन, प्रवासियों में असुरक्षा की भावना आ गई थी। राहत के लिए सरकार के द्वारा कई प्रयास किये गये। अभी कोविड 19 समाप्त नहीं हुआ है लेकिन देशवासियों एवं सरकार के प्रयास स्वास्थ्य सुविधाओं में विस्तार से हम इस बीमारी से उपजे डर को नियंत्रित कर लिया गया है। अधिकांश प्रवासी पुनः अपने कार्यस्थल पर पहुंच गये हैं। लेकिन कोरोना की वजह से उपजी चुनौतियों ने अगले वर्षो के लिए आधारतय कर लिया है, चुनौतियां बहुत हैं-

- संक्रमण को पूरी तरह रोकना
- बेरोजगारी
- जीडीपी निगेटिव
- प्रवासी पलायन का स्थायी हल

देश में संक्रमण नवंबर 2020 में भी है। लॉकडाउन कुछ जगहों को छोड़कर भारत सरकार के द्वारा राज्य सरकारों की सहमति से हटा दिया है। लेकिन जनसंख्या के अनुपात से चिकित्सा सुविधाओं की भारी कमी है। लॉकडाउन की वजह से उद्योगों में कर्मचारियों की छटनी से बेरोजगारी बढ़ी है। शहरी बेरोजगार बढ़ गये हैं। देश की श्रम भागीदारी में भी गिरावट आयी है। लॉकडाउन के कारण सकल घरेलू उत्पाद जी.डी.पी. नकारात्मक हुई है। वित्त मंत्री की घोषणा के बाद सुधार तुरंत नहीं देखने को मिले। अर्थव्यवस्था में तेजी से प्रयास किये जा रहे हैं।

हम भारतीय हमारे देश और राज्य तथा स्थानीय निकायों की सरकारें जब कोरोना जैसी महामारी से लड़ रही है तो ऐसे में देश के सामने मुख्य रूप से दो चुनौतियां आकर खड़ी हो जाती है।

प्रथम तो ग्रामीण क्षेत्र से शहरों की ओर नगरीकरण द्वितीय देश में विद्यमान निर्धन वर्ग को भोजन उपलब्ध कराना। दोनो ही चुनौती की स्थिति, समस्या एवं आवश्यक समाधान रखने का प्रयास किया जिससें आने वाले समय इस चुनौतियों को अवसर में बदला जा सके। भारतीय जनसंख्या का विश्लेषण प्रमुख रूप से दो पहले में बांटकर कर सकते हैं।

(1) परिमाणात्मक पहलू

(2) गुणात्मक पहलू

प्रथम पहलू के अंतर्गत जनसंख्या का आकार, वृद्धिदर जनसंख्या की संरचना (लिंग मूलक संरचना, आयु संरचना), एवं जनसंख्या का घनत्व एवं नगरीकरण का विश्लेषण किया जा सकता है तथा द्वितीय पहलू के अंतर्गत साक्षरता का स्तर तथा प्रत्याशित

आय द्वारा विवेचना की जा सकती है।

प्रस्तुत लेख में मैंने प्रथम पहलू के अंतर्गत आने वाले बिंदु भारत में नगरीकरण का विश्लेषण किया है। जो वर्तमान में प्रासंगिक है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में जनसंख्या के प्रवसन से ही नगरीकरण का विकास होता है। भारत की जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। सन 1991 में देश की 25.72: जनसंख्या शहरों में रहती थी। सन 2011 में यह प्रतिशत बढ़कर 31.16: हो गया। भारत में 1991 में भारत की शहरी जनसंख्या, कुल जनसंख्या के चौथाई भाग के लगभग थी जबकि सन 1921 में नौवां भाग तथा 1951 में छठवां भाग थी। सन 1921 से 2011 के मध्य कुल जनसंख्या में चार गुनी वृद्धि हुई वहीं शहरी जनसंख्या 10 गुना बढ़ी है। भारत में नगरीय जनसंख्या बढ़ी है फिर भी विदेशों की तुलना में कम है। जनगणना 2011 के अनुसार भारत की कुल 121 करोड़ जनसंख्या में 37.7 करोड़ शहरी क्षेत्रों में व शेष 83.3 करोड़ ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। इस प्रकार देश की कुल जनसंख्या में शहरी जनसंख्या अब 31.16 प्रतिशत है, जबकि 68.84 प्रतिशत जनसंख्या ही अब गांवों में निवास करती है। 2001 से 2011 के बीच देश में शहरी जनसंख्या में जहां 9-10 करोड़ की वृद्धि हुई, वहीं ग्रामीण जनसंख्या में 9.05 करोड़ की वृद्धि हुई है।

देश में तमिलनाडु में सर्वाधिक 48.5 प्रतिशत जनसंख्या शहरी है, केरल में 47.72 प्रतिशत जनसंख्या, महाराष्ट्र में 45.25 प्रतिशत तथा गुजरात में 42.58 प्रतिशत शहरी है। शहरों में जनसंख्या वृद्धि गांवों से शहरों की ओर स्थानांतरित होना भी एक प्रमुख कारण है। ऐसे बहुत से कारण जिनकी वजह से गांवों के निवासी शहरों की ओर जाते हैं।

- भूमि पर जनसंख्या का बढ़ता दबाव
- ग्रामीण क्षेत्रों में वैकल्पिक रोजगार का अभाव
- शहरों में उद्योगों का विकास
- शहरों में रोजगार के अवसर
- शिक्षा,स्वास्थ्य व्यवस्था हेतु
- परिवहन के साधनों का विकास
- नगरीय जीवन का आकर्षण

विद्युत, पानी, सड़कें, रेल व संचार जैसी सुविधाएँ शहरों में पाये जाने की वजह से उद्योगों की स्थापना शहरों में की जाती है। अत: ग्रामीण रोजगार करने के लिए शहरों की ओर आने लगते हैं। जनसंख्या वृद्धि जैसे अनेक कारणों से भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध भूमि भार वहन करने में असमर्थ होने के कारण गांवों में अल्प बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी विद्यमान है। अत: लोग विवश होकर रोजगार हेतु शहरों की ओर जा रहे हैं। शहरों में संगठित क्षेत्रों में उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, सरकारी क्रिया, सेवाओं में रोजगार के पर्याप्त अवसर विद्यमान रहते हैं, अत: ग्रामीण क्षेत्रों से शहर की ओर ग्रामवासी आकर्षित होते हैं। व्यापार से अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से भी व्यापारी नगरीय क्षेत्रों में व्यापार प्रारंभ कर देते हैं। शहरों में आधुनिक सभ्य जीवन की सुविधाएँ उपलब्ध होती है। वर्ष 2015 में जारी सामाजिक आर्थिक व जातीय गणना आंकड़ों के अनुसार भारत में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों को मिलाकर परिवार की कुल संख्या 24.39 करोड़ बताई गई है जिसमें 17.19 करोड़ परिवार (39.39 प्रतिशत) एक्सक्लूजन वाले व 16.50 लाख 0.92 प्रतिशत परिवार ऑटोमैटिक इनक्लूजन

वाली श्रेणी के हैं। 8.69करोड़ परिवार वंचित सूची में रखे गये हैं। यह वह परिवार है जो 07 वंचित मानकों को पूरा करते हैं, इनमें 2.37 करोड़ परिवार (कुल ग्रामीण परिवारों का 13.25 प्रतिशत) ऐसे हैं जो एक या कम कमरे वाले कच्चे घरों (कच्ची दीवार या कच्ची छत) में निवास करते हैं। 65.15 लाख (कुल ग्रामीण परिवारों के 3.64 प्रतिशत) परिवारों में 18-59 वर्ष आयु वर्ग का कोई व्यस्क सदस्य नहीं है। 68.96लाख ग्रामीण परिवार (3.85 प्रतिशत) इस गणना में ऐसे पाये गये जिनमें महिला परिवार ही मुखिया है तथा 16-59 वर्ष आयु वर्ग का कोई पुरूष परिवारों में शारीरिक रूप से सशक्त कोई व्यस्क सदस्य नहीं है।

गणना के अनुसार शारीरिक श्रम ही ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका का मुख्य स्त्रोत है। कुल 17.91 करोड़ ग्रामीण परिवारों में 9.16 करोड़ परिवारों (51.14 प्रतिशत) में शारीरिक श्रम ही आय का स्त्रोत है और 5.39 करोड़ परिवार (30.10 प्रतिशत) कृषि पर निर्भर पाये गये हैं। 44.84 लाख परिवार (2.50 प्रतिशत) पार्टटाइम या फुलटाइम घरेलू नौकरी के द्वारा, 4.08 लाख परिवार (0.23 प्रतिशत) कूड़ा रद्दी बीनकर, 6.68 लाख परिवार (0.37 प्रतिशत) भीख/दान आदि के जरिये तथा 28.87 लाख ग्रामीण परिवार (1.61 प्रतिशत) गैर कृषिगत कारोबारों से जीवन निर्वाह कर रहे हैं। सरकारी, निजी व सार्वजनिक उपक्रमों में नौकरी को 2.50 करोड़ ग्रामीण परिवारों (14.01प्रतिशत) की आजीविका का माध्यम इस गणना द्वारा बताया गया। भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत सी सुविधाओं का विस्तार हुआ है लेकिन शहरी क्षेत्रों में सुविधाओं का विस्तार वृद्ध स्तर पर हुआ है। इस विस्तार की वजह से औद्योगिक इकाई की स्थापना शहरी क्षेत्रों में तुलनात्मक दृष्टि से ज्यादा हो रही है। कृषि क्षेत्रों में जनसंख्या बढ़ने से दबाव बढ़ा है। अतः ग्रामीण जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों को छोड़कर रोजगार हेतु शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करते हैं। यहां तक कई राज्यों में तो लोग केवल अपना गांव नहीं छोड़ते बल्कि वे लोग तो अपना जिला, संभाग एवं अपना राज्य छोड़कर भारत के किसी महानगर में रोजगार हेतु चले जाते हैं। किसी औद्योगिक इकाई, मिल, व्यापार से जुड़े किसी क्षेत्र या संस्था में कार्य करके अपना जीवन यापन करने लगते हैं। एक ओर तो गांवों को छोड़कर शहरी क्षेत्रों की ओर पलायन करने वाले ग्रामवासी मूलतः मूल निवासी तो ग्राम क्षेत्र के हैं तथा वे पलायन के बाद भी मूल निवासी ग्राम क्षेत्रों को बनाये रखना चाहते हैं। चाहे वे कितने ही वर्षो से वे शहरों में रह रहे हो। ऐसी स्थिति में पलायन करने वाले श्रमिक आधार कार्ड के आधार पर पंजीकृत तो ग्रामीण क्षेत्रों में रहते हैं। इसके साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों के ऐसे निवासी जो पलायन करके जा रहे हैं, वे मतदाता भी ग्रामीण क्षेत्रों में बने रहते हैं। इस स्थिति में शहरी क्षेत्रों में पलायन करके आने वाले ग्रामवासी अलग-थलग महसूस करते हैं क्योंकि कोई भी सरकार जब योजना बनाती है तो ये ग्रावासी पंजीकृत न होने की वजह से शहरी क्षेत्रवासी के दायरे में नहीं गिने जाते हैं क्योंकि राज्य सरकारों के द्वारा जो योजनाएँ बनायी जाती है उसका लाभ उठाने की प्रमुख शर्त उस राज्य का मूल निवासी होना आवश्यक है। इन शहरों में जब कोई समस्या पैदा होती है तो पलायन करके आने वाले ग्रामवासी असुरक्षा महसूस करते हैं जो वर्तमान में कोरोना महामारी के कारण बहुत से लोगों के द्वारा भारत के नगरों में महसूस की जा रही है। अतः शासन को रोजगार प्राप्ति के उद्देश्य से लंबे समय के लिए आने वाले ग्रामवासियों को उस दौरान शहरों में पंजीकृत कर सुरक्षा की भावना जागृत कर भरोसा दिलाया जाना चाहिये।

भारत की जनगणना 2011 के लिए सामाजिक, आर्थिक व जातीय आधार पर प्राप्त

आंकड़ों के आधार पर समस्या के समाधान किये जा सकते हैं -

जनसंख्या के बहुत से परिवार कच्ची छत या दीवार वाले घरों वाले घर में निवास करते हैं, हालाकि प्रधानमंत्री आवास योजना के अंतर्गत कई परिवारों के आवास निर्माण किये है। इन परिवारों को इनके क्षेत्रों में रोजगार प्रदान करने से आर्थिक दृष्टि से मजबूत होंगे।

कई परिवार ऐसे हैं जिनकी मुखिया महिला है, इन परिवारों के सदस्यों की शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्यान्न की व्यवस्था शासन के द्वारा किया जाना चाहिये जिससे ये परिवार आर्थिक दृष्टि से मजबूत बन सकें।

- वे परिवार जिनमें शारीरिक रूप से सशक्त कोई वयस्क नहीं है, ऐसे परिवारों से आश्रितों को खान-पान, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा का दायित्व शासन का होना चाहिए। जिससे भविष्य में अच्छे मानवीय साधन के रूप में विकसित हो सकें।
- भारत में जनसंख्या का बड़ा भाग शारीरिक श्रम करके अपना जीवन यापन करता है। ऐसे परिवारों के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास की व्यवस्था करने से ऐसे श्रमिकों की कार्यकुशलता में बढ़ोत्तरी करता है । जो राष्ट्रीय आय बढ़ाने में योगदान देता है।
- जनसंख्या का 60: से अधिक हिस्सा कृषि पर निर्भर रहता है। कृषि कार्य के बाद जब श्रमिक के पास रोजगार नहीं होता, ऐसे समय में ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि सामग्री पर आधारित उद्योग स्थापित करने चाहिए जिससे रोजगार की उपलब्धता रहे।
- कूड़ा-रद्दी बीनने तथा भीख मांगकर जीवन यापन करने वाले लोगों को रोजगार कार्य हेतु प्रेरित करके रोजगार देना शासन का प्रमुख कार्य होगा तभी ऐसे भारतवासी का विकास हो सकेगा।
- निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में कार्य करने वाले श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- गावो से लोग शहरों की ओर जाते हैं और जिन उद्योगों में काम करते हैं उन उद्योगों को अपने श्रमिकों को आवास की सुविधा की व्यवस्था दिया जाना चाहिये।
- रोजगार हेतु पलायन करने वाले श्रमिकों हेतु नगरों में कार्य करने के दौरान आधार कार्ड एवं राशन कार्ड से मिलने वाले लाभ की वैकल्पिक व्यवस्था की जानी चाहिए।
- पलायन करके नगरों की ओर रोजगार हेतु आने वाले श्रमिकों को विशेष पहचान हेतु विशेष कार्ड दिये जाने चाहिए।

ग्राम से नगर एवं आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों को उपरोक्त तरीके से सहायता प्रदान की जायेगी तो निश्चित ही ये परिवार देश में सुरक्षा महसूस करेंगे और अचानक आने वाली किसी भी परेशानी का साहस के साथ सामना कर सकेंगे तथा भारत के विकास में सहायक होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. आर्थिक समीक्षा, भारत सरकार 2015-16, 2016-17, 2017-18 ,2018-19, 2019-2020
2. दैनिक भास्कर माह मार्च 30.03.20 से 01 जुलाई 2020
3. दैनिक नई दुनिया माह 15 अप्रैल 2020 से 30 अगस्त 2020
4. दैनिक पत्रिका माह अप्रैल 01.04.20 से 3 अगस्त 2020

5. प्रतियोगिता दर्पण भारतीय अर्थव्यवस्था2019-20,2/11 स्वदेशी बीमा नगर आगरा, पृष्ठ क्र.- 98 99,100,101
6. सिन्हा व्ही.सी. भारतीय अर्थव्यवस्था एस.बी.पी.डी.आगरा पब्लिकेशन्स नवीन संस्करण पृष्ठ क्र.-54, 55

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

महिलाओं में स्वास्थ्य - शिक्षा सम्बन्धी जागरूकता

• विनोद शंकर सिंह
••सिद्धार्थ मिश्र

सारांश- स्वास्थ्य शिक्षा से आशय लोगों को स्वास्थ्य के बारे में जागरूक करना है। व्यक्तियों को यह समझाना कि उनके लिए क्या स्वास्थ्यप्रद है और क्या हानिप्रद है तथा वे स्वस्थ रहने के लिए किस प्रकार के उपाय करेंध समाजरूपी संरचना में नारी और पुरूश दो वर्ग है, जबकि भारतएक पुरूश प्रधान समाज है। यहां नारी हमेशा से ही उपेक्षा का शिकार रही है, खासतौर से अपने स्वास्थ्य के प्रति जब एक महिला स्वस्थ होती है तब वह प्रसन्न रहती है, वह अपने आप को सक्रिय, सृजनशील, समझदार और योग्य महसूस करती है। तथा वह अपने परिवार व समाज में योगदान करती है। महिलाओं का स्वास्थ्य एक सामाजिक मुद्दा है भारत मे हमेशा से नारी के प्रति भेदभाव किया जाता है यह भेदभाव लैगिंक असमानता, आर्थिक, सामाजिक स्थिति, शिक्षा, पोशण व स्वास्थ्य सम्बन्धी देखभाल जैसे पहलुओ में प्रकट होता है। नगरीय महिलाओं की अपेक्षा ग्रामीण महिलाओं कीं स्वास्थ्य स्थिति काफी चिंतनीय है क्योकि ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं मे शिक्षा का स्तर काफी निम्न है एवं जागरूकता की कमी है। राष्ट्रीय प्रगति के किसी भी क्षेत्र में स्वास्थ्य एक मूलभूत तत्व होता है। यह किसी भी देश की शक्ति और उत्पादक-क्षमता की नाप है। स्वास्थ्य क्षति का प्रभाव राष्ट्रीय उत्पादन और कार्यकुशलता दोनों पर पड़ता है। नारी और पुरुष एक ही गाड़ी के दो पहिये है जब ये दोनो स्वस्थ होंगे तभी देश प्रगति की ओर अग्रसर होगा।

मुख्य शब्द- **स्वास्थ्य, उपेक्षा, सृजनशील, लैंगिक असमानता, मूलभूत उत्पादक क्षमता**

प्रस्तावना - किसी भी परिवार की धुरी महिला होती है। उसकी स्वास्थ्य स्थिति का सीधा प्रभाव परिवार के सदस्यों पर पड़ता है। यदि घर की महिला स्वस्थ है तो उसके बच्चे भी स्वस्थ्य होगें और परिवार के अन्य सदस्यों पर भी इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। एक स्वस्थ महिला ही अपने परिवार की देखभाल, पोषण जरूरतों की पूर्ति ढंग से कर सकती है। हालांकि अच्छा स्वास्थ्य किसी भी व्यक्ति के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि इससे एक स्वस्थ्य व्यक्ति न केवल शारीरिक व मानसिक रूप से भी स्वयं को अच्छा महसूस करता है बल्कि अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाहन करने मे सक्षम होता है फिर भी महिला स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। क्योकि महिलाओं पर पत्नी, मॉ, बहन, बेटी के रूप में जीवन की अनेक जिम्मेदारियों के निर्वाहन का दायित्व होता है। स्वस्थ महिला, स्वस्थ संतान को जन्म देकर स्वस्थ व खुशहाल भावी पीढ़ी का निर्माण करती है स्वस्थ महिला परिवार व राष्ट्र के लिए प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अनेक महत्वपूर्ण कर्मो का उचित तरीके से निष्पादन कर समाज निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान देती है।

स्वास्थ्य और शिक्षा जीवन स्तर की गुणवत्ता के दो ऐसे सुदृढ़ आधार स्तम्भ है, जो व्यक्ति को अपनी पहचान के साथ स्वस्थ जीवन जीने की कला सिखाते है ताकि एक स्वस्थ एवं सुगठित सामाजिक संरचना का गठन हो सके। स्वास्थ्य शिक्षा के द्वारा ही

• एसोशिएट प्रोफेसर (समाजकार्य) मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग म. गॉ. चि. ग्रा.वि.वि. चित्रकूट सतना (म.प्र.)
•• शोधछात्र (समाजकार्य) मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान विभाग म. गॉ. चि. ग्रा.वि.वि. चित्रकूट सतना (म.प्र.)

व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह ऐसा बर्ताव करता है जो स्वास्थ्य की उन्नति, रखरखाव और पुर्नप्राप्ति में सहायक हो।[1]

यदि जिंदा रहना है तो स्वस्थ जीवन ही रहना उचित है बजाय कि किसी बीमारी को झेलते हुए जीना। हमारे स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए विश्व स्वास्थ्य दिवस की शुरूआत 7 अप्रैल 1948 से विश्व संगठन (डब्लूएचओ) द्वारा पूरी दुनिया में एक साथ वैश्विक स्वास्थ्य जागरूकता दिवस के रूप में मनाने के लिए संकलित हुआ। इस दिन स्वास्थ्य संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा लोगों के बीच जागरूकता फैलाई जाती है।[2]

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 की रिपोर्ट के अनुसार,- "अधिक संस्थागत प्रसवों और व्यापक टीकाकरण की वजह से शिशु मृत्युदर मे कमी आयी है और लिंगानुपात में भी सुधार हुआ है। सर्वेक्षण यह भी बताता है कि 12-23 महीनों के बीच बच्चों का सम्पूर्ण टीकाकरण हुआ है।"[3]

सम्पूर्ण भारत की यदि तस्वीर देखें तो भारत में स्त्रियों की संख्या में निरंतर कमी आ रही है। यह एक चिंता का विषय है। जहाँ आबादी के बाद की प्रथम जनगणना के अनुसार 1951 में प्रति हजार पुरूषों मे स्त्रियों की संख्या 972 थी, वहीं 2001 में घटकर 933 हो गई फिर 2011 में कुछ बढोत्तरी देखने को मिलीं जिसमें स्त्रियों की संख्या 943 हो गई।[4]

वर्ष 1999 की यूनिसेफ की 'विश्व के बच्चों की अवस्था' शीर्षक रिपोर्ट के अनुसार -"भारत में पैदा हुए एक तिहाई बच्चों का वजन सामान्य से कम होता है और सन् 2000 तक विश्व में अशिक्षितों की सबसे बड़ी संख्या भारत में ही थी, जिसमें दो तिहाई सिर्फ महिलाएँ है।"[5]

भारत में स्वास्थ्य और शिक्षा का लोकव्यापीकरण एक चुनौती भरा, किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योकि भारत में स्वास्थ्य और शिक्षा सम्बन्धी सेंवाओं का जो ढांचा उपलब्ध है वह गुणवत्ता की शर्त पर खरा नही उतरता। आजादी के इतने साल बीत जाने के बाद भी भारत में निरक्षरता एवं मौजूदा स्वास्थ्य परिदृश्य एक बड़ी चिंताजनक स्थिति की ओर संकेत करता है। देश के विभिन्न हिस्सों में करोड़ों महिलाएं आज भी अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को लेकर दुर्दशा की शिकार है। कहीं पर स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से निपटने हेतु बुनियादी ढांचे का अभाव है। तो कहीं पर सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं के नाम पर सदियों से चला आ रहा नारी मन का संकोच पारिवारिक परिस्थितियों एवं आर्थिक मजबूरियों के कारण भी अनेक महिलाएं आज भी अपनी सेहत को लेकर बेबसी का शिकार है। स्वास्थ्य केन्द्रों का उपलब्ध न होना या फिर अत्यधिक दूर होना महिला डॉक्टर का न होना भी सेहत के लिए प्रतिकूल परिस्थिति पैदा करता है। अधिकांश घर परिवार में मिलने वाले संस्कारों मे भी महिला को बर्दाश्त करने की शिक्षा दी जाती है। अतएव कभी-कभी महिलाएं डॉक्टर के पास तभी जाती है जब स्थिति बर्दाश्त से बाहर हो जाती है। इसके अतिरिक्त आर्थिक कारणों से भी तमाम महिलाएं अपना इलाज करा पाने में सक्षम नही होती है।[6]

भारत में पुरूषों की तुलना में महिलाओं की साक्षरता दर काफी कम है। वर्ष 2011 की जनगणना के आंकडे दर्शाते है कि राजस्थान (52.12 प्रतिशत) और बिहार (51.50 प्रतिशत) में महिला शिक्षा की स्थिति काफी खराब है। बहुत कम लड़कियों का स्कूलों मे दाखिला कराया जाता है और उनमें से भी कई बीच में स्कूल छोड़ देती है। इसके अलावा कई लड़कियां रूढिवादी सांस्कृतिक रवैये के कारण स्कूल नही जा पाती है। वर्ष 2018 में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट मे कहा गया था कि 15-18 वर्ष आयु वर्ग की लगभग 39.4 प्रतिशत लड़कियाँ स्कूली शिक्षा हेतु किसी भी संस्थान मे पंजीकृत नही है और

इनमे से अधिकतर या तो घरेलू कार्यो मे सलंग्न होती है या भीख मांगने जैसे कार्यो में। ऑकड़े यह भी बताते है कि भारत मे अभी भी लगभग 145 मिलियन महिलाएँ है, जो पढ़ने या लिखने मे असमर्थ है।[7]

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण -3 की रिपोर्ट के अनुसार -''टीकाकरण को लेकर राज्यों की स्थिति मे काफी अंतर है एक सर्वे मे शामिल 15 में से 12 राज्यों मे सम्पूर्ण टीकाकरण लगभग 60 प्रतिशत पाया गया, शेश राज्यों मे यह 80 प्रतिशत तक पहुँच चुका है इसलिए सरकार ने टीकाकरण की पहुँच बढ़ाने के लिए विशेष 'इन्द्रधनुष' अभियान शुरू किया है।[8] इसी प्रकार डी.पी.टी. में एन.एफ.एच.एस.- 3 के मुकाबले एन.एफ.एच.एस.-4 में 18 प्रतिशत की बढोत्तरी हुई है, यह 44 प्रतिशत से बढकर 62 प्रतिशत हो गया है। संस्थागत प्रसव मे भी 40 प्रतिशत पाइंट की बढोत्तरी हुई है। एनएफएचएस-3 में यह 38.7 प्रतिशत था जो एनएफएचएस -4 में बढकर 78.9 प्रतिशत हो गया। ऐसा लगता है कि जननी सुरक्षा योजना के माध्यम से लक्षित दृश्टिकोण के कारण संस्थागत प्रसव मे बढोत्तरी हुई है। महिलाएँ अपने स्वास्थ्य को लेकर हमेशा लापरवाही करती है, इस कारण उनमें खून की कमी भी एक गम्भीर समस्या बनकर उभरी है। खून की कमी या एनीमिया महिलाओं की उन चंद बीमारियों में से है जिसकी वजह से उनकी कार्यक्षमता बुरी तरह से प्रभावित होती है।[9] महिलाओं मे यह बीमारी खतरनाक तरीके से बढ रही है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण -2 के अनुसार भारत में 50से 58 प्रतिशत महिलाएँ रक्ताल्पता से ग्रसित है।[10] गर्भावस्था के दौरान महिलाओं की उचित देखभाल न होना इस रोग के प्रसार का मुख्य कारण है कम उम्र में तथा बार-बार प्रसव के कारण भी यह रोग होता है आमतौर पर निर्धन और मध्यमवर्गीय परिवारों मे यह बीमारी ज्यादा देखने को मिलती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार'' एक स्वस्थ्य स्त्री के शरीर में 11 प्रतिशत हीमोग्लोबिन का रक्त स्तर होना चाहिए। किन्तु भारत जैसे विकासशील देश मे यह दर 11 प्रतिशत निर्धारित की गई है।''[11]

हमारे राष्ट्र मे कुपोषण आज भी महिलाओं के कमजोर स्वास्थ्य की एक महत्वपूर्ण वजह है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर)की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार आज भी 48प्रतिशत महिलाएँ कुपोषित है। कमजोर मनो-सामाजिक स्थिति एवं अपेक्षाकृत कम स्वास्थ्य सुविधा में इसका मुख्य कारण है। महिलाओं के साथ खान-पान का भेदभाव ही कुपोषण की एक बुनियादी वजह और चिंतनीय कारक है।[12]

गर्भावस्था व प्रसव कालीन जटिलताओं के कारण भारत में महिलाओं की यूनिसेफ द्वारा जारी स्टेट ऑव वर्ल्डस् चिल्ड्रेन 2009 नामक एक रिपोर्ट में कहा गया है कि ''वैश्विक जननी मृत्यु की तादाद मे भारत की हिस्सेदारी खतरनाक ढंग से ऊँची (22फीसदी) है।''[13]

जननी और बाल मृत्यु रोकने के मामले मे भारत की दयनीय दशा का एक संभावित कारण यहां मौजूद गरीबी, पिछड़ापन और बाल-विवाह का चलन जान पडता है। यूनिसेफ की रिपार्ट के अनुसार कम उम्र मे मॉ बनने के कारण स्त्रियों के स्वास्थ्य पर गहरा दुश्प्रभाव पडता है। मॉ बनते समय लडकी की उम्र जितनी कम होती है नवजात शिशु और गर्भवती स्त्री की जान को जोखिम उतना ही ज्यादा रहता है। कम उम्र मे विवाह और गर्भधारण के अतिरिक्त, लडकियों के स्वास्थ्य पर यौन-हिंसा और अन्य लैंगिक असमनातागत दुर्व्यवहारों का भी निर्णायक असर पडता है। लैंगिक भेदभाव के कारण लडकियों मे स्कूल से वंचित होने की घटना ज्यादा होती है जो कि फिर से उन्हे गरीबी और मातृ-मृत्यु के दुश्चक्र में

डालता है इसका दुश्परिणाम न केवल वर्तमान पीढी बल्कि आगामी पीढ़ी तक को भुगतना पडता है। यह तथ्य पूर्ण सत्य है कि महिलाएँ ही पूरे परिवार तथा समाज का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है। अतः उसे पूरी तरह से स्वस्थ रखना समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।[14] यह कटु सत्य है कि कुपोषित, रोगग्रस्त तथा सदैव अस्वस्थ रहने वाली स्त्री का परिवार सदैव दुखी तथा कष्टप्रद परिस्थिति मे मजबूर होकर रहता है। इसके अलावा शारीरिक रोगों के साथ मानसिक विकारों का भी सामना करना पड़ सकता है।

महिलाओं की कुछ प्रमुख बीमारियाँ है जिनमें रक्ताल्पता, ल्यूकोरिया, रक्त-प्रदर, गोनोरिया, सिफलिस, एड्स, स्तन कैंसर, गर्भाशय ग्रीवा का कैंसर, मासिक धर्म की समस्याएँ, फाइब्रायड, अवसाद आदि हैं। ल्यूकोरिया जो कि स्त्रीजनित रोग है औसतन 70 प्रतिशत महिलाएँ इस रोग से ग्रसित रहती है।[15] डा. आशा शर्मा ने अपने अध्ययन 'बेहतरजीवनस्तर का आधार और शिक्षा' मे यह बताया कि मानव जीवन को यदि सहज, सरल ,सार्थक एंव उद्देश्यपूर्ण बनाना है तो सूचना तकनीक के इस क्रान्तिकारी युग मे सबके लिए स्वास्थ्य और शिक्षा की संकल्पना को मूर्त रूप देने के सार्थक प्रयास करने होगे इसके लिए समस्त सरकारी, गैरसरकारी और अन्य संगठनों के समन्वित प्रयास तभी सफल होंगे जब लोग गाँधीवादी स्वैच्छिक तथा समर्पित भावना के साथ लाभ- हानि के व्यवसायिक दृष्टिकोण को त्यागकर अपना योगदान देंगे।[16]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि स्वास्थ्य और शिक्षा एक दूसरे से अर्न्तसम्बन्धित है। शिक्षा के स्तर पर महिलाओं की स्थिति में शनैः शनैः बढोत्तरी हुई है एंव स्त्री-पुरूष के बीच का अन्तर पहले से काफी कम हुआ है। लेकिन स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भारतीय महिलाओं की स्थिति अभी भी चिंतनीय बनी हुई हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी देश के विभिन्न हिस्सों मे करोडों महिलाएँ आज भी अपनी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को लेकर दुर्दशा की शिकार है। इन स्वास्थ्य समस्याओं से निपटने के लिए स्वास्थ्य शिक्षा पर ध्यान देना आवश्यक है। नगरीय क्षेत्रों मे तों स्वास्थ्य शिक्षा को बढावा दिया जा रहा है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों मे स्वास्थ्य-शिक्षा सम्बन्धी संचेतना का प्रायः अभाव ही देखने को मिलता है। महिला स्वास्थ्य आज भी देश के लिए गम्भीर चुनौती बना हुआ है इसके लिए हमे स्वास्थ्य -शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय को संवेदनशील बनाने की जरूरत है। जिससे स्वास्थ्य के प्रति संचेतना को बढ़ावा जा सके, जिससे हमारा 'सशक्त नारी-सशक्त समाज'का सपना साकार हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. विश्व स्वास्थ्य संगठनः 2016 की रिपोर्ट
2- www.downtoearth.org.in
3. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4: 28 फरवरी 2017 की रिपोर्ट
4. सेन्सस इण्डिया : 2011
5. यूनिसेफ : विश्व के बच्चों की अवस्था, वर्ष 1999
6. दैनिक आजः कानपुर संस्करण, 3 जून 2004
7. महिला शिक्षा-Drishti IAS
8. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एन.एफ.एच.एस.)-3 की रिपोर्ट वर्ष 2016
9. शास्त्री, काशीनाथ एंव चतुर्वेदी, गोरखनाथ, चरक संहिता, चौरवम्बाभवन, वाराणसी वर्ष 1969
10. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण -2: वर्ष 1998-99 की रिपोर्ट
11. विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट

12- www.royalbulletin.in
13. यूनिसेफ :'स्टेट ऑव वर्ल्डस चिल्ड्रेन' वर्ष 2009
14. अग्रवाल यतीश एंव अग्रवाल रेखा: 'सबके लिए स्वास्थ्य' राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली'
15. लवानिया, एम.एम. एवं जैन, के. शशी: चिकित्सा समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर
16. शर्मा,आशा : 'बेहतर जीवन का आधार स्वास्थ्य और शिक्षा' कुरूक्षेत्र, फरवरी 2003, नई दिल्ली

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति : एक अध्ययन

• राजीव दुबे
•• मोतीलाल मिश्र

सारांश- प्रस्तुत अध्ययन ''ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति : एक अध्ययन'' में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में धीरे-धीरे हो रहे बदलाव को अभिव्यक्ति देता है। नारी जीवन विभिन्न अर्न्तद्वंदों से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष जूझता हैं। नये युग के संचरण के साथ, समाज में आधी दुनिया से संज्ञित महिलाओं में नयी चेतना का प्रस्फुटन दिखाई पड़ने लगा है। एक नयी ललक, नयी इच्छा शक्ति, नवीन सुनहले कल की डगर में चलने को जैसे महिलाओं को प्रेरित कर रही है। नई सदी में महिलाओं को मिल रही यह प्रेरणा निःसंदेह शिक्षा के नये अवसर एवं पंचायतीराज के माध्यम से आयी है जिसका आधार स्वरूप त्रिस्तरीय पंचायत के विविध आयाम ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत, जिला पंचायत है।

मुख्य शब्द- शिक्षा, कृषि, जाति, धर्म, क्षेत्रीयता

प्रस्तावना - समृद्धशाली परंपरा वाले भारत देश में महिलाओं का अतीत बहुत ही प्रभावशाली रहा परन्तु मध्य युग में आने वाली विभिन्न जातियों के प्रभाव से बचने के लिए परंपरावादी लोगों ने महिलाओं को सुरक्षित रखने की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के प्रयास किये, जिस कारण महिलाओं के सामने सुरक्षा कम बंदिसे ज्यादा आती गई। स्थिति यहां तक आ पहुँची कि महिलाओं को अपना स्वाभाविक जीवन जीने के अवसर भी कमतर होते गये यह प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों में धीरे-धीरे स्थायित्व पाता गया और ग्रामीण महिलाएं शिक्षा और अन्य महत्वपूर्ण आयामों से दूर होती चली गयी। भारतीय गाँव समस्याओं और विद्रूपताओं से जूझते रहे है। जिसकी छाया से अभी भी वे मुक्त नहीं हुए हैं। कहीं परिवहन की समस्या, तो कहीं शिक्षा की समस्या, कहीं कृषि संम्बधित समस्यायें, तो कहीं भाईचारे और आपसी सदभाव की समस्या इन सब विसंगतियों के बीच उलझता गाँव और ग्रामीण जीवन अभी भी विकास के मूल धारा से अलग नजर आता है।

भारतीय ग्रामीण समाज विभिन्न खण्डों मे विभाजित है और यह खण्डीय विभाजन, जाति, धर्म, क्षेत्रीयता तथा सम्प्रदाय के आधार पर प्रभावित है जिसकी वजह से भारतीय स्त्री एक सामाजिक वर्ग के रूप में विकासित नहीं हो सकी। यहाँ पर लोग विभिन्न सम्प्रदायों में विभाजित है और इन सम्प्रदायों ने स्त्री की वरीयता नहीं मानी है जबकि बैधानिक दृष्टिकोण से स्त्री और पुरूष दोनों बराबर हैं।[1] ग्रामीण और नगरीय दोनों समुदायों में स्त्रियों के प्रति जिन कार्यो में भोजन बनाना, बच्चों की देखभाल करना आज भी शामिल किये जाते हैं, इस प्रकार के भारतीय स्त्रियों को घर के भीतर ही लगभग 18 घण्टे काम करने पड़ते हैं और उन्हें विश्राम करने तक का भी समय नहीं मिल पाता है। ऐसी स्त्रियाँ जो रोजगार में हैं, उन महिलाओं से भी अपेक्षा की जाती है कि वे आज्ञाकारी पत्नी हों, आदर्श माता हों, वे भी अपनी निजी आवश्यकताओं के लिए पुरूषों पर ही निर्भर रहें इसके दो कारण हो सकते हैं प्रथम सम्बन्धों को अच्छा निर्वाहन करने के लिए। द्वितीय पुरूष का अत्यधिक दबाव होने के लिये।

• शोध छात्र, समाजशास्त्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
•• सेवा निवत्त प्राध्यापक समाजशास्त्र

बदलते परिवेश में वैश्विक बदलाव का प्रभाव गाँवों में भी धीरे –धीरे दिखने तो लगा है, परन्तु समाज पर विकास का समुचित प्रभाव अभी भी नहीं दिखता। इसके पीछे प्रमुख कारण यह है कि समाज की महत्वपूर्ण इकाई जिसके ऊपर पारिवारिक–सामाजिक और मानसिक उन्नति का आधार टिका है, को अनुकूल अवसर आगे बढ़ने का नहीं मिल पा रहा है।[2] पुरुष वर्ग के लोग तो किसी तरह बाहर निकलकर नवीन गतिविधियों से प्रेरणा लेकर आर्थिक और नवीन चिंतन से कुछ नया सीख रहें हैं, एवं नया कर रहें हैं पर महिलाएं अभी भी उन पुरातन परंपराओं और रूढ़ियों में उलझी है जो उनके स्वाभाविक विकास में किसी न किसी रूप में बाधक हैं।

आकलन करें तो स्पष्ट होता है कि नगरीय समाज की महिलाएँ को जहाँ खुली हवा में सांस लेने का कुछ अवसर मिल रहा है। वहीं ग्रामीण महिलाएँ अभी भी पुरातन पंथ पर चलने को विवश है।[3] नगरीय परिवेश का सानिध्य मिलने वाली महिलाओं और गाँवों में पारंपरिक जीवन जीने वाली महिलाओं की स्थिति में एक ऐसा अंतर दिखता है, जो उनके सामाजिक जीवन के वैविध्य की ओर इंगित करता है। इस तरह ग्रामीण और नगरीय जीवन की यह विविधता ग्रामीण परिवेश में होने वाले बदलाव की नई कहानी गढ़ता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों पर परम्परागत व्यवस्था का प्रभाव बना हुआ है। परम्पराएँ उनके विचारों को प्रभावित करती है। मजदूर महिलाएँ कुटीर उद्योग में लगी महिलाएँ निम्न सामाजिक व आर्थिक वर्गो की महिलाएँ आज भी पुरूषों पर निर्भर हैं अर्थात् उनकी स्थिति और भूमिकाओं में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आया है। ऐसा जो समय सापेक्ष आना चाहिए। देखा यह जा रहा है कि महिला समाज में परिवर्तन तो आ रहा है पर उसकी गति इतनी मंद और धीमी है कि उसके प्रभाव शीलता का एहसास नही हो पाता है। यहाँ यह कहना अन्यथा न होगा कि "आजादी मिलने के साथ ही देश में आई नव क्रांति के बावजूद देश की आत्मा को बसाने वाले गाँवों में स्थिति अभी भी आदिमकालीन है। शिक्षा, स्वास्थ्य और आधुनिक संसाधन अभी भी गाँव में माकूल नहीं है।[4] आजादी के बाद गाँवों में परिवर्तन की बयार चली जरूर पर जल्दी ही वह रेगिस्तान से निकलने वाले आँधी के रूप में बदल गयी जिसके साथ आने वाली धूल और धुन्ध में ग्रामीण परिवेश डूबने लगा। स्थिति यह है कि गाँवों का पारंपरिक पुरातन स्वरूप धीरे–धीरे नष्ट होता गया और उसके स्थान पर आपसी द्वेष, ईर्ष्या, उपेक्षा आपसी सहमत का अभाव, कुटिल चिंतन आदि प्रतिक्रिया मूलक समस्याएं घर करने लगी। जिसका खामियाजा ग्रामीण समाज को भुगतना पड़ रहा है।

आज गाँव आपसी वैमनस्व के केन्द्र बनते जा रहे है। जिससे गाँव की जीवन शैली बदल रही है बदलते गाँव की छाया का सबसे अधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ रहा है। हालाकि शासन स्तर पर महिलाओं के विकास के लिए विभिन्न योजनाएं संचालित हो रही है फिर भी उनका आपेक्षित लाभ महिलाओं को नहीं मिल रहा है आधुनिकता और पुरातन का अंर्तद्वन्द्व उनके चारो ओर व्यूह रच रहा है जिससे बाहर निकलने का मार्ग अभी भी ठीक से नहीं सूझ रहा है।

प्रस्तुत अध्ययन "ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति : एक अध्ययन" में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में धीरे–धीरे हो रहे बदलाव को अभिव्यक्ति देता है। नारी जीवन विभिन्न अर्न्तद्वदों से प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष जूझता है। नये युग के संचरण के साथ, समाज में आधी दुनिया से संज्ञित महिलाओं में नयी चेतना का प्रस्फुटन दिखाई पड़ने लगा है। एक नयी ललक, नयी इच्छा शक्ति, नवीन सुनहले कल की डगर में चलने को जैसे महिलाओं को

प्रेरित कर रही है। नई सदी में महिलाओं को मिल रही यह प्रेरणा निःसंदेह शिक्षा के नये अवसर एवं पंचायतीराज के माध्यम से आयी है जिसका आधार स्वरूप त्रिस्तरीय पंचायत के विविध आयाम ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत, जिला पंचायत है।[5]

पंचायत के विभिन्न सोपानों में निर्धारित जनप्रतिनिधियों के पद क्रमशः पंच, सरपंच, जनपद सदस्य, जनपद अध्यक्ष, जिला पंचायत सदस्य, जिला पंचायत अध्यक्ष आदि के निर्वाचन पूर्व महिलाओं को दी गयी निर्धारित संख्या में आरक्षण व्यवस्था उस सहारे की तरह है जिसके माध्यम से इन महत्वपूर्ण पदों पर महिलायें आसानी से आसीन हो रही हैं। यही नहीं परम्परा से चली आ रही नारी के अति सहज प्रवंचना को झुठलाकर अपनी अच्छी कार्य कुशलता का परिचय भी वे दे रही है।

सामाजिक जीवन में आगे आने के लिए महिलाओं को मिला यह अवसर उनके लिए वरदान है जिसके माध्यम से उनका घर की दहलीज से निकलकर सार्वजनिक मंचों तक आने का मार्ग प्रसस्त हुआ। पंचायतों के माध्यम से मिलने वाली सामाजिक प्रतिष्ठा को दृष्टगत रखते हुए महिलाओं के संरक्षक पुरुष भी उन्हें प्रेरित कर सार्वजनिक जीवन में आने को प्रोत्साहित कर रहें हैं। शासकीय योजनाएं और स्वयंसेवी संगठन भी महिलाओं की स्थिति परिवर्तन के लिए प्रभावी कदम उठा रहे है जिसका सकारात्मक प्रभाव महिला समाज में दिख रहा है और उनकी स्थिति में लगातार परिवर्तन हो रहा है यह परिवर्तन महिला जगत के लिए एक नये युग का आगाज है।

ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति में होने वाले परिवर्तन में शासकीय और स्वयं सेवी संगठनों की भूमिका निःसंदेह प्रभावी है। जिसके माध्यम से महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में अग्रसर होने का जहाँ एक ओर अवसर मिल रहा है वहीं दूसरी ओर उनके सामने कुछ नवीन कठिनाइयाँ भी आ रही हैं। हालाकि ये कठिनाइयाँ स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्तिमूलक है जो पदीय स्पर्धा के कारण पनपती है परन्तु कभी-कभी जब ये स्पर्धा अमर्यादित हो जाती है तो समाज के सामने उपहासात्मक स्थिति निर्मित हो जाती है।

ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ मूलतः कृषि से जुड़ी है, वे चाहे नगर के निकट गाँवों में निवासरत है या दूर के वर्तमान समय में, अधिकांश श्रमिक महिलाएं अपने को कृषि से अलग व्यवसाय में भी लगाना चाहती हैं ये प्रमुख रूप से भवन निर्माण, मोमबत्ती बनाने का काम, माचिस बनाना, चटाई सूत या कपास सम्बन्धी कार्य, सिलाई, भोजन बनाने का काम, रेडीमेड कपड़े का निर्माण, बुनाई आदि छोटे-छोटे व्यवसाय में अपनी संलग्नता बढ़ाना चाहती है।[6]

अधिक प्रतियोगिता होने के कारण अधिकांश श्रमिक महिलाएं ठेकेदारी व्यवस्था में ही कार्य करती हैं देश के विभिन्न भागों में हुए अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि उपर्युक्त क्षेत्रों में कार्य करने वाली महिला श्रमिकों की स्थिति सोचनीय है। इन व्यवसायों में लगी कार्यशील महिला निम्न जाति और निम्न वर्ग की अधिक होती हैं। इन महिलाओं की प्रमुख विशेषताओं में असमानता, पंरपरा, प्रतिबद्धता, अशिक्षा, अकुशलता, सिजनल व्यावसायिक प्रवृत्ति, कठिन शारीरिक श्रम, कम पारिश्रमिक पर अधिक घण्टे काम करना, महिला एवं पुरूष के पारिश्रमिक में असमानता, व्यावसायिक सुरक्षा का अभाव, रोजगार के लिए होने वाली प्रतियोगिताएँ, कार्यस्थल पर न्यूनतम सुविधाओं का अभाव होना, दुर्घटना आदि की दशा में प्राथमिक उपचार की व्यवस्था का न होना आदि प्रमुख है। कृषि व्यवसाय के प्रति महिला श्रमिकों में कोई भी आकर्षण नहीं देखा जाता क्योंकि कार्य करने की दशाओं तथा

लाभ एवं पारिश्रमिक की उचित और पर्याप्त उपलब्धता नहीं होता है। वे असंगठित महिलाएँ जो इस प्रकार के व्यवसायों में लगी हुयी हैं, उन्हें अपमान, परतंत्रता और खराब स्वास्थ्य ही उपहार में प्राप्त होता है।

रीवा जिले की ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक संरचना पर गौर करें तो स्पष्ट होता है कि ग्रामीण महिलाओं की ग्रामीण संरचना के अध्ययन के दौरान देखा गया कि नगर की महिलायें सकारत्मक सोच के बावजूद व्यष्टिपरक चिंतन अपनाती है जबकि शहर से दूर रहने वाली महिला को व्यक्तित्व और गुणवत्ता उनके प्रभावशील होने के कारक है। जिले में निवास कर रहे विभिन्न समुदाय यथा ब्राम्हण क्षत्रिय सूद्र वैश्य मुस्लिम एवं अन्य समुदाय की महिलाओं की संख्यात्मक विवेचना नवीन चिंतन पद्धति जिसके तहत समाज को सामान्य, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति, जनजाति वर्ग में विभाजित किया गया है। इन विविध वर्गों में अनुसूचित जाति, जनजाति समुदाय की महिलाओं की स्थिति अभी भी बहुत दयनीय है। अतएव इन समुदाय की महिलाओं पर अलग से गौर किया गया है।[7]

ग्रामीण महिलाओं की जाति एवं क्षेत्रवाद आबादी में उत्तरोत्तर अनुपातिक वृद्धि हो रही है महिलाओं को आगे आने के अवसर पंचायतीराज व्यवस्था के तहत मिल तो रही है पर समुचित क्रियान्वयन न होने के कारण महिलाओं के जीवन स्तर में आया बदलाव कम ही दिखता है। ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति समुदाय के लोगों का बाहुल्य है इन समुदायों की महिलाओं से प्रचलित कुछ रूढ़ मान्यताएं जो जादू-टोना पूजा, पाठ, पारिवारिक सामाजिक चिंतन पारम्परिक सोच आदि है। जिसके कारण महिलाओं के संदर्भ में पुरूष समुदाय का अपना एक अलग दृष्टिकोण है। 7 महिलाएं संख्यात्मक दृष्टि से पर्याप्त संख्या में होने के बाबजूद भी विकास की आपेक्षित गति के साथ तादाम्य नहीं बना पा रहीं है। रीवा जिले की ग्रामीण महिलाओं की वर्तमान स्थिति के अध्ययन के दौरान महसूस किया गया कि आजादी के बाद विकास की चली नई मुहिम में महिलाओं के विकास के गति को धीरे धीरे एक नया आयाम दिया है। उनकी समस्याएं चिन्हित होने लगी है। और उन निर्योग्यताओं पर भी गौर किया जा रहा है जिसके कारण उनकी सामाजिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

समाज में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होने के बावजूद उनको सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक क्षेत्रों में वह अधिकार नही मिले है जो मिलना चाहिए। अब संसार के विकसित तथा विकासशील देश यह अनुभव करने लगे है कि यदि राष्ट्र को प्रगति और विकास के मार्ग पर ले जाना है तो स्त्रियों की स्थिति एवं भूमिका में सुधार लाना होगा। यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती हुई निर्धनता को रोकने के लिए स्त्रियों को रोजगार उपलब्ध कराना होगा क्योंकि स्त्रियॉ जब रोजगार में लगेंगी तभी उनका आर्थिक आधार बढेगा और वह अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकेंगी।

स्त्रियों पुरूषों की समस्यायें समान है। इसलिए पुरूष वर्ग को अपनी विचारधारा और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा। भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज रहा है, जहॉ महिलाओं की भूमिका घर की चाहरदीवारी के भीतर ही रेखांकित थी। भोजन बनाना प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुओं की खरीदारी करना, जैसे कार्य ही महिलाओं के जिम्मे रहें है। व्यवस्था जनित इन कार्यो को ग्रामीण क्षेत्रों में कोई महत्व नही दिया जाता है क्योंकि पुरूष यह सोचता है कि ये सब कार्य फालतू हैं जो महिलाओं के लिए ही उपयुक्त है। समाज में आर्थिक रूप से

सम्पन्न परिवारों में महिलाओं को निम्न वर्ग की स्त्रियों के समान कोई कार्य नही करना पड़ता है, सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न प्रकारों –समाजवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पाया जाता है मात्र सम्बन्धों की प्रकृति एवं विशेषताओं में अन्तर देखा जा सकता है।

निष्कर्ष - अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक स्थिति में क्रमिक परिवर्तन अर्से बाद हो रहा है। यह परिवर्तन सामाजिक पृष्टिभूमि को लेकर अधिक प्रभावी है। महिलाएं अपने पारंपरिक स्वरूप से हटकर एक नये भाव प्रवेश में पहुॅच रही है। उनके चिंतन कार्य क्षेत्र का दायरा और समाज में उनकी भूमिका भी परिवर्तित हो रही है। यह परिवर्तन नगरीय क्षेत्र में अधिक और ग्रामीण क्षेत्र में कम दिखता है। अध्ययन के लिए प्रस्तावित क्षेत्र रीवा जिले में महिलाओं की स्थिति परिवर्तन का अध्ययन नगर के समीपी गांव और नगर से दूर गांव के रूप में विषय वस्तु को रेखांकित किया गया है। जिसमें अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि नगर के नजदीकी गांव में आधुनिकी कारण का अधिक प्रभाव है जबकि नगर से दूर गांव में यह प्रभाव कम है।

नगर के निकट ग्रामीण समुदाय गांव संस्कार जहां आधुनिकता से ओत प्रोत हो रहे हैं वहीं नगर से दूर गांवों में यह प्रभाव अभी भी कम है। नगर से दूर गांव अभी भी किसी न किसी रूप में पुरातन संस्कारों से प्रभावित है फिर भी पंचायती राज व्यवस्था एवं अन्य समकालीन उपक्रमों में मिले नवीन अवसरों में से महिलाओं के उत्थान के आयामों से सामाजिक स्थिति में परिवर्तन का दौर शुरू हो गया है जो उन्हें मूलभूत मानवीय अधिकार दिलाने में कारगर भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। यह परिवर्तन महिला समाज के लिए एक सुन्दर और सार्थक नये युग के निर्माण का आगाज है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. घोष एस.के.– बदलते समाज में महिलाएं आशील पब्लिसिंग हाउस, न्यू दिल्ली
2. श्रीनिवास डॉ. एम.एन.– आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, आगरा बुक स्टोर आगरा
3. सुभांगी मनीषा– ग्रामीण भारत की महिलाएं, बी आर पी ब्लैसिंग कारपोरेशन , दिल्ली
4. शिवलकर डॉ रा.शि.– भारत में ग्रामीण विकास की कथा,, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
5. आजाद प्रो. कमलेश्वर –सामाजिक परिवर्तन में पंचायतीराज हिमालया पब्लिसिंग हाउस बुम्बई,
6. मौर्या एस.डी. – भारत में महिलाएं : आविश्कार पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटरर्स, जयपुर
7. खरे पी.सी.– भारतीय समाज एवं संस्कृति हिमालया पब्लिसिंग हाउस बुम्बई

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

कामकाजी महिलाएॅ - एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (सीधी जिले के विशेष संदर्भ में)

• दिलीप कुमार सोनी

सारांश- **महानगरों के कार्यालयों, उद्योगों में इठलाती महिलाओं को देख कर महिलावादी खुश होते हैं कि देखों महिला-सशक्तिकरण सफल हुआ। पहला सवाल है कि क्या 'कामकाजी' शब्द ठीक है? जीविकोपार्जन में लगी महिलाओं को कामकाजी कहा जाता है। तो इसका अर्थ क्या यह है कि घर में रहकर परिवार की जिम्मेदारी सम्भालने वाली महिलाएं काम ही नही करती। दरअसल यह विडम्बना ही है कि घर-परिवार के काम को कभी अहमियत ही नही दी गई है, उसे तो औरतों का कर्तव्य मानकर भुला दिया जाता है। घर के काम की कितनी अहमियत होती है यह महानगरों में 'काम वाली' के अभाव और नखरों से ही पता चल जाता है। वैसे हम बात कर रहे हैं उन महिलाओं की जो घर-परिवार के साथ-साथ बाहर की जिम्मेदारी भी सम्भालती हैं, व्यापार, कृषि आदि में लगी हुई हैं। घरेलू महिला के काम को तो कोई महत्व दिया ही नही जाता है, कामकाजी महिला के बोझ को जानबूझ कर भुला दिया जाता है। आज महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है और अपनी सफलता के परचम भी लहरा रही हैं, लेकिन हर तरफ उन्हें सिर्फ दिक्कतों का ही सामना करना पड़ता है और सबसे दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि कामकाजी महिलाओं की समस्याओं को कोई समझने को ही तैयार नहीं है। कामकाजी महिलाएं किस भयानक त्रासदी से गुजरती है, हमें यह समझना होगा।**

मुख्य शब्द- **महिलावादी महिला, सशक्तिकरण, महिलाएं, जनसंख्या**

प्रस्तावना - भारत कृषि प्रधान देश है और यहां की अधिकतम जनसंख्या गांवों में रहती है और कृषि कार्यो में लगी है। हमारे सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का हिस्सा आज भी लगभग एक चौथाई है। क्या कभी किसी ने सोचा है कि गांवों में अधिकांश काम कौन करता है? ग्रामीण महिलाएं दिन-रात काम में खटती रहती है। घर-परिवार के अलावा खेतों और पशुओं का काम भी उन्हें ही करना पड़ता है। लेकिन अफसोस कि ग्रामीण महिलाओं को कामकाजी माना ही नहीं जाता है। आज भारत दूध का दुनिया भर में सबसे बड़ा उत्पादक है। यह दूध पैदा कैसे होता है? ग्रामीण महिलाएं ही पशुओं को पालने, उनकी देखभाल करने और दूध दुहने का काम करती हैं, लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था में उनके योगदान को कोई मानता ही नही है। सच तो यह है कि कभी किसी ने सोचा तक नही कि महिलाओं का भी अर्थव्यवस्था में कोई योगदान होता है? चूकि कामकाजी महिलाओं को घर और बाहर दोनों जगहों की जिम्मेदारियां संभालनी पड़ती है इसलिए उनकी दिक्कतें भी दोगुनी होती हैं। महानगरों में नौकरी करने वाली मध्यमवर्गीय महिला की त्रासदी किसी सजा से कम नहीं। सुबह जल्दी-जल्दी घर के काम, पूरे दिन ऑफिस में पिसना, बसों में धक्के खाना, भीड़ से अश्लील फिकरे सुनना, शारीरिक उत्पीड़न सहना, शाम को फिर घर-गृहस्थी। घरेलू महिला के काम को तो कोई महत्व दिया ही नही जाता है, कामकाजी महिला के बोझ को जानबूझ कर भुला दिया जाता है। आज महिलाएं जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही है और अपनी सफलता के परचम भी लहरा रही हैं, लेकिन हर तरफ उन्हें सिर्फ दिक्कतों का ही सामना करना पड़ता है और सबसे दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है कि कामकाजी महिलाओं की

• सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय सीधी (म.प्र.)

समस्याओं को कोई समझने को ही तैयार नहीं है। कामकाजी महिलाएं किस भयानक त्रासदी से गुजरती है, हमें यह समझना होगा।(देसाई1985)

दुनिया बहुत तेजी से बदल रही है और यह बदलाव कई दिशाओं में हो रहा है। पढ़-लिख कर विकास की दौड़ में आ खड़ी हुई महिलाएं अब घर की चार दीवारियों से निकल कर कामकाज की दुनिया में शामिल हो रही है। बदली हुई सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं को शिक्षा और रोजगार के अवसर आसानी से मिलने लगे है जिस कारण उन्हें अभिव्यक्ति की आजादी मिली है, समाज में स्वयं अर्जित प्रतिष्ठा पाने के साधन मिले हैं और मिली है जीवन को अपने तरीके से जीने की आजादी।

जैसे-जैसे महिलाएं घरों से निकल कर कार्यस्थल तक पहुच रही हैं, वैसे-वैसे उनकी दिक्कतें भी बढ़ रही है । भारत सहित विश्व के अधिकतर देशों में, घर व कार्यालय के बीच बंटी कामकाजी महिलाओं की स्थिति पर शोध हो रहे हैं। भारत के संदर्भ में देखें तो कामकाजी महिलाओं के प्रति समाज के नजरिए में रेखांकित करने योग्य बदलाव आया है। अभी 20 साल पहले तक ही छोटे नगरों में कामकाजी महिलाओं में उनकी किसी सामाजिक या आर्थिक मजबूरी ढूढ़ी जाती थी और बेटे के विवाह के लिए प्रत्येक मां-बाप एक 'घरेलू' लड़की की खोज में रहता था लेकिन आज स्थिति बिल्कुल उलट चुकी है। आज छोटे-छोटे कस्बों और यहां तक कि गांवों में भी 'कामकाजी लड़की' विवाह योग्य लाड़लों के मां-बापों की पहली पसंद बन गई है। लेकिन यह तस्वीर का सिर्फ एक रुख है। तस्वीर का दूसरा रुख बेहद स्याह है। कामकाजी महिलाओं को परिवार और पेशे के बीच सामंजस्य स्थापित करने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है क्योकि समाज ने उनकी उपयोगिता और महत्व को तो स्वीकार कर लिया है लेकिन कामकाजी महिलाओं को जिस पारिवारिक सहारे की जरुरत होती, उससे आधी से ज्यादा कामकाजी महिलाएं आज भी महरुम हैं। उच्च वर्ग की महिलाओं की स्थिति शायद कुछ अलग हो, लेकिन मध्यम वर्ग की अधिकांश कामकाजी महिलाओं को आज भी कार्यालय के बाद घर के कामकाज में जुट जाना पड़ता है। बात चाहे हम महानगरों की करें या छोटे कस्बों की, कामकाजी महिलाएं आज भी घर में सबसे पहले उठती हैं और रात में सबसे बाद में उन्हें बिस्तर नसीब हो पाता है।

निम्न वर्ग की कामकाजी महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब है। योजना आयोग की एक रिपोर्ट के अनुसार निम्न वर्ग की अधिकतर कामकाजी महिलाएं अशिक्षित या अल्पशिक्षित होती है। काम करना इस वर्ग की महिलाओं के लिए एक मजबूरी ही है और मजबूरी में काम पाने के लिए उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ती है। कार्य स्थल पर उनके साथ दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है। देर शाम जब वो घर लौटती है तो उसे दो-चार होना पड़ता है, पारिवारिक हिंसा से। कुछ लोगों को ये बात शायद अतीत की या किस्से-कहानियों की ही लगे लेकिन 60 फीसदी भारत की यही सच्चाई है। काम में खटने के बाद घर पर पिटना, आज भी हकीकत है कस्बाई भारत की। (यादव 1991)

विवाहित कामकाजी महिलाओं की समस्यएं तो और भी विकराल हैं। एक सर्वे के मुताबिक मात्र 40 फीसदी महिलाएं ही अपनी इच्छा से कार्यशील होती है। लगभग 25 फीसदी महिलाओं को किसी आर्थिक मजबूरी के चलते काम करना पड़ता है तो 25 फीसदी महिलाएं अपने पति की इच्छा के कारण ऐसा करती है। सामाजिक न्याय के तहत सरकार की तो यह नीति है कि यदि पति-पत्नी दोनों किसी सरकारी कार्यालय में कार्य करते हों तो जहां तक संभव हो सके दोनों को एक ही शहर में नियुक्ति दी जाए लेकिन समस्या निजी क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं को उठानी पड़ती है। अक्सर देखा गया है कि पति का स्थानांतरण होने पर पत्नी को अपनी नौकरी छोड़ देनी पड़ती है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार 10 फीसदी महिलाएं तो मात्र स्थानांतरण से बचने के लिए ही पदोन्नति स्वीकार नही करती है।

पिछले कुछ वर्षो में महिलाओं की जीवनशैली में महत्वपूर्ण बदलाव देखने को मिलती हैं, जिनसे उनके व्यवहार, मूल्य, संवेदनाओं तथा प्रेरणा शक्ति ही प्रभावित नहीं हुई है, बल्कि आज वे जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर भागीदारी कर रही है। सामाजिक परिवर्तन के घूमते चक्र के कारण ही महिलाओं को परंपरागत रूढ़िवादी भूमिका से काफी हद तक मुक्ति मिल गई है, हालांकि इस प्रक्रिया में विभिन्न कानूनी प्रावधानों ने भी सकारात्मक भूमिका निभाई है। अब महिलाएं मात्र गृहिणी की ही भूमिका तक सिमटी नही है, बल्कि अधिपत्य, जवाबी और परिपक्व स्त्री के रूप में सहज देखी जा सकती हैं।

भारत में इन सामाजिक परिवर्तनों का असर शहरी शिक्षित महिलाओं में और उसमें भी विशेष रूप से मध्यमवर्गीय महिलाओं पर अधिक पड़ा है। शहरीकरण, शिक्षा और रोजगार, जो कि वस्तुतः इस सामाजिक बदलाव की देन है, ने उन्हें अपने व्यक्तित्व को निखारने तथा अधिकार जताने की बाबत नए आयाम दिखाए है। भारतीय शहरी महिलाएं अपनी ग्रामीण बहनों को जो न सिर्फ घरेलू कामकाज की जिम्मेदारी का निर्वाह करती है बल्कि पुरुषों के साथ खेतों में भी हाथ बंटाती हैं, इसकी भांति ही घर की चारदीवारी से बाहर निकल कर आय सृजित करने लगी है। इससे उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं की भी पूर्ति होती है।

घर और नौकरी की अलग-अलग मांगों, जो अक्सर एक-दूसरे से सर्वथा विपरीत होती है, के कारण कामकाजी मां को बार-बार दोनों भूमिकाओं को निभाने में द्वंद्व का सामना करना पड़ता है। महिला होने के नाते मां के कर्तव्य के साथ-साथ उसे सुसंस्कृत गृहिणी की भूमिका का भी निर्वाह सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए करना पडता है।हमें जितनी आर्थिक प्रणालियों की जानकारी है, उन सबसें स्त्रियों से काम लिया जाता रहा है, बल्कि शायद उनसे काम लेने की जरुरत भी महसूस की जाती रही है और लगभग सभी ऐसी प्रणालियों में वे अपना जीवनयापन के लिए और मनुष्य नाते तथा समाज का सदस्य होने के नाते अपने संतोष के लिए काम करती रही हैं लेकिन दुर्भाग्य से आर्थिक तरक्की में महिलाओं के योगदान की हमेशा अनदेखी की जाती है।

कार्ल मार्क्स ने कहा था कि "स्त्रियों की सामाजिक स्थिति से सामाजिक प्रगति को ठीक-ठाक मापा जा सकता है।" स्त्रियों की स्थिति के कुछ महत्वपूर्ण और आपस में एक-दूसरे से घनिष्ठ रुप से जुड़े पहलू इस प्रकार है : उनके आदर्श, परिवार में उनकी भूमिका, समाज में उनकी भूमिका, आर्थिक भूमिका, कार्यक्षेत्र और निषिद्ध कार्यो का दायरा आदि। इस संबंध में गोरे का कथन महत्वपूर्ण है, जिसमें उन्होने लिखा है कि परिवार में स्त्री के छोटे दर्जे का संबंध आर्थिक कार्यो से उसके अलग रखे जाने से है। वह अपने इस कथन के समर्थन में भारत की नीची जाति और ऊंची जाति के परिवारों की तुलना प्रस्तुत करते हैं। जिसमें देखा जाता है कि कुछ नीची जाति की स्त्रियों के मामले में विरासती जायदाद की समस्या करीब-करीब है ही नही, और वे सामान्यतः लाभप्रद कार्यो में लगी है और ऊंची जाति की स्त्रियों की तुलना में उन्हे ज्यादा स्वतंत्रता प्राप्त है क्योकि ऊंची जाति की स्त्रियां लाभप्रद कार्यो में नही लगी हुई है अथवा उन्हे आर्थिक कार्यो से अलग रखा जाता है।

पिछले तीन दशकों में मध्य वर्ग की कामकाजी स्त्रियों की संख्या में जबर्दस्त इजाफा हुआ है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व और उसके कुछ समय बाद तक भी मध्यवर्ग और उच्च वर्ग स्त्रियां ज्यादातर अपने घरों की चहारदीवारी में ही सिमटी रहती थीं। राष्ट्र के निर्माण में स्त्रियों का योगदान काफी महत्व रखता है लेकिन राष्ट्र की आर्थिक प्रगति और विकास में भी स्त्रियों की भूमिका कम महत्व नही रखती। इस महान और मजबूत स्त्री शक्ति की ओर उचित ध्यान देने की जरुरत है जिससे कि खुद स्त्रियों को ज्यादा से ज्यादा फायदा हो और

साथ ही राष्ट्र के विकास और आर्थिक प्रगति के मामले में ज्यादा फायदा उठाया जा सके। यह तभी संभव होगा जब स्त्रियों को सम्मान दिया जाए और इसके साथ ही उनकी शक्ति को राष्ट्र के लाभ के लिए और स्त्रियों का दर्जा उठाने के लिए सही रास्ते पर लाया जाए।

शहरो में कामकाजी महिलाओं की स्थिति और संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है लेकिन छोटे कस्बों और गांवों में स्थिति बहुत अच्छी नही है। अभी कुछ समय पूर्व कामकाजी महिलाओं के संदर्भ में एक अध्ययन किया गया जिसके नतीजों का उल्लेख यहां प्रासंगिक होगा । इस अध्ययन के मुताबिक अधिकतर कामकाजी महिलाएं 20 से 45 वर्ष के आयु वर्ग की होती हैं अर्थात आजादी के बाद जन्मी महिलाएं ही आज घर से नकल कर काम संभाल रही हैं। इनमें भी 20-25 वर्ष आयु वर्ग महिलाओं की संख्या अधिक है जिसका अर्थ है कि आजकल सभी शिक्षित महिलाएं किसी न किसी रोजगार में लग रही हैं। लगभग 60 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं ऐसी होती हैं जिनका जन्म शहरी क्षेत्र में होता है। चूंकि ग्रामीण महिलाओं की परंपराएं उन्हें नौकरी करने की इजाजत नही देती और उनके पास अवसर भी बेहद सीमित होते हैं इसलिए कामकाजी महिलाओं में ग्रामीण महिलाओं का प्रतिशत कम होता है। जो ग्रामीण महिलाएं कामकाज करती भी है वे साधारणतः अपने पाविवारिक धंधों से ही जुडी होती हैं। शहरों में वही ग्रामीण महिलाएं नौकरी आदि करती है जो उच्च-शिक्षा के लिए पहले ही शहर आ चुकी होती हैं। कुल कामकाजी महिलाओं में लगभग 21 प्रतिशत महिलाएं ऐसी होती है जिनका जन्म तो ग्रामीण क्षेत्रों में होता है लेकिन उनके परिवार 15-20 वर्ष पहले ही शहरों में आकर बस गए थे।

अब बात परिवारों के प्रकार की। अधिकतर कामकाजी महिलाएं एकल-परिवार से होती हैं। संयुक्त परिवारों की बहुत कम महिलाएं कामकाज के सिलसिले में घर से बाहर जाती है। भारत में कोई भी अध्ययन बिना जातिगत संदर्भ के अपूर्ण माना जाता है। एक अध्ययन के मुताबिक सबसे अधिक कामकाजी महिलाएं ब्राम्हण जाति से संबंध रखती हैं। इस मामले में दलित जाति की महिलाओं का प्रतिशत बेहद कम है। धर्म के आधार पर देखे तो भारत में 85 फीसदी से भी अधिक कामकाजी महिलाएं हिन्दू धर्म को मानने वाली होती हैं।

यह बताने की आवश्यकता नही कि अधिकतर कामकाजी महिलाएं शिक्षित और उच्च-शिक्षित होती है लेकिन फिर भी तथ्य यह है कि 13 प्रतिशत कामकाजी महिलाएं निरक्षर होती है जबकि 12 फीसदी महिलाएं बस साक्षर ही होती है। अन्य समाजों के साथ-साथ भारत में भी परंपरा रही है कि पति, जीविका का साधन जुटाने का कार्य करता है और पत्नी परिवार के दायित्व संभालती है लेकिन अब वह परंपरा बदल रही है ।

कार्यस्थल पर शोषण- एक ओर तो कामकाजी महिलाओं का अनुपात बढ़ता जा रहा है तो दूसरी ओर बढ़ रहा है कार्यस्थल पर उनके साथ होने वाला दुर्व्यवहार। 'अवाग' (अहमदाबाद वुमेंस एक्शन ग्रुप) नामक एक गैर-सरकारी स्वैच्छिक संस्था ने सन 2004 की शुरुआत में एक सर्वे किया । उस शोध के नतीजों ने भी इस धारणा को ही पुष्ट किया है कि आज भी कार्यस्थल पर महिलाओं का शोषण होता है । इस सर्वेक्षण के मुताबिक लगभग 48 फीसदी महिलाओं को कार्यस्थल पर मौखिक, शारीरिक और मानसिक शोषण का हमला झेलना पडता है और यह हमला करते है उनके अपने ही सहकर्मी ।

संस्था के मुताबिक छोटे नगरों व कस्बों में कामकाजी महिलाएं सामाजिक 'बदनामी' और काम छिनने के डर से यौन-शोषण की शिकायत ही दर्ज नही कराती हैं ।

'अवाग' की प्रमुख इला पटनायक का कहना है कि निजी क्षेत्र के साथ-साथ सरकारी क्षेत्र में भी महिलाओं का यौन-शोषण होता है । कार्यस्थल पर महिलाओं को किस प्रकार यौन शोषण का शिकार होना पडता है और इसे रोकने के लिए क्या प्रयत्न किए जा रहे है।

कार्यबल में महिलाएं- केन्द्र शासित प्रदेशों में सबसे अधिक महिलाएं दिल्ली में कार्यरत है जिनकी संख्या कुल 585133 है जबकि लक्षद्वीप में सबसे कम (2150) महिलाएं कार्यशील है। दमन-दीप में 12,222, दादरा एवं नगर हवेली में 38287, चण्डीगढ में 56003, वाण्डिचेरी में 83985 और अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह में कुल 27092 महिलाएं कार्यशील हैं।

राज्य	कार्यशील व्यक्ति	कार्यशील महिलाएं
जम्मू-कश्मीर	3753815	1037874
हिमाचल प्रेश	2992461	1305803
पंजाब	9127474	2167261
उत्तरांचल	3134036	1137859
हरियाणा	8377466	2661940
राजस्थान	23766655	9070853
उत्तर प्रदेश	53983824	13002266
बिहार	27974606	7491603
सिक्किम	186222	68962
अरुणाचल	482902	189290
नागालैंड	847796	358828
मणिपुर	....	....
मिजोरम	467159	209151
त्रिपुरा	1159561	328215
मेघालय	970146	401655
असम	9538591	2667631
प.बंगाल	29481690	7093643
झारखण्ड	10109030	3449174
उडीसा	14276488	4474482
छत्तीसगढ	96793519	4148012
मध्यप्रदेश	25793519	9599151
गुजरात	21255521	6778235
महाराष्ट्र	41173351	778235
आंध्र प्रदेश	34893859	13231667
कर्नाटक	23534791	8299436
गोवा	522855	147637
केरल	10283887	2518242
तमिलनाडु	27878282	9777885

स्पष्ट है कि महिलाएं कार्यबल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं लेकिन कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी ग्रामीण-नगरीय क्षेत्रों में अलग-अलग है वित मंत्रालय (भारत सरकार) द्वारा प्रकाशित 'आर्थिक सर्वेक्षण: 2003-2004' के मुताबिक जुलाई-दिसम्बर 2004 में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की कार्यबल में भागीदारी प्रति हजार मात्र 281 है जबकि शहरी क्षेत्रों में यह प्रति हजार 140 है ।

विधि तंत्र - शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम क्षेत्र का चुनाव ग्रिड पद्धति का उपयोग करते हुए सीधी जिले का चुनाव किया गया तत्पश्चात् कुल 50 कामकाजी महिला उत्तरदाताओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि द्वारा किया गया। उत्तरदाताओं से उत्तर प्राप्त करने हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया जिससे उत्तरदाताओं से पूरक प्रश्नों के साथ-साथ उनके उत्तर देने के दौरान भाव भंगिमाओं का भी अध्ययन किया जा सके। (त्रिवेदी एवं शुक्ला1998)

तालिका क्र. 01

कामकाजी महिलाओं के कार्य क्षेत्र संबंधी जानकारी

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	शिक्षा	28	56.00
2	बैक या व्यापारिक प्रतिष्ठान	14	28.00
3	अन्य	08	16.00
		50	100.00

उपर्युक्त तालिका क्र. 01 से स्पष्ट होता है कि जब कामकाजी महिला उत्तरदाताओं से पूछा गया कि आप किस क्षेत्र में कार्य करती है तो कुल 50 उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 56 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपना कार्यक्षेत्र शिक्षा को बताया, जिससे स्पष्ट होता है कि अभी भी सबसे पंसदीदा महिलाओं के लिए शिक्षा का क्षेत्र है जहॉ वे अपने आप को बेहतर महसूस करती है। अवलोकन के दौरान भी यही पाया गया कि महिलाओं की नौकरी के बारे में यदि राय मांगी जाए तो पहली पसंद शिक्षा ही होती है, जबकि द्वितीय स्थान में बैंक व्यापारिक प्रतिष्ठान आते है जहॉ कुल उत्तरदाताओं का 28 प्रतिशत कार्य करता है या कार्य करना पसंद करता है। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं की नौकरी करने में शिक्षा के बाद बैंक या व्यापारिक प्रतिष्ठान दूसरी पसंद है, जहॉ वह सहज महसूस करती है। व्यापारिक प्रतिष्ठानों के संबंध में जब चर्चा की गई तो वह कपड़े या शो रुम में सेल्स गर्ल के रुप में कार्य करना पसंद करती है वह कोई ब्राण्ड हो तो और अच्छा है चाहे वह मोटर कंपनी हो या अन्य। जबकि 16 प्रतिशत ने अन्य जबाव देते हुए कहा कि वे आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य करना चाहती है। यदि वह उनके लिए सुरक्षित है तो वह वहॉ कार्य करना पसंद करती है।

तालिका क्र. 02

कार्यक्षेत्र मे सहजता संबंधी विवरण

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	विशेष	16	32.00
2	सहज-सामान्य	32	64.00
3	मुश्किल	02	04.00
		50	100.00

उपर्युक्त तालिका क्र. 02 से स्पष्ट होता है कि जब कामकाजी महिला उत्तरदाताओंसे पूछा गया कि आप अपने कार्यक्षेत्र में कार्य के दौरान कितना सहज रहते है तो 32 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने विशेष बताते हुए आत्मविश्वास के साथ जबाव दिया कि हम अपनी घर परिवार की जिम्मेदारी तो पूरी करते ही है, साथ ही आर्थिक क्षेत्र में भी कार्य कर अपने घर परिवार की जिम्मेदारियों में हिस्सा बटाते है, यह हमारे लिए गर्व की बात है। आज महिलाए

पुरूष से कंधा मिलाकर नही एक कदम आगे निकलने की बात करती है। जबकि सर्वाधिक 64 प्रतिशत ने सहज–सामान्य अपने आप को बताते हुए कहा कि घर की जिम्मेदारियों के पश्चात् हमारे पास समय होता है जिसका उपयोग हम अपने कार्य स्थल में कर लेते है। यहॉ समय का सदुपयोग भी होता है और आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर बनने का मौका भी, जिसका सदुपयोग हम करते है। इसमें कदम आगे या पीछे जैसी कोइ बात नही है। परिवार हम सभी का है जिसे हमें मिल जुलकर चलाना है, जो हम कर रहे है। इन्ही 50 उत्तरदाताओं में 04 प्रतिशत ऐसा भी था जो अपने कार्य स्थल को मुश्किल भरा बताता है और दोहरी भूमि का परिवार और कार्य स्थल में सामजस्य नही विठा पाता है।

तालिका क्र. 03

कार्य स्थल पर शोषण संबंधी जानकारी

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1	हॉ	18	36.00
2	नही	23	46.00
3	मालूम नही	09	18.00
		50	100.00

उपर्युक्त तालिका क्र. 03 से स्पष्ट होता है कि जब कामकाजी महिलाओं से कार्य स्थल पर शोषण संबंधी प्रश्न किया गया तो सर्वाधिक 23 प्रतिशत ने नही में जबाव देते हुए कहा कि अब पुरानी स्थितियां नही रह गई है। नवीन कानून एवं हमारी जागरुकता के कारण अब ऐसा दुस्साहस कोई नही करता है जो कामकाजी महिलाओं की मजबूत स्थिति की ओर इशारा करता है और यह आकडे समाज में महिलाओं की स्थिति सकारात्मक सुधार की ओर इशारा करते है जबकि 36 प्रतिशत महिला उत्तरदायियों ने हॉ मे जबाव देते हुए बताया कि अभी भी हमें दोयम दर्जे का ही मानकर सहकर्मियों द्वारा व्यवहार किया जाता है। हमसे सीधे तो कोई बत्तमीजी नही करता किन्तु दूसरे को माध्यम बनाकर फब्तियां कसी जाती है। हमारी परिस्थितियों में सुधार तो हुआ है किन्तु यह अभी बहुत मजबूत नही है जो हमें स्वतंत्र होकर पूरी क्षमता से कार्य करने हेतु प्रेरित करें। 18 प्रतिशत ऐसी उत्तरदाताओं का रहा जो मालूम नही में अपना जबाव देकर बचना चाहती है कि उनसे और अधिक प्रश्न न किए जाएं जो संदेहास्पद स्थिति को जन्म देता है।

निष्कर्ष -

1. कामकाजी महिलाओं की कार्यस्थल पर स्थिति बेहतर हुई है किन्तु इसका दायरा अभी बहुत सीमित है जो शिक्षा, बैंक या व्यापारिक प्रतिष्ठान तक सीमित हो जाता है।
2. कामकाजी महिलाओं में कार्य करने की इच्छाशक्ति तो प्रायः देखी जा रही है, किन्तु कार्यस्थल पर पहुचना सहजता का प्रायः अभाव देखा जा रहा है। वह अपने आप को सामान्य महसूस न करके विशेष या मुश्किल में पाती है, जो उनके सशक्तीकरण में बाधक सिद्ध हो रहा है।
3. कामकाजी महिलाओं की कार्य स्थल पर शोषण की अवधारणा कमजोर तो होती जा रही है किन्तु वह अभी भी इसका शिकार हो रही है जो उनके उत्तर से समक्ष में आता है। शोषण बन्द हो गया यह कहना अत्यंत मुश्किल कार्य प्रतीत होता है।

सुझाव -

1. महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है और वह भी परम्परागत शिक्षा की बजाए व्यावसायिक शिक्षा, साथ ही कला-कौशल का विकास किया जाना चाहिए, जिससे वह विभिन्न तरह की परिस्थितियों में अपने आपकों न केवल सहज महसूस कर सके बल्कि परिस्थितियों का कड़ाई से मुकावला भी कर सकें।
2. समाज में महिलाओं के प्रति अत्यधिक जन-जागरुकता का प्रचार-प्रसार किए जाने की आवश्यकता है, जिससे उनके पक्ष में एक ऐसा वातावरण तैयार हो सके जिसमें वह खुलकर सांस ले सकें। उन्हे वातावरण में किसी भी प्रकार की घुटन का अनुभव न हों।
3. कानूनी रुप से महिलाओं को अत्याधिक सशक्त बनाने का प्रयास तो किया गया है किन्तु सामाजिक बंधनों में अभी भी व्यावहारिक स्वतंत्रता का नितान्त अभाव देखा जा रहा है, जिसके कारण वह आत्मरक्षा में कानूनी सहायता की भी मांग नही कर पाती है। इसलिए सामाजिक वातावरण में बदलाव की महती आवश्यकता है जो महिला सशक्तीकरण में बाधक नही साधक सिद्ध हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. आर. देसाई (1985) - 'वूमेन्स मूवमेन्ट इन इण्डिया' इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल पीकली खण्ड 20
2. विमला मेहता (1976) - एटीट्यूड आफ एजुकेटेड वीमेन ट्वर्डस सोशल इसूज, देहली, नेशनल पब्लिसिंग हाउस
3. यादव, रमेशचन्द्र (1991)-'मादा उन्मुलन के प्रयास', पुलिस विज्ञान, पुलिस अनुसंधान विकास व्यूरों, नई दिल्ली अंक अप्रैल-जून ,पृ 21,22
4. हसनैन, नदीम(2004) - समकालीन भारतीय समाज,-एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य,भारत बुक सेन्टर17,अशोक मार्ग लखनऊ
5. त्रिवेदी आर.एन. एवं शुक्ला डी.पी (1998)- रिसर्च मैथ्डोलाजी, कालेज बुक डिपो जयपुर

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

नारी अतीत और वर्तमान : संदर्भ भारतीय परिप्रेक्ष्य

• पूजा गर्ग
•• ज्ञानवती अवस्थी

सारांश- नारी प्रकृति का सबसे महत्वपूर्ण कारक है उसे समाज का अनिवार्य तथा महत्वपूर्ण अंग कहा गया है। प्राचीन भारतीय परंपरा में नारी को पुरूष की अर्धांगिनी, सहधर्मिणी माना गया है वह पुरूष की प्रतिद्वदिनी नहीं पूरक है। नारी के बिना पुरूष की जीवन अपूर्ण है। पुरूष के जीवन को सुरम्यता और स्थिरता प्रदान करने वाली नारी है। पौराणिक ग्रंथों में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहकर उसके श्रेष्ठता को स्वीकारा गया है। ''नारी'' शब्द की व्युत्पत्ति पूरक अर्थ की विवेचना करते हुए भाषाविदों ने नारी शब्द के निहितार्थ और गंभीर्य को अभिव्यक्त किया है। संस्कृत साहित्य में 'नारी' शब्द का अर्थ नारी- नुः नरस्य वा धार्म्या।''

मुख्य शब्द- नारी, समाज, अर्धांगिनी, सहधर्मिणी

प्रस्तावना - प्रागैतिहासिक काल सम नारी को अपनी मेधा का प्रमाण देना पड़ा है। नारी ने अपनी प्रबल मेधा का परिचय विभिन्न सूक्तों की रचना करके दी है। ये वैदिक सूक्त परिकृष्त मनीषा वाली समधीत स्त्रियो की एक पूरी परंपरा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते है। ये स्त्रियाँ विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ करने की क्षमता रखती थी। इन नारियों को ब्रम्हवादिनी कहा जाता था। आर्य ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में नारी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था वंणा भृणी कहती है "अहमेव वात इव पर ऐना पृकव्यै तावनी महिमा संवमूव" अर्थात मैं कारण रूप में समस्त विश्व की रचना करती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनो से परे हूँ। भारतीय समाज में जवाला मैत्रेयी, गार्गी और माधवी को आदर्श बनने नही दिया गया, नारी जाति के लिए सीता और सावित्री को आदर्श माना गया। इसका कारण नारी को परिवार तक सीमित रखना था। वैदिक युग में स्त्री की दशा समुन्नत थी। स्त्री का समाज में वही स्थान था जो शरीर में नाड़ी को होता है। शरीर में नाड़ी की तीव्र या मंद-मंद दोनों ही गतियाँ अस्वस्थता की द्योतक हैं। इसलिए चिकित्सा शास्त्र के अनुसार शरीर में नाड़ी का समभाव चलना ही श्रेष्ठ है। वैदिक समाज में नारी की यही स्थित थी। परन्तु उत्तर वैदिक काल तक आते-आते स्त्रियों की दशा उतनी अच्छी नहीं रह गयी। इस विषय में पी.वी कोणे का मत है कि " उत्तर वैदिक काल में स्त्रियाँ नीची दृष्टि से देखी जाती थी। उन्हे सम्पत्ति में कोई भाग नहीं मिंलता था वे आश्रित थी। ''रामायण युग की महान आदर्शवादी नारी सीता जिसके भारतीय संस्कृतिक को इतनी ऊँचाई दी जो आज भी घर-घर पूजनीय है। वह सीता भी अंत में किसी को प्रायश्चित का मौका दिए वगैर आत्मउत्सर्ग का निर्णय लेती है। यह सीता का समाज के प्रति और अपने पति के प्रति प्रतिरोध ही था। मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम लक्ष्मण को शक्ति लगने पर कह उठते है। आदर्श नारी की रूढिबद्ध धारणा शास्त्रीय ग्रंथो ने प्रस्तुत की है। नारी आज भी उस छवि में जीने के लिए अभिशप्त है। इस छवि से वाहर जाने पर उसे कुलता कहा जाता है पुरूषों ने स्त्री को नियंत्रित करने के लिए सारे धर्म ग्रंथों की रचना की, वैदिक युग

• सेवानिवृत्त प्राचार्य म.प्र. उच्च शिक्षा विभाग
•• रीवा, मध्य प्रदेश

में पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं माना जाता था वहाँ पिता पुत्री में पुत्र भाव को प्रारूयापित करता है। और दौहित्र का भी अपन पौत्र समझता है। ''जाय दस्त माधवनत्सेद या नित्वा युक्ता हरयो वहन्तु ऋग्वेद रामायण काल में भी स्त्री को सम्यक भाव वोध कराया जाता था। इसी का परिणाम था कि इस काल में स्त्रियाँ पुरूषों से अधिक शस्विनी चित्रित की गयाी है। परन्तु दूसरी ओर सती प्रथा को इस युग में प्रशयप्राप्त था।

महाभारत काल में एक ओर स्त्रियों को उचित सम्मान दिया जाता था, दूसरी ओर उन्हे अर्मयादित, असंगत जलती हुई आग, माया, उस्तरे की धार, विष और साँप कहा जाता है। ''शासद् बहनि दुंहितु नप्त गंगाद् विद्धंऋतस्य दीघपि सपर्यन ''वौद्ध साहित्य की अनेक जातक कथाओं में नारी के सतीत्व आदर्श को प्रतिष्ठित किया गया है। वही जातक कथाओ में ही उसे हेय माना गया है।'' वोद्ध भिक्षुणिओं को थेरी कहा जाता था उन्होने जो आत्म कथन कहे है वे थेरी गाथा नाम से उपलब्ध है। इन गाथाओं से उनकी सामाजिक स्थित का परिचय मिलता है।

मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य के लिए बुद्ध ने जिस मार्ग का प्रवर्तन किया और निर्वाण की वात की उसमें स्त्रियों के लिए कोई जगह नहीं थी'' वुद्ध वहाँ नही बैठ सकते थे जहाँ स्त्रियाँ वैठी होती थी। मौर्य काल में भी स्त्रियो को पुरूषों की अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त थे। यह ठीक है कि पुरूषो की तरह स्त्रियों को भी पुर्नविवाह का अधिकार प्राप्त था परन्तु वास्तव में यह बहुत कम प्रचलित था। इस युग में कौटिल्य द्वारा लिखे अर्थशास्त्र में तलाक के लिए मोक्ष शब्द का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने लिखा है– यदि कोई पति खूनी है, पतित है या नपुंसक है, बुरे अचार का है, परदेश गया हुआ है, राज्य का द्रोही है तो स्त्री उसका त्याग कर सकती है।'' सहित्य से ज्ञात होता है कि ऊँचे परिवारों और आश्रमों में रहने वाली कन्याएँ इतिहास तथा परम्परा का अध्ययन करती थी। उन्हे इतनी उच्च शिक्षा दी जाती थी कि वे न केवल श्लोक को समझ सकती थीं वल्कि उनकी रचना भी कर लेती थी। यह सत्य है कि नारी सत्ता के शीर्ष पर भले ही कभी अवस्थित नही रही हो लेकिन नीव का पत्थर वे ही रही है अपनी सेवा त्याग एवं परोपकार के बल पर वे सत्त का सहयोग करती रही गुप्त काल जिस भारतीय संस्कृति में स्वर्ण युग के नाम से जाना जाता है साहित्य, कला, संस्कृति सभी क्षेत्रो में उन्नति करने के वावजूद यह काल नारियों के लिए और भी कष्ट के अनुभव का काल रहा। योगिनी और देवदासी के रूप में वह सिद्ध और गुरूओं की यौन तृप्ति का माध्यम बनने लगी। बज्रयान शाखा के प्रभाव में आकर खजुराहों आदि मंदिरों में नारी के नग्न और कामिनी रूप को दर्शाया गया प्रमााण के रूप में अजंता, सत्तन, बंसल और सिगरिया तथा उड़ीसा के मंदिरों की वाहरी दीवारों को दर्शाया जा सकता है। इस तथ्य पर सिमोन द वोउवा की धारणा है कि ''प्रत्येक संस्कृति में या तो स्त्री को या तो देवी रूप में रखा गया या गुलाम की स्थित में।

भारतीय साहित्य का उद्गम स्थल वेद है। वैदिक वाड.मय में नारी के। अधिकांशतः देवी के रूप में चित्रित किया गया है। इस काल में नारी एक अमूल्य रत्न थी, वह गृह संचालन से लेकर हवन–यज्ञादि एवं सैनिक वेश में पति की सहायिका सिद्ध होती थी। ऋग्वेदानुसार माता सर्वाधिक घनिष्ठ एवं प्रिय सम्वन्धी है। अथर्ववेद में आदेश है कि ''माता के अनुकूल मन वाले बनो'' (अथर्ववेद) माता के अतिरिक्त पत्न को भी श्रेष्ठ पद वेद काल में प्राप्त हुआ है। भारतीय साहित्य में नारी का चरमोत्कर्ष उसका माता रूप है। माता पिता के समास में माता शब्द का स्थान ही प्रथम है। ''नयस्य सातुर्जनितोर वारिन मातरा पितरा न चिदिष्टौ'' कालिदास कृत 'रघुवंश' तथा ''अभिज्ञान शाकुन्ल''

भवभूतिकृत ''उत्तर राम चरित'' एवं भट्ट नारायण कृत वेणी संहार'' आदि कृतियों में पत्नी रूप के अतीव उद्दात स्वरूप का चित्रण हुआ है।

अपभ्रंश काल में कवियों ने तत्कालीन नारी का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। अपभ्रंश काल के साहित्यकारो ने नारी सौन्दर्य जो सामन्ती ढंग का है। भिन्न-भिन्न देशो की नारियों के रहन सहन और स्वभाव, नख शिख, यत्किचित नायिका भेद आभूषण सज्जा में योग या भोग से निर्वाण प्रेम का स्वरूप मिलन हाव-भाव, विवाह, गोपी-कृष्ण प्रेम, विरह वर्णन तथा प्रकृति द्वारा विरह मिलन के भावो का उद्दीपन, सुखी घर और सुख में नारी का योग आदि के सुन्दर चित्रण किये है।

नाथ साहित्य में नारी को सांकेतिक अर्थों में चित्रित किया है यदि हमें सांकेतिक अर्थों को दूर रखकर देखे तो हमें इस अनेक काव्यों में लौकिक काव्य शास्त्र, नायक-नायिका भेद स्पस्ट दृष्टिगत होगा सिद्धो में नायिका के स्वकीया रूप का ही आग्रह है। नारी सृष्टि के प्रारंभ से ही सामाज की मुख्य शक्ति रही है। यही कारण है कि 'नारी' ने साहित्य कारो को सदैव से ही आकर्षित किया है। 'नारी' साहित्य का मेरूदण्ड रही है।

आदिकालीन हिन्दी साहित्य में नारी-चित्रण की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न रूपो में हुयी है। आदि काल में सिद्ध एवं नाथ पंथियो के द्वारा नारी को माया का पर्याय बताकर गर्हित तथा हीन प्रतिपादित किया जा रहा था। दूसरी ओर चारण कवि आदि उसकी कामनीयता और रूप सज्जा का मुग्धकारी वर्णन करके उसे विलासिता के चरम माध्यम के रूप में चित्रित कर रहे थे। रासो एवं अन्य वीर गाथात्मक काव्यो में प्रसंगता कन्या अथवा माता रूप में भी नारी का चित्रण हुआ है। इस युग के काव्यो में वेश्याओ परकीया नायिकाओ और प्रमदाओ के ऐसे चित्र अंकित है जो नारी की प्रतिष्ठा को छति पहुचाने वाले है। वैसे इस युग में पृथ्वीराज रासो की नायिका इतिहास की प्रथम ऐसी नायिका है जिसके रूप गुण का वर्णन कवि ने चातुर्यपूर्ण ढंग से किया है।

पृथ्वी राज रासो में राजपूत सामंतो के अदम्य साहस, शूरता, प्रतिज्ञा पालन के साथ-साथ वैभव-विलास, क्रीड़ा-विनोद तथा उनकी स्त्रियों की पवित्र धार्मिकता, पतिपरायणता, उच्च कर्तव्य भावना और हँसते-हँसते ज्वालाओं का आलिंगन करने की उत्कंठ उत्सुकता के सजीव चित्र हमें मुग्ध कर लेते हैं। इस ग्रंथ की रचना नरपति नाल्ह ने 1212 वि.स. में की थी। इस ग्रंथ में परमार राजा की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान राजा वीसल देव की कथा का वर्णन है। राजमती से रूष्ट होकर राजा उड़ीसा चला जाता है। राजमती बारह वर्ष तक उसका इन्तजार करती है, कभी वह अपनी परवशता को कोसती है, कभी राजमहल की दीवारों को एक स्त्री की सामन्ती जीवन के प्रति गहरी अरूचि का चित्रण 'वीसल देव रासो' में मिलता है इसमें कुलीन गृहणी का स्वभिमान है। वह पति से वचन कहती है जो उसकी जो उसकी विरह वेदना का आधार बन उसे विवशता तक पहुँचाता है।

उपस्त्री जनम काई दीघउ महेश
अवसर जनम धाराई घणा रे नटेश।।

विद्यापति ने नारी को विभिन्न दृष्टि कोणों से निरखा परखा है। उन्होने वयः संधि नखसिख वर्णन, सद्यः स्नातः मिलन, प्रेम प्रसंग, विढग्ध विलास, अभिसार, प्रकृति तथा विरह मिलन आदि का चित्रण किया है। हिन्दी साहित्य के आदि युग में डिंगल काव्य की चारण गाथाओं में नारी केवल भोग्या ही रह गयी। नारी के वीरत्व का परिचय भी यत्र-तत्र मिल जाता है। आदि युग के धूमिल पद पर नारी एक उज्जवल आभा सी प्रतीत होती है।

आदिकालीन नारी का उज्जवल पक्ष प्रमुखतया दो रूपो में चित्रित है। प्रथम वीरांगना रूप में तथा द्वितीय आदर्श सती के रूप में वीर काव्यों में चित्रित उत्साही बलिदानी एवं प्रबल पराक्रमी योद्धाओं की प्रेरण दायनी शक्ति के रूप में माता पत्नी अथवा भगिनी रूपानीरी का वर्णन अन्ततोगत्वा इस युग में नारी महिमा की अक्षुण्णता बनाये रखने में समर्थ हुआ है।

रासो ग्रंन्थ एवं आल्ह खण्ड आदि वीर गीत काव्यो को अतिरिक्त सूर्यमल्य एवं वंकीदास कृत मुक्तक वीर काव्य में इस प्रकार की वीरागना नारियो के अनेक चित्र प्राप्त है। अब्दुल रहीम तथा विद्या पति कृत वीरतेर काव्यों में अधिकांशतया नारी के प्रेमिका रूप का अंकन हुआ है। यह चित्रण प्रेम तत्व की सूक्ष्मता को समझने में अधिक सहायक हुआ है। यह नारी के विभिन्न रूपों को उद्घाटित नहीं करता है। नारियों के प्रति दृष्टिकोण और व्यवहार विभिन्न युगों की सामाजिक संरचना एवं परिस्थियों के परिपेक्ष्य में बदलते रहते हैं। नारी के प्रति काल विशेष में समाज का दृष्टिकोण चाहे जितना भी परिवर्तनोमुख रहा हो किन्तु एक वात सच है कि कन्या पत्नी और माता के रूप में नारी भारत भूमि से सदा वात्सल्य स्नेह और श्रद्ध का भाजन रही है।

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक काल से लेकर अभी तक नारी की स्थिति में अनवरत परिवर्तन होते रहे हैं। वैदिक काल में नारी को समाज में उच्च दर्जा प्राप्त था। वह वेद वादिनी होने के साथ-साथ एक कुशल सैनिक भी थी। परन्तु आदि काल में वह स्थिति नही रह गयी इस काल में सती प्रथा प्रचलित हो गयी थी। गुप्त एवं मौर्य काल में उच्च घराने की स्त्रियो को छोड़ दे तो औरो की स्थिति सामान्य थी। रीतिकाल में स्त्री की दशा दयनीय थी उन्हे केवल उपभोग की वस्तु समझा जाता था। इसकाल में कवियों ने अपनी रचनाओ में नारी के कामिनी रूप का ही चित्रण किया है। मुगलों के प्रभाव रूप का ही चित्रण किया है। मुगलों के प्रभाव के कारण स्त्री को पर्दे में रखा जाने लगा जो आज भी प्रचलित है। भक्तिकाल में भी नारी की स्थित में अधिक परिवर्तन नही आया, कबीर व तुलसी जैसे महान कवियों ने भी उनके प्रति उदार भाव नहीं दिखाये।

इस काल की मीराबाई ने अपनी जो बाते समाज के सामने कही उसके लिए उन्हे अपने परिवार समाज का बहुत विरोध झेलना पड़ा। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में नारियों के स्वाभाविक जीवन संदर्भो में बदलाव दिखने लगा। हिन्दी साहित्य जगत में महादेवी वर्मा एक अभिनव क्रांतिदर्शी बदलाव लेकर आयी। जिन्होने भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों की धुधली रेखओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। ''अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से ही असहिष्णु हूँ अतः इस निबंधो में उग्रता की गंध स्वाभाविक है परंतु ध्वंस के सिद्धांत पर कभी मेरा विश्वास नहीं रहा।'' छठे दशक के वाद साहित्य जगत में लेखिकाओं का तेजी से प्रवेश हुआ इन लेखिकाओं ने नारी की महत्ता को आकार प्रदान किया, उन्होने आधुनिक नारी की जागृतावस्था का संकेत दिया। 'उषाप्रियंवद के प्रस्तुतीकरण में शिष्टता, भावाभिव्यक्ति में वैचारिक गरिमा, भावुकता में वौद्धिक अनुशासन और सर्वत्र शिक्षित सन्तुलित दृष्टि दिखाई देती है आधुनिक जीवन की अब, छटपटाहट, संत्रास और अकेलेपन की स्थितियो को अनुभूति स्तर पर पहचान कर उसे व्यक्त करने वाली ऊषा प्रियंवदा एक सशक्त लेखिका है। मानव जिन्दगी को चित्रो की भाषा तथा सार्थक प्रतीकों के माध्यम से चित्रित करने वाली मन्नू भण्डारी आधुनिक हिन्दी साहित्य की स्तम्भ स्वरूप लेखिका है। मन्नू जी की द्दष्टि निरन्तर परिवेश की यर्थातता पर केन्द्रित रहती है। इनके उपन्यासो में नारी मन में उठने वाली शंकाओं, ईर्ष्याओं आदि का सफल चित्रण होने के साथ ही सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं को अत्यन्त सफलता पूर्वव रेखांकित किया गया है। 'मृदुला गर्ग' वर्तमान उपन्यास लेखिका है। पति पत्नी के बीच दाम्पत्य के जलते धुंधलाते बनते बिगड़ते आपसी रिश्तो के तेवर पर बहुत ही बेलाग और बेलौस तरीके से 'मृदुला गर्ग' ने अपनी लेखनी चलाई है। ''मैत्रेयी पुष्पा'' के उपन्यास 'इदन्नमम' की नायिका प्रेम में डूबी होने के पश्चात् भी

असफल प्रेम की शिकार है। अत: अकेली अपने पैरो पर खड़ी है इस नायिका में जीवन है, साहस है, महत्वकाँक्षा है, जुझारू व्यक्तिव है।

'नसिरा शर्मा' की नायिका माहयख रफत के आचरण से पैदा कटुता की प्रतिक्रिया में अपने पूरे जीवन को विखर जाने देती है। लेकिन अन्तत: उसे अर्थहीन विखराव और टूटन की विकल्प के रूप में स्वीकार होता है। 'ठीकरे की मगनी' मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिती और रूढ़ियो भरे माहौल की घुटन से बाहर निकलने के संघर्ष को इस उपन्यास में विश्लेषित किया गया है। ममता कालिया ने अपने उपन्यासो में नारी परिवेश को चित्रित किया है। पति पत्नी के आंतरिक सम्बन्धों में कब भटकाव तथा कब स्थिरता आती है इसको बहुत ही सूक्ष्मता से विश्लेषित किया है। कथा साहित्य में आधुनिक समाज की विडम्बनाओं, भ्रष्टाचार एवं अनैतिक कार्यो की वेवाकी से अभिव्यक्त करने की क्षमता तथा अनुभूति के साथ-साथ यथार्थ पक्ष को भी अपने उपन्यासों में कृष्णा सोबती ने बहुत ही कौशल पूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया है।

यह कहना अन्यथा न होना कि वर्तमान कथा सृजन में पुरूष रचनाकारों की अपेक्षा महिला रचनाकारों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. दुर्गा सप्तसती,चौखम्भा प्रकाशन वराणसी
2. दुर्गा सप्तसती ,चौखम्भा प्रकाशन वराणसी
3. रामचरित मानस ,गो.तुलसी दास गीता प्रेस गोरखपुर
4. ऋग्वेद ,चौखम्भा प्रकाशन वराणसी
5. ऋग्वेद ,चौखम्भा प्रकाशन वराणसी
6. वी.डी. महाजन, वौद्ध धर्म प्राचीन भारत का इतिहास
7. स्त्री-उपेक्षित, सिमोन द वोउवा
8. अथर्ववेद, चौखम्भा प्रकाशन वराणसी
9. ऋग्वेद, चौखम्भा प्रकाशन वराणसी
10. डॉं. नगेन्द्र, आदिकाल हिन्दी साहित्य का इतिहास
11. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

मनरेगा राष्ट्रीय स्तर पर चलाई गई योजनाः एक विश्लेषण

• स्मृता कुमारी

सारांश- मनरेगा समाज के निर्धन और वंचित वर्गो के उत्थान के लिए समर्पित एक ऐसी योजना रही है, जिसका उद्धेश्य गरीबी को खत्म करना है अर्थात-गरीबी रेखा के नीचे रखने वाले को गरीबी से उबारना ही इस कार्यक्रम का मूल उद्धेश्य है ऐसे लोगों को जीविका का अवसर उनके घरों के पास ही सुनिश्चित कर भारत निर्माण का कार्य करना है। जीविका का आधार यदि सहज रूप से गाँवों में ही उपलब्ध हो तो राज्यों से पलायन की समस्या कम हो सकती है, तथा जनसंख्या का दबाव किसी एक राज्य पर भी नहीं पड़ेगा। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम अर्थात मनरेगा को भारत सरकार द्वारा वर्ष २००५ में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 के रूप में प्रस्तुत किया गया था 2010 में नरेगा का नाम बदलकर मनरेगा कर दिया गया।

मुख्य शब्द- मनरेगा, नियोजन, परिषद, समाजिक लेखा परीक्षण, निर्धनता रेखा, लूट फॉर वर्क, कुशल एवं अर्द्ध कुशल श्रमिक

प्रस्तावना - राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना राष्ट्रीय स्तर पर 2 फरवरी 2006 से चलाई गयी। यह एक ऐसी योजना है जिसमें बेरोजगार ग्रामीणों को रोजगार प्राप्त करने का कानूनी अधिकार है। यह योजना 7 सितम्बर 2005 को अधिसूचित की गयी तथा 2 फरबरी 2006 से इसको प्रारम्भ किया गया। इस योजना के प्रारम्भ में देश के 200 चयनित जिलों के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक परिवार के वयस्क सदस्यों को वर्ष मे 100 दिनो तकम अकुशल श्रम वाले रोजगार प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया। 2007-2008 में यह 330 जिलों में प्रारम्भ हो गया।

वैसे तो राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार को विभिन्न विवादों से होकर गुजरना पड़ा परन्तु इन आलोचनाओं के बावजूद राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना को ग्रामीणों के हित में चलाई गई राष्ट्रीय स्तर पर पहली सशक्त योजना का सम्मान प्राप्त है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में पिछली योजनाओं की अपेक्षा बेहतर प्रावधान किए गए हैं जैसे प्राकृतिक आस्तियों के निर्माण (मिट्टी और जल बचाव) पर खर्च के महत्व को प्रतिपादित किया जाना और इस हेतु ग्रामीण स्तर पर योजना बनाने को अनिवार्य किया जाना एवं चुनी हुई पंचायतों को लोक निर्माण कार्यो के लिए शासकीय विभागों से वरीयता देते हुए उत्तरदायी बनाना। इसके साथ-साथ नरेगा का महत्व इस तथ्य में निहित है कि इसका संचालन अनेक स्तरों पर होता है। यह संवेदनशील वर्गों को ऐसे वक्त रोजगार उपलब्ध कराता है जब उनके लिए रोजगार के दूसरे साधन उपलब्ध न हो या कम हो गये हों। यह योजना गरीबी की समस्या के निवारण में मददगार साबित हो रही है और लगातार रोजगार सृजन की प्रक्रिया में जारी है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना के उद्धेश्य- इस योजना के कई उद्धेश्य है।

1. ग्रामीण क्षेत्रों के प्रत्येक परिवार को कम से कम एक सदस्य के लिए 100 दिन का गारंटीकृत रोजगार प्राप्त करने के प्रावधान न्यूनतम मजदूरी पर किया गया। साथ ही साथ मांग करने के 15 दिन के अन्दर काम उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया, और यदि

• श्री कृष्णनगर, बेगूसराय

किसी कारणवश निश्चित समय पर काम उपलब्ध नहीं कराया जाता तो बेरोजगारी भत्ते के रूप में न्यूनतम मजदूरी का एक तिहाई मजदूरी दिये जाने का प्रावधान किया गया।

2. इस योजना मे सार्वजनिक निर्माण कार्य में लगे श्रमिकों को चिकित्सा प्रदान कराने की सुविधा प्राप्त होगी।

3. मजदूरी का 5 प्रतिशत कल्याण योजनाओं जैसे स्वास्थ्य, बीमा, दुर्घटना, मातृत्व लाभ आदि उपलब्ध कराने की भी प्रावधान किया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कानून की मुख्य विशेषताएं-

1. **आधिकारिता पर आधारित-** यह योजना गरीबों को यह अपने विशेषाधिकार की मांग को प्रेरित करता है। जैसे न्यूनतम मजदूरी की मांग बेरोजगारी भत्ते की मांग के साथ ही साथ गांव के वयस्क व गैर हुनर लोग जो काम करने के इच्छुक है और लिखित मौखिक रूप से ग्राम पंचायत में अपना नाम दर्ज करा चुके हैं उन्हे उनकी दरख्वास्त की उचित जांच-पड़ताल के बाद जाँब कार्ड जारी किया जाता है जिस पर घर के सारे, व्यस्कों के नाम रहेगें। इसके अतिरिक्त जितने लोगों को काम दिया जाएगा उनमें से कम से कम एक तिहाई महिलायें ही होगी।

2. **समय-सीमा का विशेष महत्व-** इस योजना में समय सीमा पर विशेष महत्व दिया गया है। जिसमे ग्राम पंचायत रोजगार संबंधी लिखित दरख्वास्त की तारीख के साथ प्राप्ति रसीद जारी करेगी। इस रसीद की प्राप्ति के 15 दिनो के भीतर उसे काम दिया जाता है तथा आमतौर पर काम गांव के 5 किलोमीटर के दायरे में उपलब्ध कराया जाएगा। उससे अधिक दूरी होने पर 10 प्रतिशत की दर सेस अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी।

3. **राज्य व केन्द्र द्वारा मदद-** इस योजना में राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा विभन्न मदों की लागत के खर्च का प्रावधान किया जाएगा।

1. गैर-हुनरमंद श्रमिकों की मजदूरी की पूरी लागत।
2. कुशल और अर्द्ध कुशल श्रमिकों की मजदूरी।
3. केन्द्र सरकार द्वारा तथा प्रशासनिक खर्च इसमें प्रोग्राम अफसर, उनके सहायक कर्मी तथा निर्माण स्थल पर उपलब्ध सुविधाओं के लिए जाने वाले वेतन तथा भत्ते शामिल है।
4. राष्ट्रीय रोजगार गारंटी परिषद का खर्च।
5. राज्य सरकार द्वारा समय पर मजदूरी अर्जन वाला उपलब्ध न कराने पर दिया जाने वाला बेरोजगारी भत्ता।
6. राज्य नियोजन गारंटी परिषद का प्रशासनिक खर्च।

4. **सामाजिक लेखा परीक्षण का गुण -** सरकारी कार्यक्रमों को सुचारू रूप से चलाने के लिए इसमें पारदर्शिता तथा जबावदेही कायम रखने का विशेष महत्व है इस पारदर्शिता व जबावदेही को कायम करने के लिए सामाजिक लेखा परीक्षण एक प्रभावकारी औजार के रूप में उभर कर सामने आया है। लेखा परीक्षण की आवश्यकता हर क्षेत्र में महसूस की जा रही है।

अतः राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना ग्रामीणों के विकास के लिए केन्द्र द्वारा चलाई गई एक ऐसी योजना है जिसमें पारदर्शिता व जबावदेही कायम रखने के लिए समाजिक लेखा परीक्षण जैसे प्रावधान किये गये हैं। इस पारदर्शिता तथा सामाजिक लेखा परीक्षण के भ्रष्टाचार जैसे अनैतिक कार्यो मे कमी दर्ज की गई है। वैसे तो यह योजना निर्धनता रेखा से नीचे रहने के लिए एक वरदान के रूप मे उभर कर सामने आई और सर्वव्यापक रूप से सम्पूर्ण ग्रामीण क्षेत्रों में फैल गयी परन्तु इसके साथ-साथ इसमें भ्रष्टाचार के कछ झलक भी देखने को मिलें। जिसकी मुख्य वजह ग्राम सभाओं का भ्रष्ट होना था।

जिसने सम्पन्न वर्गो के दबाव में आकर सूची में निर्धन परिवार के स्थान पर गैर निर्धन परिवारों का उल्लेख किया। जहाँ तक भ्रष्टाचार की बात है जो भ्रष्टाचार की झलक " काम के बदले अनाज कार्यक्रम" में इतनी व्यापक थी कि एक व्यक्ति ने टिप्पणी करते हुए कहाँ कि " यह लूट फॉर वर्क प्रोग्राम है"

परन्तु नरेगा में भी भ्रष्टाचार के कुछ अंश मौजूद रहे है फिर भी पहले की अपेक्षा नरेगा से भ्रष्टाचार में कमी आई है। यह सफलता सामाजिक लेखा परीक्षण द्वारा सम्भव हुई है। इसलिए सरकारी कार्यक्रमों में समाजिक लेखा परीक्षण एक कठोर कदम है। एक प्रभावशाली और अन्तिम हिस्सा है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना जिसे 2 फरवरी 2006 को प्रथम चरण में 200 जिलों में लागू किया गया। इसका लाभ मुख्य रूप से ग्रामीण गरीबों को मिला। 2006-07 में यह संख्या 127 प्रतिशत थी।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना यू.पी.ए. की सरकार के घोषणानुसार 2008 से सम्पूर्ण देश में लागू कर दी गई है। इस योजना की सफलता के लिए केन्द्र सरकार ने एक नियमावली बनाई है। केन्द्र के अनुसार सभी राज्य सरकारों को अपने-अपने राज्यों में भी इसके लिए नियमावाली बनानी है।

नरेगा के कुछ मुख्य काम- कुछ मुख्य कार्यो को आधार मानकर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कानून की नींव रखी गयी वे प्रमुख कार्य निम्न है-

1. जल संरक्षण
2. सूखा रोकने वाला काम
3. सिंचाई नहर
4. लघु सिंचाई बागवानी तथा भूमि विकास यह भूमि अनुसूचित जातियों अनु-जनजातियों (गरीबी रेखा के नीचे) आई ए वाई तथा भूमि सुधार के लाभार्थियों की होनी चाहिए।
5. पारंपरिक जल निकायों का जीर्णोद्धार
6. बाढ़ नियंत्रण
7. भूमि विकास
8. ग्रामीण संपर्क मार्ग

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून देश के डेढ़ करोड़, ग्रामीण गरीबों को बैकों मे अपना खाता खोलने का अवसर मुहैयया करा चुकी है। इस वक्त देश के 330 जिलों के तीन करोड़ 37 लाख परिवारों को इस योजना में काम मिल चुका है। इसके साथ-साथ जल संरक्षण और भूमि विकास के क्षेत्र में बहुत काम हुए हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों में नरेगा के परिणाम- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कानून के तहत श्रमबल में जिलावार और राज्यवार पर्याप्त अंतर पाया जाता है सारे जिलों में एक ही तरह की श्रमिक मांग और मांग का स्तर नहीं होता। जनवरी 2008 के मध्य तक महत्वपूर्ण परिणाम निम्न है-

ग्रामीण श्रमिक बल के वृद्धित रोजगार के सुअवसर- इसका मकसद रोजगार तथा रोजगार सृजन के सुअवसर में वृद्धि करना रहा है। 2006-07 में यह संख्या 127 प्रतिशत रही।

अधिक मजदूरी का अर्जन- 2007-08 वित्तीय वर्ष के फरवरी माह के अंत तक कुल 12,692,65 लाख रूपये खर्च किए गए, जिसमें 8,593 करोड़ 53 लाख मजदूरी के रूपये में भुगतान किया गया।

उत्पादक परिसंपत्ति का सृजन- 2006-07 में करीब 8 लाख निर्माण कार्य हाथ में लिये गए,

इनमें से 5 लाख 30 हजार काम जल संरक्षण, सिचाई, सूखा रोकने तथा बाढ़ नियंत्रण संबंधी निर्माणकार्यों से संबंधित थे,

बिहार में नरेगा- राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना से बिहार में ग्रामीण गरीबों में नवीन आशा का संचार हुआ और बिहार ग्रामीण ये सोचने लगे की उन्हें अब सम्मान जनक काम मिल जायेंगें परन्तु वर्ष 2007-08 में दिसम्बर 2007 तक सौ दिनों का रोजगार मात्र 0.98 प्रतिशत को ही दिया गया। वहीं अलग जिले में 5.4 प्रतिशत निधि का उपभोग करके रोजगार हेतु मात्र 1.6 लाख कार्यदिवस सृजित किए गए, नवादा जिले में यह दर 87.33 रही परन्तु पूरे राज्य के स्तर पर यह दर 41.11 प्रतिशत रही।

इस प्रकार से मनरेगा के परिणाम बिहार में सम्मानजक नहीं है। लखीसराय जिलों के ग्रामीणों की ये शिकायत है कि नरेगा का काम यहां मजदूरों की जगह मशीनों से करवाया जाता है इसके अतिरिक्त बिहार में रोजगार गारंटी कानून के तहत महिलाओं के लिए, रोजगार की कोई व्यवस्था नहीं है।

उत्तर प्रदेश में रोजगार गारंटी कानून- यह कानून पूर्व के सभी कानूनों से इस मायने में भिन्न है कि यह कानून रोजगार का कानूनी हक प्रदान करता है। भारत सरकार का यह प्रयास सभी राज्यों में रोजगार गारंटी अधिनियम में एकरूपता प्रदान करने के लिए एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

उत्तर प्रदेश में जनपद सोनभद्र उत्तर प्रदेश का एक बहुत ही पिछड़ा व अशिक्षित क्षेत्र है। जिसके कारण यहाँ के निवासी सरकार द्वारा विकास हेतु चलाये जाने वाली विभिन्न योजनाओं से अनजान है और इसलिए वे इसका लाभ नहीं उठा पा रहे हैं। सोनभद्र जनपद के अधिकांश मजदूर अशिक्षित व अनपढ़ होने के कारण अपना आवेदन स्वयं करने में असक्षम हैं। परिणाम यह होता है कि यहाँ के प्रधान अपने लोगों से मनमाने ढंग से काम करवाते हैं। मजदूरों से काम लेते अधिक है और कार्य दिखाते कम हैं। कुछ स्थानो पर मजदूरों को मजदूरी कम लिती है। मजदूरों एंव ग्रामीणों को अपने अधिकारों के बारे में जानकारी न होने के कारण ही उनका हर स्तर पर शोषण होता है जैसे-न्यूनतम मजदूरी मजदूरों को कम मिलता है।

उड़ीसा में नरेगा- उड़ीसा में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कानून एक मुख्य विवेचना का विषय बन बया क्योंकि यहाँ बड़े पैमाने पर सरकारी राशि का गबन हो रहा है। पश्चिम उड़ीसा के तीन जिला बोलनगीर , बौध और कलाहांडी जैसे क्षेत्रों में इसकी असफलता की झलक नजर आई।

उड़ीसा में नरेगा की परदर्शिता संबंधी उपायों का खुल्लम खुल्ला घोखाधड़ी पर आधारित अपवंचना का यह चरम उदाहरण है। नरेगा के अभिलेखों में सांजस्य बिठाने के अपने सुरक्षित भूल-भुलैया है। उड़ीसा मं जॉब कार्डों का वितरण अपूर्ण रहा है। यद्यपि उड़ीसा में आज नरेगा की छवि थोड़ी धुंधली दिखाई पड़ रही है।

आंध्र प्रदेश में नरेगा- आंध्र प्रदेश मं राजनितिक पदाधिकारी ने इसे अच्छी मॉनिटरिंग के साथ अपनाया है। आंध्र प्रदेश की सरकार ने नरेगा के सामाजिक लेखा परीक्षण को पूरे राज्य में सफलता के साथ लागू किया।

इस राज्य में नरेगा के लेखा परीक्षण रिर्पोट एक अच्छी बेवसाईट भी तैयार की और इससे संबंधित कुछ नियम भी तैयार किये अर्थात आंध्र प्रदेश ही मात्र एक ऐसा राज्य है जहाँ

नरेगा से संबंधित प्रक्रिया को संस्थागत रूप दे दिया गया। यहाँ 13 जिलों के अंतर्गत 500 मंडलों में 30,000 ग्रामीण सामाजिक लेख परीक्षण को इस सामाजिक लेखा परीक्षण के कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित किया गया। साथ ही साथ गड़बड़ी वाली एक करोड़ रूपये से भी ज्यादा वसूली की गई।

मनरेगा पर ज्यादा सरकारी धन खर्च- मनरेगा देश की सबसे बड़ी योजना है जिस पर केन्द्र सरकार 40-42 हजार करोड़ रूपये सलाना खर्च करती है इसके मकसद के बारे में सभी जानते हैं, यह वह कानून जो शासन को इस बात के लिए बाध्य करती है, किसी आयु 18 वर्श से अधिक हो उन्हे 100 दिनों के रोजगार की गारंटी दी जाये।

मनरेगा शुरू में नरेगा के नाम से जाना जाता था परंतु 2 अक्टूबर 2009 को महात्मा गांधी की जयंती पर इसका नाम बदलकर मनरेगा कर दिया गया, 25 अगस्त 2005 को लागू कानून का पूरा पूरा लाभ सभी तक पहुँचना सरकार के लिए एक बड़ी चुनौतियाँ थी जिसे आज भी पूरी तरह से पूरा नहीं किया जा सका हैं।

समीक्षा - नरेगा 2 फरबरी 2010 को अपने चार साल पूरे किये इन चार सालों में नरेगा ने बहुत ही उतार चढ़ावों का सामना किया है । जैसे सभी योजनाओं को समस्याओं के साथ-साथ कहीं सफलता का समना करना पड़ता है उसी प्रकार नरेगा को भी कई समस्याओं के साथ-साथ किसी क्षेत्र मे सफलता व किस क्षेत्र मे असफलताओं से जुझना पड़ा।

नरेगा के समर्थन का तात्यर्प्य यह नहीं कि इसकी हर चीज सही है। हलांकि योजना की अच्छ्छाई व बुराई का मतलब यह नहीं की योजना ही गलत है बल्कि उसे चलाने वा लागू करने के तरीके पर योजना की सफलता व असफलता निर्भर करती है।

अतः राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना ने ग्रामीण गरीबों में आशा का संचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और इसलिए आलोचनाओं के बावजूद राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कानून को एक अग्रणी कानून के रूप से स्वीकार किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

- टाईम्स ऑफ इंडिया 2 जुलाई 2005।
- संग्रहित प्रति मूल से 21 जून 2012 को पुरालेखित अभिगमन तिथि 13 अक्टूवर 2010
- बॉटल फार रोजगार गारंटी "द हिन्दू"2009
- मनरेगा के बारे में ''प्रभात खबर'' 2013

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

समकालीन मीडिया में विश्वसनीयता का प्रश्न एवं भारतीय लोकतंत्र पर प्रभाव

● संजय वर्मा

सारांश- जन-संचार माध्यमों का भारत में जिस गति से फैलाव हो रहा है उसी गति से उसकी विश्सनीयता पर प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं। सोशल मीडिया का प्रभाव बढ़ने से जन-संचार माध्यमों पर खबरों की विश्वसनीयता और तथ्यात्मक सत्यता पर अत्यधिक दबाव है। मीडिया की गिरती साख एवं उस पर उठ्ते सवालों के लिए मीडिया मालिकों का खबर से ज्यादा टी.आर.पी. व विज्ञापन पर जोर देना है तो दूसरी ओर पत्रकारों द्वारा तथ्यों से छेड़छाड़ व पार्टी लाइन के आधार पर रिपोर्टिंग करना है। इन सब का भारतीय लोकतंत्र और जनमानस पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है एवं समकालीन परिस्थितियों में विश्वसनीयता का प्रश्न भी खड़ा हो गया है। इस उपरोक्त आलोक में, लोकतंत्र पर इसका क्या असर हो रहा है, और इसका क्या समाधान हो सकता है? इस संदर्भ में प्रस्तुत शोध पत्र को आगे बढ़ाया जाएगा।

मुख्य शब्द- लोकतंत्र, जनमत, लोकसत्ता, राजनीतिक व्यवस्था, लोकतांत्रिक सरकार

प्रस्तावना - कुछ वर्षों से दुनिया भर में विश्वसनीयता और स्वतंत्रता के मानकों पर भारतीय मीडिया की छवि में लगातार गिरावट जारी है। हालत यह है कि 2018 में 'रिपोटर्स विदाउट बाडर्स' के अध्ययन में भारत के मीडिया को 138 वें स्थान पर रखा गया। यही नहीं वर्तमान में (2020) 'प्रेस स्वतंत्रता इंडेक्स में 180 देशों की सूची में उसका स्थान और गिरकर 142 वें क्रमांक पर आ गया है।'[1] कहीं 'उसे 'प्रेस्टीच्यूट' कहकर बदनाम किया जा रहा है तो कहीं 'गोदी मीडिया' कहकर।'[2] सोशल मीडिया इस संकट को और अधिक गहरा करने में योगदान दे रहा है। दुनिया-भर में प्रेस स्वतंत्रता खतरे में दिखाई देने लगी है। जबकि मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। लेकिन अब लोकतांत्रिक देशों में भी उसकी विश्वसनीयता पर सवाल खड़े किए जा रहे हैं। यहाँ तक कि पिछले कुछ वर्षों में, अन्य लोकतांत्रिक देशों में भी, मीडिया को अविश्वास के नजरिए से देखा जाने लगा है। उसे लोकतंत्र में सूचना का माध्यम या सरकारी नीतियों की आलोचनात्मक विवेचना का वाहक समझने के बदले राजनीतिक दलों और राजनीतिज्ञों के पक्षकार के रूप में देखा जाने लगा है। पत्रिका प्रभा साक्षी में प्रोफेसर संजय द्विवेदी लिखते हैं कि 'इस समय का संकट यह है कि पत्रकार या विशेषज्ञ तथ्यपरक विश्लेषण नहीं कर रहे हैं, बल्कि वे अपनी पक्षधरता को पूरी नग्नता के साथ व्यक्त करने में लगे हैं। ऐसे में सत्य और तथ्य सहमे खड़े रह जाते हैं। दर्शक अवाक रह जाता है कि आखिर हो क्या रहा है। एक ओर परम्परागत मीडिया समाचार का पहला स्रोत नहीं रह गया है और दूसरी ओर आमदनी गिरने से रिपोर्ट पर रिसर्च के संसाधन कम हुए हैं। नतीजा दुनिया भर में मीडियाकर्मियों की संख्या में कटौतियों और अखबारों की बिक्री में कमी के रूप में सामने आ रहा है।'[3]

मीडिया अनुसंधान कार्यशैली - अनुसंधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यवस्थित संग्रह, विश्लेषण और आंकड़ों की व्याख्या के माध्यम से समस्याओं का सुव्यवस्थित समाधान खोजा जा सकता है। यह तथ्यों का विश्लेषण करने, वर्गीकृत करने या फिर मात्रात्मक या

● सहायक प्राध्यापक अंग्रेजी विभाग, किरोड़ी मल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

गुणात्मक तरीके से एकत्रित या व्यवस्थित करने का एक तरीका है। इसलिए मीडिया के संदर्भ में जब हम शोध करते हैं तो हम यह पता लगाने की कोशिश करते हैं कि मीडिया कैसे कार्य करती है? मीडिया की प्रकृति क्या है? मीडिया का व्यक्ति, समाज, राज्य, सत्ता व लोकतंत्र पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस प्रकार मीडिया शोध का मुख्य उद्देश्य 'सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और भौतिक पहलुओं' का अध्ययन करना है जिससे मीडिया की विश्वसनीयता में गुणात्मक वृद्धि की जा सके। इसलिए प्रस्तुत शोध लेख भी इसी आलोक पर आधारित है जिसमें 'तथ्यात्मक', 'अवलोकनात्मक', 'व्याख्यात्मक', 'संज्ञानात्मक' भाषा विज्ञान व ऐतिहासिक शोध विधि के साथ-साथ आगनात्मक शोध तकनीक के माध्यम से भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की आलोचनात्मक भूमिका का मूल्यांकन कर मीडिया की लोकतंत्र में सकारात्मक भूमिका की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

जनमत, लोकतंत्र और मीडिया - जनमत या लोकमत जनता की राजनीतिक इच्छा का दूसरा नाम है। यह सभी लोकतांत्रिक सरकारों की आजीविका का प्राणधार है। डेविड ह्यूम ने अपनी रचना 'द फर्स्ट प्रिंसिपल ऑफ गवर्मेंट' में लिखा है कि 'सभी सरकारें चाहे वे कितनी ही नकारात्मक क्यों न हो अपनी शक्ति के लिए जनमत पर निर्भर करती हैं।'[4] लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिकों के भागीदारी के जो तरीके होते हैं, इनमें से जनमत सबसे बेहतर व आसान तरीका है। हम देखते हैं कि लोग अक्सर राजनीतिक दलों, नेताओं और उम्मीदवारों पर हो रही चर्चा में शामिल होते हैं और विभिन्न विषयों और मुद्दों पर अपनी राय व मत व्यक्त करते हैं। वे ऐसा विभिन्न माध्यमों जैसे, रेल या बसों में यात्रा करते हुए या अन्य सार्वजनिक स्थानों के साथ-साथ अन्य माध्यमों से भी करते हैं। इन सभी माध्यमों से व्यक्त विचार ही 'जनमत' होते हैं, जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों एवं आयामों को प्रभावित करते हैं। जैसे 'मत-व्यवहार', 'सरकार' और 'प्रशासन' आदि की कार्य प्रणाली। 'किसी भी व्यापक और विविध समाज में जनमत की कोई स्पष्ट अवधारणा निर्धारित करना संभव नहीं हैं, परंतु यह कहा जा सकता है कि किसी भी विषय पर व्यक्तिगत विचारों, दृष्टिकोणों और विश्वासों से समान बिंदु और उनकी सामूहिकता ही जनमत है एवं मीडिया इस सामूहिकता को अभिव्यक्ति प्रदान करती है और इससे भी जनमत प्रभावित होता है।[5]

लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था में 'सत्ता' का अंतिम स्रोत जनता के हाथ में होता है अर्थात् इसमें जनता की सहमति की आवश्यकता होती है। इस व्यवस्था में निर्णय जनता के लिए किए जाते हैं जिसमें जनता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन में भागीदार होती है। सीधे अर्थात् प्रत्यक्ष भागीदारी में शासन संबंधित सभी निर्णय स्वयं जनता द्वारा लिए जाते हैं जबकि अप्रत्यक्ष भागीदारी में जनता के प्रतिनिधि शासन संबंधी निर्णय लेते हैं। 'ब्रिटेन के 'द इकोनॉमिस्ट' मैग्जीन की रिपोर्ट के अनुसार विश्व के 24 देश पूरी तरह से लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित हैं।'[6] इस व्यवस्था में आस्था रखने वाले देशों में मीडिया को अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता दी गई है। यह सिर्फ सैद्धांतिक नहीं है बल्कि व्यवहारिक भी है। इसी रिपोर्ट में करीब 54 देशों को दोषपूर्ण लोकतांत्रिक व्यवस्था की श्रेणी में रखा गया है। वहाँ पर मीडिया को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तो है लेकिन राजनीतिक व्यवस्था किसी न किसी तरीके से इस पर नकेल कसती रहती है। इसके बावजूद इनकी खासियत यह है कि कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर मीडिया को लिखने-बोलने की पूर्ण स्वतंत्रता दी गई है। 'लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार और जनता के मध्य का संबंध बहुत ही नाजुक होता है।

जिसकी मधुरता बनाए रखने का दायित्व मीडिया का ही है। जनता और सरकार लोकतंत्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग है और इन दोनों के मध्य सामंजस्य बैठाने का कार्य मीडिया करती है। यह दोनों के मध्य एक सेतु का कार्य करती है।'[7]

लोकतंत्र शक्ति व सत्ता के विभाजन के सिद्धांत पर आधारित है। इसमें कानून बनाने का काम विधायिका 'निर्वाचित जन प्रतिनिधियों' का है। कानून की संवैधानिकता की जाँच का अधिकार न्यायपालिका का है और कानूनों के पालन की जिम्मेदारी कार्यपालिका अर्थात् सरकारों की है। लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहे जाने वाले मीडिया का कार्य मुद्दों व समस्याओं को सामने लाकर लोकतांत्रिक प्रक्रिया में योगदान देने और लोगों की भागीदारी व जिम्मेदारी को सुनिश्चित करने का है। लेकिन जिस तरह से, इस कार्य को जिम्मेदारी समझने वाले, मीडिया तथा मीडियाकर्मियों पर हमले होने लगे हैं, वह एक चिंतन का विषय बन गया है और इस पर समाज, राज्य व नागरिकों को भी आत्मविवेचन करने की जरूरत है। लोकतंत्र में मीडिया भी आलोचना से परे नहीं है लेकिन संस्थाओं की एक दूसरे की आलोचना, एक दूसरे के आदर और लोकतंत्र में उनकी जगह को ध्यान में रखते हुए होनी चाहिए। लेकिन 'आंकड़ें यह दर्शाते हैं कि अधिकतर राजनीतिक दलों के कुल बजट का लगभग 40 प्रतिशत मीडिया संबंधी खर्चों के लिए आबंटित होता है। चुनावों में प्रयुक्त होने वाला धन बल, शराब तथा पेड न्यूज की अधिकता चिंता का विषय है।'[8] भारतीय प्रेस परिषद के अनुसार 'ऐसी खबरें, जो प्रिंट या इलेक्ट्रोनिक मीडिया में नकद या अन्य लाभ के बदले में प्रसारित किये जा रहे हों, पेड न्यूज कहलाते है।'[9] हालांकि यह साबित करना अत्यंत कठिन कार्य है कि किसी चैनल पर दिखाई गई विशेष खबर या समाचारपत्र में छपी न्यूज, पेड न्यूज है। पेड न्यूज के मामलों में वृद्धि होने का प्रमुख कारण 'भारत में अधिकतर मीडिया समूह कॉर्पोरेट के स्वामित्व वाले हैं तथा केवल लाभ के कार्य करते हैं। पत्रकारों की कम सैलरी तथा जल्दी मशहूर होने की चाहत भी इसका एक कारण है।'[10] यद्यपि भारत में जन संचार माध्यमों में भ्रष्टाचार, मीडिया जितना ही पुराना है परन्तु ''हाल के वर्षों में यह अधिक संस्थागत एवं संगठित हो गया है जहाँ समाचारपत्र और टी.वी. चैनल किसी विशिष्ट व्यक्ति, कॉर्पोरेट इकाई, राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों आदि के पक्ष में धन लेकर सूचनाएं प्रकाशित या प्रसारित करते हैं।'' विगत कुछ वर्षों में इसने चुनाव लड़ रहे प्रत्याशियों की रिपोर्टिंग करके एक नया आयाम हासिल किया है।

मीडिया की स्वतंत्रता - भारत में लोकतंत्रात्मक व्यवस्थाओं की संरचना में भूमिका निभाने वाली संस्थाओं- राजनीतिक दल, सरकार, नौकरशाहों आदि जैसे मुद्दों पर खुलकर चर्चा होनी चाहिए ताकि 'आलोचनात्मक-मीडिया' को स्वतंत्रता से काम करने का अवसर प्राप्त हो सके। अगर समाज में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, कुव्यवस्थाओं और असामाजिक परिस्थितियों को सुधारना है जिनमें अशिक्षा, बेरोजगारी, अमानवीय परिस्थितियों में निवास, पर्यावरण की दुर्दशा, शोषण आदि शामिल है तो, ऐसे परिस्थितियों में मीडिया की स्वतंत्रता आवश्यक है। यह नेताओं और सरकारों के लिए भी मार्गदर्शक का कार्य करेगा जिससे उन्हें और क्या-क्या करना है, और क्या-क्या नहीं करना है का भी ज्ञान होता रहेगा। प्रजातंत्र मात्र सिर्फ कुछ वर्षों के लिए नए सरकार या शासक का चुनाव नहीं है। प्रजातंत्र लोगों की जिम्मेदारी व भागीदारी के साथ उनके अपने जीवन की व्यवस्थित व्यवस्था भी है। यह **जिम्मेदारी-** भागीदारी सिर्फ चुनाव के समय ही नहीं बल्कि इसे निर्बाध रूप से सुनिश्चित

करना हर कार्यपालिका, हर विधायिका और हर न्यायपालिका की जिम्मेदारी ही नहीं उत्तरदायित्व भी है। इसमें मीडिया के महत्व को नकारना प्रजातंत्र को कमजोर ही करेगा। इसलिए मीडिया पर आलोचना की निगाह रखते हुए उसकी आजादी को सुनिश्चित करना हर लोकतांत्रिक नागरिक की जिम्मेदारी है और नागरिकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरने के लिए मीडिया और मीडियाकर्मियों को भी अपनी प्रतिबद्धता और जिम्मेदारी बढ़ानी होगी।

मीडिया-संस्थान और कानून-व्यवस्था- प्रेस की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अभिन्न अंग है, जो लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए अति आवश्यक है। भारतीय संविधान में यह स्वतंत्रता मौलिक अधिकारों के रूप में दी गयी है और यह भी सुनिश्चित किया गया है कि यह पूर्ण नहीं है। कोई भी अभिव्यक्ति चाहे वह शाब्दिक हो या दृश्य माध्यम से हो वह विधायिका द्वारा बनाए गये और कार्यपालिका के द्वारा लागू किये गए संवैधानिक नियमों का उल्लंघन नहीं करती हो और यदि वह ऐसा करती है तो न्यायपालिका उस पर मौलिक अधिकार उल्लंघन के तहत कार्यवाही कर सकती है।

मीडिया कानून की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि - उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में ही भारत में मीडिया का उत्थान हो गया था और उसने नागरिकों के बीच में अपनी पहुँच बना ली थी। किंतु अभी इसने विस्तार आरंभ ही किया था कि अंग्रेजी सरकार ने भारतीय प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाना आरंभ कर दिया था। उनमें प्रेस पर प्रतिबन्ध, अनुज्ञप्ति नियम, पंजीकरण नियम, देशी भाषा समाचार अधिनियम जैसे प्रमुख नियम-कानून बना दिये थे। इसके बाद धीरे-धीरे प्रेस को पूर्ण रूप से नियंत्रित करने के लिए नए नियम बनाए गये। नए नियम स्वतंत्रता के पूर्व और बाद में भी बनाए गए। इन कानूनों की विवेचना विस्तार से आगे की गई है।

1. प्रेस और पुस्तक पंजीकरण अधिनियम 1867-'सन 1867 ई. में प्रभावी प्रेस बुक्स एंड रजिस्ट्रेशन एक्ट आज भी विभिन्न संशोधनों के साथ जारी है। इसका उद्देश्य प्रेस की स्वतंत्रता पर नियंत्रण ही नहीं अपितु प्रिंटिंग प्रेस एवं समाचार पत्रों पर भी नियमन करना था।'[11] यह अधिनियम प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित नहीं करता था। इसके अनुसार प्रकाशक को प्रकाशन के एक माह के भीतर पुस्तक की एक प्रति बिना मूल्य के सरकार को देना पड़ती थी।

2. वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट 1878-'वर्नाक्युलर का शाब्दिक अर्थ स्थानीय भाषा अथवा देशी भाषा है, इसलिए इस अधिनियम को देशी भाषा समाचार पत्र अधिनियम के नाम से भी जाना जाता है। 1976 में लार्ड लिटन भारत के वायसराय बने। वे एक साम्राज्यवादी विचारधारा के व्यक्ति थे। उन्होंने भारतीय भाषाओं के समाचारपत्रों पर नियन्त्रण करने के लिए 1 मार्च 1878 को विशेष अधिनियम पारित किया जिसे वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट 1878 के नाम से जाना जाता है।'[12]

3. औषधि और चमत्कारिक उपचार (आक्षेपणीय विज्ञापन) अधिनियम 1954-'यह अधिनियम सन 1954 में स्वीकृत हुआ और 1 अप्रैल 1964 को संशोधित हुआ। इस अधिनियम का उद्देश्य लोगों को तथाकथित चमत्कारी दवाओं और उपचारों जैसे मंत्र-तंत्र, कवच और जादू-टोने के प्रयोग से संभावित परिणामों व दुष्प्रभावों से बचाना है।'[13]

4. कृतिस्वामय अधिनियम-'इस अधिनियम को प्रतिलिप्याधिकार (1957) नाम से भी जाना जाता है। यह अधिनियम मनुष्य के बौद्धिक श्रम कौशल और रूचि से किये गये सृजन के फल को अन्य व्यक्तियों द्वारा हड़पे जाने से रोकता है।'[14]

1957 में भारतीय संसद ने 'कृतिस्वामय-कानून' पारित किया। यह कानून

लेखकों और प्रकाशकों के हितों की रक्षा के लिए बनाया गया है। इसके अनुसार लेखकों और प्रकाशकों की पूर्वानुमति के बिना किसी भी कृति का कोई भाग या अंश प्रकाशित करना कानून का उल्लंघन माना जाएगा। सार्वजनिक भाषणों, घोषणाओं अथवा समाचार वृत पर यह कानून लागू नहीं होगा।

5. **प्रेस परिषद अधिनियम 1978-** 'यह एक सांविधिक स्वायतशासी संगठन है जो प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा करने व उसे बनाए रखने की जिम्मेदारी निभाती है। इसके साथ ही यह जन अभिरुचि का उच्च मानक भी सुरक्षित करता है और नागरिकों के अधिकारों व दायित्व भी निभाता है। सर्वप्रथम इसकी स्थापना 4 जुलाई सन 1966 को हुई थी।'[15]

परिषद का एक अध्यक्ष होता है जो राज्यसभा के सभापति, लोकसभा अध्यक्ष और प्रेस परिषद के सदस्य मिलकर नामजद करते हैं। परिषद के अधिकांश सदस्य पत्रकार ही होते हैं तथा तीन सदस्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, बार काउंसिल ऑफ इंडिया और साहित्य अकादमी से जुड़े होते हैं तथा पांच सदस्य राज्यसभा व लोकसभा से नामजद किये जाते हैं। राज्यसभा से दो और लोकसभा से तीन सदस्य। प्रेस परिषद प्रेस से प्राप्त या प्रेस के विरुद्ध प्राप्त शिकायतों पर विचार करती है। यह सरकार सहित किसी समाचार पत्र समाचार एजेंसी, संपादक या पत्रकार के आचरण को गलत ठहरा सकती है। इसके निर्णय को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती। यह अपने कार्य को करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है तथा सरकार का भी किसी प्रकार का कोई नियन्त्रण नहीं होता है।

खबरों में निष्पक्षता का अभाव - सबसे बड़ी चुनौती व समस्या खबरों में निष्पक्षता और नैतिकता के अभाव की है। खबरें शुद्धता, नैतिकता व निष्पक्षता के साथ कैसे प्रस्तुत हों, कैसे लिखी जाएं, बिना पक्षपात, बिना पूर्वाग्रह कैसे वे तथ्य व सत्य को अपने पाठकों एवं दर्शको तक संप्रेषित करें। क्या विचारधारा रखते हुए एक पत्रकार इस तरह की साफ-सुथरी खबरें लिख सकता है? ऐसे सवाल हमारे सामने हैं। इसके उत्तर भी साफ हैं। इस प्रश्न के उत्तर में वरिष्ठ पत्रकार प्रभाष जोशी कहते हैं कि 'पत्रकार की पॉलिटिकल लाइन तो हो किंतु उसकी पार्टी लाईन नहीं होनी चाहिए।'[16] प्रश्न यह भी है कि 'एक विचारवान पत्रकार और संपादक विचार निरपेक्ष कैसे हो सकता है? संभव हो उसके पास विचारधारा हो, मूल्य हो और गहरी सैद्धांतिकता का उसके जीवन और मन पर असर हो। ऐसे में खबरें लिखता हुआ वह अपने वैचारिक आग्रहों से कैसे बचेगा? अगर नहीं बचेगा तो मीडिया की विश्वसनीयता और प्रमाणिकता का क्या होगा? सत्य और तथ्य का संघर्ष भी यहाँ सामने आता है। कई बार तथ्य गढ़ने की सुविधा होती है और सत्य किनारे पड़ा रह जाता है।'[17] पत्रकार ऐसा करते हुए खबरों में मिलावट कर सकता है। वह सुविधा से तथ्यों को चुन सकता है और सुविधा से परोस सकता है। 'खबर तभी सत्य और तथ्यपरक हो सकती है जब खबरों को प्रस्तुत करने के आधार अकादमिक और सैद्धांतिक हों।'[18] हम न्यायपूर्ण खबर तभी दे सकते है जब वह निरपेक्ष और पक्षपातविहीन हो। परीक्षण की अनेक कसौटियां हैं जिसके आधार पर खबर प्रस्तुत की जा सकती है।

मीडिया संस्थानों में आमूलचूल परिवर्तन की मांग - मीडिया चिंतकों ने मीडिया संस्थानों में अनेक सुधारों की आवश्यकता महसूस की है। उनमें कुछ सुधार बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। जिनमें पहला, अर्द्धन्यायिक दर्जा प्राप्त होने के बावजूद, भारतीय प्रेस परिषद के पास सीमित शक्तियाँ हैं। यह कदाचार में लिप्त व्यक्तियों या इकाईयों की निंदा कर सकती है या चेतावनी दे सकती है परंतु दण्डित नहीं कर सकती है। प्रिंट मीडिया

इसके अभिमत के दायरे से बाहर है। जब तक भारतीय प्रेस परिषद को व्यापक शक्ति नहीं प्रदान की जाएगी तब तक हम मीडिया सुधार और उसकी पूर्ण विश्वसनीयता की कल्पना भी नहीं कर सकते। दूसरा, प्रेस परिषद अधिनियम 1978 के अनुभाग 15(4) को संशोधित करने का प्रस्ताव जिससे कि इसके निर्देश सरकारी प्राधिकरणों पर बाध्यकारी हों। तीसरा, मीडिया संगठनों में लोकपाल की नियुक्ति। चौथा, सिविल सोसायटी द्वारा निगरानी भी इस समस्या से निपटने में मदद कर सकती है। पांचवा, पार्टी लाईन से हटकर कई राजनेताओं ने जनप्रतिनिधित्व अधिकार की धारा 123 में संशोधन करके पेड न्यूज के लिए धन के आदान-प्रदान को भ्रष्ट आचरण या 'चुनावी कदाचार' घोषित करने की मांग की है। छठवां, सरकार को संपादक अथवा पत्रकार की स्वतंत्रता तथा वेतन संबंधित स्थिति की समय-समय पर समीक्षा करनी चाहिए। सातवाँ, कठोर दंड प्रावधानों की भी आवश्यकता है। उपरोक्त प्रकार के सुधारों की सख्त आवश्यकता मीडिया चिंतकों एवं विश्लेषकों द्वारा महसूस की गयी है।

निष्कर्ष - मीडिया जनता और सरकार के बीच की कड़ी है। यह समाज के आंतरिक वर्गों तक अपनी पहुंच से सरकारी नीतियों के न्याय और लाभ सुनिश्चित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए जनता का मीडिया पर विश्वास होता है तथा दर्शकों पर इसका गहरा प्रभाव भी पड़ता है। भारतीय राजनीति की बदलती गतिशीलता ने परिवर्तन के इस चरण के रूप में मीडिया से लोगों की उम्मीदें बढ़ा दी हैं। एक व्यक्तिगत धारणा के साथ इस पर विश्वास करना काफी आसान हो गया है। देश की पुरानी पीढ़ी अभी भी परम्परा और संस्कृति के आधार पर चीजों को तय करती है जबकि वर्तमान युवा विश्व में तेजी से बढ़ रहे प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया में अधिक रुचि रखते हैं। इस प्रकार, मीडिया के लिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हो जाता है कि टी.आर.पी. और विज्ञापन की होड़ में चैनलों और पत्र-पत्रिकाओं द्वारा जो सूचनाएं प्रसारित की जा रही हैं, उनमें पक्षपात या छेड़छाड़ नहीं होना चाहिए। भारतीय लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके पास असीम शक्ति है। मीडिया ट्रायल आज भारतीय लोकतंत्र में सबसे बड़ी समस्या बन गया है। हाल ही में चुनाव आयोग ने प्रचार सामग्री के साथ-साथ पेड न्यूज को चुनावी अपराध घोषित करने का प्रस्ताव रखा है। चुनाव आयोग का ऐसा मानना है कि इस कदम से दोषी प्रत्याशियों के विरुद्ध निर्वाचन याचिका के तहत करवाई की जा सकेगी। हालांकि यह प्रस्ताव अभी सरकार के पास लंबित है। अब यह विधि मंत्रालय के ऊपर निर्भर करता है कि वह पेड न्यूज को चुनावी अपराध घोषित करने के लिए साहसिक कदम उठाता है या नहीं यद्यपि अनुच्छेद 19। मीडिया की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सुनिश्चित करता है परंतु मीडिया को भी अपने कार्य एवं कर्तव्यों की समझ होनी चाहिए। हालांकि मार्च 2019 में "वन फ्री प्रेस कॉलिशन" की स्थापना हुई है जो कि दुनिया भर के मीडिया संस्थानों का ऐसा मंच है जहाँ मीडिया के कर्त्तव्यों, आजादी एवं उतरदायित्व पर व्यापक चर्चा होती है, जो एक सराहनीय कदम है। समय आ गया है कि मीडिया अपनी विश्वसनीयता और आचरण पर खुद ही संज्ञान ले अन्यथा सरकार के कठोर कदम से या नियंत्रण करने से संविधान के चौथे स्तंभ को गहरा आघात लग सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. प्रेस फ्रीडम इंडेक्स 2020, विकिपिडिया

2. द्विवेदी, प्रो. संजय, विश्वनीयता नष्ट करने में चैनलों का योगदान, प्रभा साक्षी पत्रिका 2 मई 2020
3. वही
4. शर्मा, शशि, 2015, राजनीतिक समाजशास्त्र की रूपरेखा, पृष्ठ 893
5. वही
6. कुमार, राजेश, 2018, मीडिया और लोकतंत्र: एक दूसरे के पूरक या विरोधी, पृष्ठ 5
7. कुमार, राजेश, 2018, मीडिया और लोकतंत्र: एक दूसरे के पूरक या विरोधी, पृष्ठ 13
8. दृष्टि द विजन, पत्रिका, 29 मार्च 2018
9. वही
10. दृष्टि द विजन, पत्रिका, 29 मार्च 2018
11. त्रिखा, डॉ. नंदकिशोर, 2012, प्रेस विधि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 15
12. तिवारी, डॉ. अर्जुन, 2014, संपूर्ण पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 292-293
13. त्रिखा, डॉ. नंदकिशोर, 2012, प्रेस विधि, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 177
14. तिवारी, डॉ. अर्जुन, 2014, संपूर्ण पत्रकारिता, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 394
15. भानावत, डॉ. संजीव व माथुर, शिप्रा, 2009, समाचार पत्र व्यवसाय एवं प्रेस कानून, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 155
16. द्विवेदी, प्रो. संजय, विश्वनीयता नष्ट करने में चैनलों का योगदान, प्रभा साक्षी पत्रिका 2 मई 2020
17. वही
18. वही

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

अथर्ववेद में वर्णित प्रमुख आन्तरिक रोग

•अन्जली मिश्रा

सारांश- मानव की उत्पत्ति के साथ-साथ रोगों की उत्पत्ति भी हुई। भारतीय परम्परा में वैदिक काल में प्रमुख ग्रन्थों में विभिन्न विधयों के साथ ही मानव में रोगों का वर्णन व उनकी चिकित्सा की आयुर्वैदिक पद्धत्ति भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा है। जिसके सूत्र ॠग्वेद के मन्त्रों में देखे जा सकते हैं और अथर्ववेद तो उनका भण्डार है। अथर्ववेद में विभिन्न रोगों का वर्णन उनकी चिकित्सा का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न आन्तरिक रोगों की चिकित्सा उनसे बचने के उपायों का वर्णन हमें वैदिक काल से ही प्राप्त होने लगता है। उक्त आन्तरिक रोगों के निदान को वर्तमान में भी चिकित्सा हेतु प्रयुक्त कर रोगों से मुक्ति सम्भव हो सकती है। अथर्ववेद में वर्णित रोगों के निदान की औधधियों को वर्तमान में महत्व प्रदान कर विभिन्न आन्तरिक रोगों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

मुख्य शब्द- वैदिक कालीन चिकित्सा, प्राचीन काल में रोग, प्राचीन रोग निदान, अथर्ववेद में रोग

प्रस्तावना- अथर्ववेद में शरीर रचना, शरीर–रोग, औधधि विज्ञान, राजधर्म, समाज–व्यवस्था, अध्यात्मवाद, ईश्वर, जीव और प्रकृति के स्वरूप तथा परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या की गई है। मानव में रोगों का वर्णन व उनकी चिकित्सा की परम्परा भारतीय संस्कृति की प्राचीन परम्परा है जिसके सूत्र अथर्ववेद के मंत्रों में देखे जा सकते हैं, एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि अथर्ववेद में इनका भण्डार है। वे रोग जिनको मानव शरीर पर ऊपर से दृश्यमान रूप में न देखा जा सके किंतु भीतर ही भीतर शरीर में रोग प्रशस्त होकर विकार उत्पन्न करे उस रोग को ही आन्तरिक रोग कहते हैं। इन आन्तरिक रोगों का वर्णन अथर्ववेद के संदर्भ में शोध पत्र के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

अथर्ववेद में वर्णित आन्तरिक रोग- अथर्ववेद में वर्णित आन्तरिक रोगों की सूची निम्न प्रकार है–

रोग का नाम – अथर्ववेद संदर्भ

(1) अप्वाम – 9/13/9

(2) अंगभेदन – 5/3./9, 9/13/5

(3) अंगज्वम – 9/13/5, 5/3./9

(4) अपचि अथवा गण्डमाला – 7/7/1, 7/78/1, 7/78/2

(5) आमवात(गठिया) – 9/13/18, 9/13/22

(6) उदर रोग – 9/13/11–12

(7) उन्माद या क्षिप्त रोग – 6/11.9/1, 6/1.9/3

(8) कंठ रोग – 6/25/1–3

(9) कर्णशूल – 9/13/1–29, 9/13/1., 9/13/12

(1.) कीकस – 9/13/14–15–16

(11) कृमिरोग– 5/23/1–3–4–5–6, 5/29/9

(12) क्लीब रोग – 6/138/2–5

• शोध छात्रा, फरीदपुर, बरेली, उत्तर प्रदेश, पिन २४३५.३

(13) क्लोम(फेफड़ा) रोग – 9/13/12
(14) काका बाहम – 9/13/11
(15) कुंभीका और जलोधर रोग – 16/6/8, 6/6/11
(16) गर्भह्रास – 2/25/3-4-5, 2./96/11-16
(17) गर्भरोग – 8/6/1-17
(18) गण्डमाला – 7/76/8.-81
(19) गृधसी – 16/5/1, 6/1.9/1
(2.) ग्राह्(ग्राहया) (गठिया) – 2/9/1, 16/5/1
(21) ज्वर (तक्म या तक्मन) –5/22/1-3, 5/4/1, 5/4/4
(22) तृष्णा – 4/17/6-7
(23) दन्तकृमि – 5/23/3
(24) दुर्णाम – 4/17/5
(25) नपुंसकता – 4/4/1-8
(26) निऋति(पैतृक) रोग – 2/1./1-2, 6/63/1, 4/36/1.
(27) नेत्र रोग – 4/2./1-2-3-6-7
(28) पलालानुपलाल – 8/6/2-3
(29) बभुकर्ण – 6/16/3, 6/16/1
(3.) मूत्रामय – 1/3/6-8
(31) यक्न(यकृत) – 2/33/3, 2./16/19
(32) यक्ष्मा या राजयक्ष्मा या क्षय रोग या जायान्य – 5/4/9, 19/39/5, 4/32/2
(33) बन्ध्यत्व – 3/23/1-4-5
(34) वाजीकरण – 4/4/1-7
(35) विदग्र – 6/127/1-2
(36) शीर्षामय – (शीर्षक्ति) – 9/13/1
(37) स्वप्न रोग – 16/5/1-8
(38) हृदय रोग – 3/7/1-2
(39) क्षेत्रीय(वंशानुगत) रोग – 2/8/1, 3/7/1
(40) क्षुघामारं रोग – 4/17/6

उक्त आंतरिक रोगों का वर्णन अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इन रोगों की उत्पत्ति तथा निदान से सम्बन्धी सूत्र भी अथर्ववेद में वर्णित हैं। इन सूत्रों द्वारा रोगों का निदान किया जाता था। अथर्ववेद में वर्णित प्रमुख आन्तरिक रोगों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

(1) अपचि या अपचित या गण्डमाला – अथर्ववेद में यह रोग गण्डमाला नाम से उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद के चार सूक्तों के मन्त्रों में संक्षेप में अपचित रोग का वर्णन प्राप्त होता है।(अथर्ववेद- 6/75/7, 6/77/1, 6/83/1, 6/83/2), इस रोग में गले के नीचे की ओर कक्ष, वक्षणादि में गण्ड फैलते हैं, इसी कारण इसको अपचित्त (गण्डमाला) कहते हैं। पुरूष के वीर्य का अपसिंचन करने के कारण इस रोग को अपचित्त कहा गया है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में अंगीरा ऋषि ने गरूड़ के समान गण्डमाला रोग को भाग जाने का आदेश दिया है। जिस प्रकार गरूड़ अपने निवास स्थान से दौड़ता है उसी प्रकार हे गण्ड़माला रोग शीघ्र ही दूर भाग जाओ।(अथर्ववेद – 6/83/1)

स्थान - ग्रीवा, कक्षा तथा वक्षण।

भेद - संख्यानुसार एक स्थान पर अपची के आठ भेदों का वर्णन प्राप्त होता है- ये एनी, शेयनी, कृष्णा, रोहिणी, असूलिका, रामायणी, ग्लोः, ग्लुन्तः। (अथर्ववेद- 6/83/2) यह रंग भेद, प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत किये गये हैं।

उपचार - इसकी चिकित्सा सूर्य एवं चन्द्र रश्मि से करने के निर्देश वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं। (अथर्ववेद- 6/83/3)

अपचित्त की चिकित्सा के प्रकरण के अन्तर्गत एक स्थान पर परशु वृक्ष कि पचपन पत्तियों के रस को कुछ लकड़ियों से क्वाथ बनाकर गाढ़ा कर लकड़ी से अपची पर लगाया जाता है। उसके पश्चात् खोपड़ी के चूर्ण तथा कुत्ते की लार को लगाकर जोंक लगाते हैं। तत्पश्चात् सैंधव लवण का चूर्ण छिड़क कर थूक लगाते हैं। इसके साथ-साथ टोटका करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं। वैदिक ऋषि 'मुनिवृक्ष' की जड़ से इसका छेदन करते थे।(अथर्ववेद- 7/78/1)

उपरोक्त सन्दर्भो से ज्ञात होता है कि अपचित रोग ही गण्डमाला नामक रोग कहलाता है। इस रोग में गले की ग्रन्थियाँ, कन्धों और गुप्त स्थान पर प्रभाव पड़ता है। इस रोग को मुनि नामक दिव्य औषधि तथा सूर्यकिरण एवं हवन से दूर किया जाता है। रोगी को गण्डमाला या अपचित रोग से मुक्ति या नीरोगता प्राप्त हो जाती है।

(2) आमवात- सन्धिवात तथा ग्रही रोग (गठिया)- आमवात आयुर्वेद में गठिया रोग का पर्यायवाची शब्द है। अथर्ववेद में इस रोग के लिये 'राक्षस' और 'ग्राह्या' शब्दों का प्रयोग किया गया है।

स्थान- यह रोग अस्थियों के जोड़ों में होता है।

पूर्व रूप तथा रूप- इस रोग में अस्थियों में गतिशीलता नहीं रहती, साथ में अधिक दर्द उत्पन्न होता है। इस रोग में जोड़ों अथवा संधियों में वेदना पैदा हो जाती है। यह वेदना तब होती है जब अस्थियाँ मज्जा भाग को रक्तहीन कर देतीं हैं।(अथर्ववेद- 9/13/18) और इस कारण जोड़ों में दर्द होना शुरू हो जाता है। साथ-साथ वाह्य त्वचा में शोथ पैदा हो जाता है। आमवात(गठिया) में वात प्रकुपित होती है।

उपचार- आमवात के उपचार में पिप्पली आदि वात नाशक औषधियों का उपयोग करना चाहिए। इस रोग का प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत सूर्य द्वारा एवं चन्द्र द्वारा चिकित्सा करने का विधान अथर्ववेद में प्राप्त होता है।(अथर्ववेद- 9/13/22)

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आमवात अथवा गठिया रोग वात प्रकुपित रोग है। इस रोग में अस्थियों के जोड़ों पर सबसे अधिक प्रभाव होता है। इस रोग की चिकित्सा में वात नाशक औषधियों पिप्पली आदि तथा प्राकृतिक चिकित्सा के रूप में सूर्य व चन्द्र किरण चिकित्सा द्वारा रोग मुक्त किया जा सकता है। सूर्य किरणों की से रोग का निदान होता है।

(3) **उन्माद (क्षिप्त रोग)-** अथर्ववेद में उन्माद रोग के सम्बन्ध में उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत मन के उद्भ्रान्त अवस्था का नाम उन्माद कहा गया है।(अथर्ववेद-6/111/2),मन, बुद्धि, चेतना, ज्ञान, स्मरण शक्ति, शारीरिक-चेतना एवं आचार-विचार की विषमता को उन्माद कहते हैं।

पूर्वरूप व रूप- अथर्ववेद में उन्माद रोग का मूल कारण पाप को माना गया है। देवकृत पाप, ज्वर, राक्षस तथा कृमि आदि उन्माद के कारण कहे गये हैं।(अथर्ववेद-6/111/3) दम्भ, दर्प

और अभिमान आदि राक्षसी कारण कहे गये हैं जिनके निमित्त व्यक्ति पाप करता है और उन्माद का कारण बनता है।

लक्षण- बुद्धि में भ्रम, मन का भ्रमित होना, नेत्र अपने विम्ब को ठीक से ग्रहण नहीं करना, धैर्य शक्ति का नष्ट होना, बिना प्रयोजन तथा बिना सम्बन्ध में बोलना, हृदय का शल्य होना, असामान्य कार्य करना, रस्सी से जकड़ा होना, बहुत हँसना, आँखें लाल-पीली करना तथा बार-बार बंधन से मुक्त होने का प्रयास करना आदि अवस्थायें रोगी के उन्माद ग्रसित होने की पहचान करवाती हैं।

उपचार - अथर्ववेद में उन्माद के उपचार में पापमुक्त कार्यों को करने का निर्देश प्राप्त होता है। (अथर्ववेद- 4/37/1-11, 6/111/1-2)

अथर्ववेद में उन्माद रोग से स्वतन्त्रता के लिए अग्नि देव की प्रार्थना का भी विधान मिलता है। (अथर्ववेद- 6/111/2) अथर्ववेद में उन्माद को पिप्पली नामक औषधि से ठीक करने का वर्णन प्राप्त होता है। (अथर्ववेद- 6/1.9/1)

उन्माद रोग की चिकित्सा का वर्णन चरक तथा सुश्रुत संहिता में विस्तार से प्राप्त होता है।

(4) **ज्वर (तक्म या तक्मन) -** ज्वर या तक्मन अथर्ववेद का एक प्रमुख रोग है। इसका वर्णन अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।(अथर्ववेद- 4/9/8, 5/4/1-9, 5/3. /16, 9/8/6) शरीर को कष्ट प्रदान करने वाले को ज्वर या तक्मन कहा गया है।(अथर्ववेद- 5/3./16)

कारण- ज्वर का प्रमुख कारण शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास होना है। शारीरिक रोगों में ज्वर को प्रधान माना गया है। आमाशय स्थित अग्नि अथवा जठराग्नि के कार्य की विकृति, सन्ताप व मन की बेचैनी तथा शरीर में पीड़ा वाले रोग को ज्वर कहते हैं।(अथर्ववेद- 1/25/2)

पूर्वरूप व रूप- अथर्ववेद में ज्वर बहुत जोर की तपिश चढ़ाने वाला(ज्वाला रूप), अन्दर ही अन्दर तपाने वाला हो, अंग, प्रत्यंग का कमजोर करने वाला हो, वह हर एक जीवन के अणु को हिला देता है, इसलिए इसे (ज्वर) 'ह्रूडु' कहते हैं। यह तक्मन पाण्डुरोग तथ कामिला रोग को भी उत्पन्न करता है। (अथर्ववेद- 1/25/2-3) प्राण के मूल स्थान में पहुँचकर ज्वर, अग्नि, प्राणधारक आय तत्व(प्राणशक्ति) को जला देता है, यही ज्वर का परम स्थान माना गया है। इस प्रकार ज्वर कई अन्य रोगों के प्रतिफल के रूप में भी रोगी के शरीर में पहुँच कर कष्ट प्रदान कर सकता है। अन्य विभिन्न रोगों के प्रतिफल के रूप में भी ज्वर की उत्पत्ति होती है।

ज्वर के पर्याय- अथर्ववेद में ज्वर के कई पर्यायों का वर्णन प्राप्त होता है-

रोगी के शरीर में ज्वर को विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। इन नामों में ज्वर की विशेशता भी देखने को मिलती है। विभिन्न नामों का प्रयोग अथर्ववेद में कई स्थानों पर पाया जाता है।

क्र. सं.	पर्याय	शब्दार्थ	अथर्ववेद संन्दर्भ
1.	अर्चि	ज्वाला	1/25/2
2.	अमर्त्यः	जो कभी नहीं मरता। एक बार दूर होने पर भी बार-बार आक्रमण करता है।	6/26/3
3.	अभिशोकः	सन्तापक	1/25/3
4.	अभिशोचीयष्णु	सब ओर से तपाने वाला	6/2./2
5.	ग्रभीता	पकड़ने वाला	1/12/2
6.	तक्मा	कृच्छ जीवन कर्त्ता	5/22/1
7.	तपुः	तपाने वाला	6/2./1
8.	पाप्मा	क्षय करने वाला	6/26/1
9.	रूद्रः	रूलाने वाला	6/2./2

1.	विगद:	विशेष रोग	5/22/6
2.	व्यंग:	विकृतांग करने वाला	5/22/6
3.	वरूणस्य पुत्र	वरूण(जल) का पुत्र, जलीय स्थानों में अधिक होने वाला	1/25/3
4.	व्याल:	सर्प के समान मारने वाला	5/22/6
5.	शोक:	तापक	1/25/3
6.	शीषलोक:	सिर को पकड़ने वाला	19/36/1.
7.	शुष्मी	शोषण करने वाला	6/2./1
8.	शोचि	तापक	1/25/3
9.	सहस्त्राक्ष:	सहस्त्रों नेत्रों वाला	6/26/3
10.	हरितस्यदेव:	हरिद्ववर्ण का देवता	1/25/2
11.	हुडू	जिसके आवेश में हुडू शब्द मुँह से निकले	1/25/2

ज्वर के भेद- इसी प्रकार अथर्ववेद में ज्वरों के कई प्रकारों का वर्णन भी स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। जिनमें प्रमुख प्रकारों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल से ही ज्वर रोग के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान उपलब्ध था। ज्वर के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्धित ज्ञान का प्रचार प्रसार जन सामान्य में उपलब्ध था। संभवत: यह रोग मानव के प्रारम्भ से ही संसार में व्याप्त रहा होगा।

लक्षण- ज्वर से पीड़ित रोगी में प्रमुख लक्षण शरीर के ताप में वृद्धि है। शरीर में ज्वर बढ़ने के उपरान्त सम्पूर्ण शरीर में दर्द होता है।(अथर्ववेद- 5/22/3) फलस्वरूप शरीर की कान्ति पीली होने लगती है।

उपचार- वैदिक काल में ज्वर के उपचार में निम्न औषधियों का प्रयोग किया जाता था।

जांगिंग- अशरीक, विशरीक, कफ-पृष्टि(पसलियों का रोग) प्रतिशरद ऋतु में प्रकुपित होने वाला (विश्व शारद:- मलेरिया) ज्वर जांगिंग से नष्ट होता है।(अथर्ववेद- 5/3./16)

कुष्ठ (कूढ़)- कुष्ठ का दूसरा नाम तक्मा नाशन है। यह सभी प्रकार के ज्वर को नष्ट करती है। (अथर्ववेद- 19/34/1.)

आंजन- इस औषधि के सेवन से ज्वर, कफ और दाह नष्ट होते हैं।(अथर्ववेद- 5/4/1) अथर्ववेद में यज्ञ द्वारा भी ज्वर को समाप्त करने का वर्णन प्राप्त होता है। अग्नि, सोम, समिधा और हवन सामग्री भी ज्वर को दूर करती है।(अथर्ववेद- 4/9/8), एक अन्य सूत्र में ज्वर के उपचार हेतु रोगी के दण्ड धारण करने का वर्णन भी प्राप्त होता है। (अथर्ववेद- 5/22/1)

इस प्रकार अथर्ववेद में सबसे अधिक विस्तार से ज्वर(तक्मन) रोग की चर्चा प्राप्त होती है। इस काल में ज्वर के विभिन्न प्रकारों तथा उनके भिन्न-भिन्न पर्याय वाले नामों का वर्णन भी प्राप्त होता है। इस ज्वर से मुक्ति हेतु विभिन्न प्रकार की औशधियों का वर्णन भी हमें अथर्ववेद से ज्ञात होता है।

(5) **ह्रदय रोग तथा रक्त संचार-** ह्रदय रोग के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में बहुत अधिक वर्णन प्राप्त नहीं होता है। वेदों में रक्त संचार का वर्णन भी संक्षिप्त रूप में ही प्राप्त होता है। मानव शरीर में रक्त-संचार के लिए धमनियों तथा शिराओं का जाल फैला है।(अथर्ववेद- 1/17/1-3) इनकी संख्या सैकड़ों तथा सहस्त्रों में बताई गयी है। धमनी तथा शिरायें बेलनाकार, छिद्रवाली होतीं हैं जिनसे रक्त बहता है।(अथर्ववेद- 7/36/2) यह धमनियाँ शरीर के अंग-अंग में फैली हैं। शिराओं तथा धमनियों में तीव्र अरूण वर्ण

वाला तथा ताम्र की भाँति धूम्र वर्ण वाला, दो प्रकार का रक्तबहता है।(अथर्ववेद- 1./2/11) हृदय से सम्बन्धित अनेक रोग हैं।

लक्षण- हृदय रोग में जलन, कम्पन, शूल, अल्पगति एवं तीव्रगति मुख्य है। विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर, कास, श्वास, हिक्का, मुख की विरसता, तृष्णा, मोह, वमन, कफ का उत्क्लेश, वेदना, भोजन से अरूचि तथा अन्य अनेक प्रकार के लक्षण उत्पन्न होतें हैं।(चरकसंहिता- चिकित्सास्थान- 26/78-8.)

उपचार- अथर्ववेद के एक सूत्र में हृदय की जलन को सूर्य किरणों से दूर करने वाला बताया है। (अथर्ववेद- 1/22/1), अर्थात् इसमें कहा गया है कि हृदय की जलन, सूर्य किरणों के साथ सम्बन्ध करने से दूर हो जायें। हृदय के कुछ क्षेत्रीय रोग भी हैं। क्षेत्रीय हृदय रोगों की चिकित्सा के लिए तीव्र गति वाले हिरण के सींग का प्रयोग करना चाहिए।(अथर्ववेद- 3/7/1-2), बहता हुआ जल, वृष्टि जल, वाष्प जल, हृदय रोग की उत्तम औषधि है।(अथर्ववेद- 3/7/5-6), प्रातःकाल नक्षत्रों के अस्त होते समय उषाकाल की समाप्ति पर क्षेत्रीय रोग के विनाश का उपाय करना चाहिए।(अथर्ववेद- 3/7/7)

अतः उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में हृदय रोग तथा शरीर में होने वाले रक्त परिसंचरण के सम्बन्ध में ज्ञान उपलब्ध था तथा हृदय रोग से पीड़ित रोगी की चिकित्सा में भिन्न-भिन्न औषधियों का प्रयोग किया जाता था तथा समय का भी ध्यान रखा जाता था।

(6) क्षेत्रीय रोग- अथर्ववेद में क्षेत्रिय रोग से सम्बन्धित तीन सूक्त प्राप्त होते हैं। क्षेत्रीय का अर्थ है क्षेत्र से होने वाला रोग। अर्थात् यह रोग माता-पिता तथा पूर्वजों से प्राप्त होते हैं। इन्हें आनुवंशिक रोग भी कहा जाता है।(अथर्ववेद- 2/8/1-5, 3/7/1-6, 4/18/7) वैद्य शास्त्र में क्षेत्रिय रोग को प्रायः असाध्य कहा गया है। एक अन्य सूक्त में कहा गया है कि क्षेत्रिय रोग से हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ता है।(अथर्ववेद- 3/7/2) एक अन्य सूक्त में कहा गया है कि क्षेत्रिय रोग का सब अंगों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। उस रोग का हम (भृग्वग्डिरा) नाश करते हैं।(अथर्ववेद- 3/7/3)

पूर्वरूप व रूप- इस रोग के रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह माता-पिता से उत्पन्न हुये क्षेत्रिय रोग, चिड़चिड़ापन होता है और जिसमें रोगी चिल्लाता है, जिसमें यातना बहुत होती है, तेजहीन शरीर होता है।(अथर्ववेद- 2/8/1)

उपचार- इस रोग के उपचार में अथर्ववेद में कहा गया है कि इस रोग की औषधि अर्जुन का वृक्ष, जौ की बाल और तिल सहित तिल की मंजरी है।(अथर्ववेद- 2/8/3) क्षेत्रीय रोग को नष्ट करने में मृग श्रृंग (हिरन के सींग) भी समर्थ हैं।(अथर्ववेद- 3/7/1) मृगश्रृंग की भस्म वंशक्रमानुगत क्षय रोग की विनाशक है। इसके साथ-साथ जल सभी क्षेत्रीय रोग को दूर करने में समर्थ है।(अथर्ववेद- 3/7/5), विचृति नाम के तारे के उदय होने पर इस रोग की चिकित्सा करनी चाहिए। मूलनक्षत्र तथा विचृति दोनों पर्यायवाचक हैं। मूल नक्षत्र के उदय होने, मूल नक्षत्र रात्रि एवं उषा काल की समाप्ति का समय उपचार हेतु उत्तम माना गया है।(अथर्ववेद- 2/8/1-3) क्षेत्रीय रोग की चिकित्सा औषधियों द्वारा की जाती थी, जिनमें प्रमुख रूप से वीरूद्ध, अपामार्ग, अर्जुन वृक्ष – कान्ड, यव तुष तथा पंजलि आदि हैं। वीरूद्ध की खेती की जाती थी तथा यह रोग शामक है।(अथर्ववेद- 3/7/1, 3/7/5, 4/18/7, 3/7/5)

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय रोग सम्भवतः वंशानुगत रोगों में था। वेदों में क्षेत्रीय रोग को असाध्य कहा गया है जो कि उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि उपचार हेतु

औषधि एवं चिकित्सा के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जिनसे प्रतीत होता है कि इस रोग को चिकित्सा से ठीक किया जा सकता था। उक्त रोगों के अतिरिक्त अन्य बहुत से रोगों का वर्णन भी हमें अथर्ववेद में कई स्थानों पर प्राप्त होता है। इस प्रकार अथर्ववेद में शरीर के विभिन्न भागों में तथा सम्पूर्ण शरीर में होने वाले रोगों के सम्बन्ध में वर्णन प्राप्त होता है साथ ही साथ रोगों के निदान हेतु विभिन्न चिकित्सा विधियाँ व औषधियों के सम्बन्ध में भी सूचना प्राप्त होती है। जिनका प्रयोग तत्कालीन समय में स्वास्थ की रक्षा हेतु किया जाता था। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में अथर्ववेद में तत्कालीन समय में ही विभिन्न रोगों की चिकित्सा तथा उनके सम्बन्ध में जानकारी जनसामान्य में प्रचलित थी। जिसका प्रयोग उत्तर कालीन समय में चिकित्सा हेतु किया गया। इसे वर्तमान में भी प्रासंगिक रूप से विभिन्न रोगों की चिकित्सा हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

(1) अथर्ववेद (भाषा-भाष्य), (2 खण्डों में) पंडित क्षेमकरणदास त्रिवेदी, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2.1.
(2) ब्लूमफील्ड, एम. - अथर्ववेद एण्ड गोपथ ब्राह्मण , अनुवादक - सूर्यकान्त, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1964, पृ.- 56
(3) शास्त्री, राम गोपाल - वेदों में आयुर्वेद , ला. मदन मोहन लाल आयुर्वेदिक अनुसंधान ट्रस्ट, दिल्ली, 1956, पृ. - 1.3
(4) कौशिक सूत्र- ब्लूमफील्ड, एम., वाल्टीमोर, 1889, सूत्र संख्या- 31/16-17
(5) कौशिक सूत्र- ब्लूमफील्ड, एम., पूर्वोक्त, सूत्र- 32/8-1.
(6) चरक-संहिता- ,महर्षि अग्निवेश प्रणीत, चरक और दृढबल से प्रतिसंस्कृत(हिन्दी अनुवाद), (दो खण्डों में), अनुवादक- अत्रिदेव गुप्त, प्रकाशक- भार्गव पुस्तकालय, बनारस, सं.-2.. 5वि.,निदानस्थान- 7/5 निदानस्थान- 7/7-13, चिकित्सास्थान- 9/6

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

समाचार पत्रों के क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन : छत्तीसगढ़ के रायपुर नगर के संदर्भ में

• कविता साहू
•• ए.के.पाण्डेय
••• के.के.बिन्दल

सारांश - **समाचार पत्र किसी भी सभ्य समाज का आईना होता है। जिस देश में समाचार पत्रों का प्रकाशन नही होता उन्हे सभ्य देशों की सूची में नही रखा जा सकता है। भारत देश संपूर्ण विश्व के सामने एक बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है। किसी देश की अर्थव्यवस्था जो कृषि प्रधान हो या उद्योग प्रधान, श्रम के महत्व को कोई अस्वीकार नही कर सकता है और श्रम को उत्पत्ति का अविभाज्य साधन माना जाता है। पत्रकारिता को एक ऐसा क्षेत्र माना जाता है जिसका संबंध जन-चेतना के स्तर पर जुड़ा हुआ है। पत्रकारिता केवल व्यवसाय नहीं हैं, यह जनतंत्र की सुदृढ़ नींव हैं और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता यह तो हमारे भारतीय संविधान का मूल आधार हैं। किसी भी देश की शासन व्यवस्था की इससे बढ़कर आदर्श और प्रगतिशील रूप और क्या हो सकती है, जहाँ पर लोग विषमतारहित होकर परस्पर प्रेम भाव में आबद्ध होंगें। भारत दुनिया के सबसे बड़े अखबार अर्थात् समाचार पत्र बाजारों में से एक हैं तथा वर्तमान में समाचार पत्र लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध हैं।**

मुख्य शब्द- समाचार पत्र, आर्थिक स्थिति, कार्य के प्रति संतुष्टि

विकास मानव समाज की श्रेष्ठतम विशेषता है, और इसने समाचार पत्र के क्षेत्र को भी प्रभावित किया है। जिससे इस क्षेत्र की उपलब्धि एवं प्रसार संख्या में वृद्धि हुई है तथा इस क्षेत्र में कार्यरत् कर्मचारियों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति में अधिक परिवर्तन हुए है।

प्रस्तावना - आर्थिक प्रगति को कई कारक प्रभावित करते है जैसे प्राकृतिक साधन, संगठन, पूंजी निर्माण, श्रम विभाजन, प्रौद्योगिकी उन्नति, उत्पादन का पैमाना, संरचनात्मक परिवर्तन, धार्मिक एवं सांस्कृतिक वृत्तियाँ, सामाजिक कारक - सामाजिक मूल्य, वृत्तियाँ एवं संस्थाएँ जिसमें संयुक्त परिवार, जाति प्रथा, संस्थात्मक परिवर्तन आदि एवं मानवीय कारक जिसमें जनसंख्या पर नियंत्रण, श्रम शक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन, प्रशिक्षण साथ राजनैतिक तथा प्रशासनिक परिवर्तत इत्यादि है। आर्थिक विकास के लिये श्रम का शिक्षित एवं प्रशिक्षित होना जरूरी है। यदि शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, कुशलता एवं शारीरिक दक्षता का स्तर निम्न है तो भौतिक पूंजी की उत्पादकता भी निम्न होती है। श्रमिकों की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए उत्पादकीय उपभोग एक आगत के रूप में आवश्यक है, जब एक परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्तर का विश्लेषण किया जाता है तो परिवार की आय, शिक्षा का स्तर, व्यवसाय आदि का विश्लेषण किया जाता है। वर्तमान समय समाचार पत्र का स्वरुप काफी बदल चुका है, नई तकनीकों की सहायता से समाचारो के प्रेषण मुद्रण व पत्र-प्रकाशन किये जा रहे हैं तथा समाचार पत्र के उत्पादन की प्रक्रिया एवं साधनों में परिवर्तन हुआ है। समाचार पत्रों के स्वरुप के साथ ही उपभोक्ताओं की आकाक्षाएँ

• शोध छात्रा, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
•• प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
••• प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, छत्तीसगढ़ स्नात्कोत्तर महाविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

आवश्यकताएँ तथा अपेक्षाओं में भी परिवर्तन हुआ है और इन्ही आवश्यकताओं की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए समाचार पत्रो के स्वरुप एवं प्रस्तुतीकरण की विधियों में परिवर्तन हुआ है।

अध्ययन का उददेश्य - प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य चयनित न्यादर्श समाचार पत्रों के क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना , उनके कार्य के प्रति संतुष्टि के स्तर को जानना तथा प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करना है।

परिकल्पना - कार्य के धण्टे एवं कार्य के प्रति संतुष्टि में ऋणात्मक फलनात्मक संबंध है।

शोध प्रविधि-

ऑकड़ों का संकलन- शोध अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको पर आधारित है। प्राथमिक ऑकड़ो का संकलन साक्षात्कार अनुसूची एवं प्रत्यक्ष व्यक्तिगत् अनुसंधान रीति के द्वारा किया गया है।

समाचार पत्रों का चयन - अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ के रायपुर शहर में प्रकाशित होने वाले विशेष 10 समाचार पत्रों में से 07 समाचार पत्रों का चयन किया गया है, तथा इन समाचार पत्रों के क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों में से 28 प्रतिशत कर्मचारियों को यादृच्छिक रूप से चयनित किया गया है।

ऑकड़ों का विश्लेषण- प्राप्त समंको के विश्लेषण हेतु उपयुक्त सांख्यिकी तकनीकियों जैसे -प्रतिशत, माध्य, गुण-सहसंबंध एवं काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग कर निष्कर्ष ज्ञात किया है।

प्रमुख निष्कर्ष-

निदर्श कर्मचारियों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति - अवलोकन से ज्ञात होता है कि समाचार पत्रों में कार्यरत निदर्श कर्मचारियों में से 38.90 प्रतिशत 20-30 वर्ष आयु समूह के हैं। 30-40 वर्ष आयु समूह में 27.50 प्रतिशत निदर्श कर्मचारी, 40-50 वर्ष आयु समूह में 23. 00 प्रतिशत तथा 50-60 वर्ष आयु समूह में 10.70 प्रतिशत निदर्श कर्मचारी हैं। निष्कर्षतः रायपुर शहर में चयनित समाचार पत्रों में सर्वाधिक 20-30 वर्ष आयु वर्ग के सर्वाधिक 38.9 प्रतिशत कर्मचारी कार्यरत हैं। इस आयु समूह के कर्मचारियों को नवीन तकनीकों का प्रशिक्षण एवं शिक्षा के माध्यम से और अधिक कुशल एवं अधिक उत्पादक श्रमशक्ति बनाया जा सकता है। समाचार पत्रों में निदर्श कर्मचारियों में से 83.20 प्रतिशत कर्मचारी पुरूष तथा 16.80 प्रतिशत महिला कर्मचारी कार्यरत हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समाचार पत्रों में महिला कर्मचारियों की संख्या पुरुष कर्मचारियों की तुलना में कम है। निदर्श कर्मचारियों में से 55.30 प्रतिशत कर्मचारी एकल परिवार में तथा 44.70 प्रतिशत कर्मचारी संयुक्त परिवार में रहते हैं । अतः स्पष्ट है कि संयुक्त परिवार की तुलना में एकल परिवार के रूप में रहने वाले कर्मचारियों की संख्या तुलनात्मक रूप से अधिक है। भारत में संयुक्त परिवार सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण ईकाई है।

कार्य के प्रति संतुष्टि - अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि समाचार पत्रों के क्षेत्र में कार्यरत निदर्श कर्मचारियों में से 58.20 प्रतिशत कर्मचारियों की मासिक आय 5000-10000 हजार रू., 26.30 प्रतिशत कर्मचारियों की मासिक आय 10000-20000 हजार रू., 9.80 प्रतिशत कर्मचारियों की मासिक आय 20000-30000 हजार रू., 4.50 प्रतिशत कर्मचारियों की मासिक आय 30000-40000 हजार रू. तथा 1.20 प्रतिशत कर्मचारियों की मासिक आय 40000-50000 हजार रू. है। इस प्रकार निदर्श कर्मचारियों

में से लगभग 50 प्रतिशत कर्मचारियों की मासिक आय 5000-10000 हजार रू. है। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि 58.17 प्रतिशत निदर्श परिवार की आय 15000 रूपये से कम है। 26.23 प्रतिशत निदर्श परिवार की आय 15000-30000 के मध्य, 9.83 प्रतिशत परिवार की आय 30000-45000 रू. के मध्य 4.50 प्रतिशत परिवार की आय 45000-60000 के मध्य तथा केवल 1.27 प्रतिशत निदर्श परिवार ऐसे है जिनकी कुल पारिवारिक आय 60000 रूपये से अधिक है। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि निदर्श परिवार का औसत आकार 3.03 है तथा इसकी प्रति व्यक्ति आय 5727 रूपये पायी गई। अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि समाचार पत्रों में 4-8 घंटे कार्य करने वाले कर्मचारियों में से 87.5 प्रतिशत N=49) कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट हैं जबकि 12.5 प्रतिशत (N=7) कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हैं। समाचारपत्रों में 8-12 घंटे कार्य करने वाले कर्मचारियों में से 54.5 प्रतिशत (N=91) कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट हैं जबकि 45.5 प्रतिशत (N=76) कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हैं। समाचारपत्रों में 12 घंटे से अधिक कार्य करने वाले कर्मचारियों में से 33.3 प्रतिशत (N=7) कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट हैं जबकि 66.7 प्रतिशत (N=14) कर्मचारी अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हैं। गणना किये गये $^{2}(df=2)=26.02, p<.01$ जो कि .01 के सार्थकता स्तर पर सिद्ध है यह स्पष्ट होता है कि कार्य के घंटे में वृद्धि होने के साथ-साथ समाचार पत्रों में कार्यरत कर्मचारियों की कार्य संतुष्टि में भी कमी आती है। अतः परिकल्पना कार्य के घंटे एवं कार्य के प्रति संतुष्टि में ऋणात्मक सहसंबंध है, की पुष्टि होती है।

समस्याएँ -

1. समाचार पत्र में कार्यरत कर्मचारियों में असंतुष्टि का पहला कारण न्यूनतम वेतन है। न्यूनतम वेतन के कारण ये कर्मचारी अपनी पारिवारिक खर्च को भी पूरा नही कर पाते। इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है।
2. समाचार पत्रों के क्षेत्र में पुरूषों की तुलना में महिला कर्मचारियों की सहभागिता कम पायी गई है, इसका कारण पत्रकारिता की शिक्षा एवं प्रशिक्षण का अभाव है।
3. कर्मचारियों के कार्य में भी अनिश्चितता पायी गयी है, जिसका परिणाम शोषण है। काम से निकाले जाने के भय से ये कर्मचारी संस्था में हो रहे शोषण का विरोध नही कर पाता है।
4. इस क्षेत्र में कार्यरत् कर्मचारियों को कार्य के दौरान दुर्धटना के जोखिम, धमकी तथा मुकदमा के जोखिम, सरकार तथा पूंजीपतियों के दबाव तथा अन्य कई तरह के जोखिमों का सामना करना पड़ता है।
5. समाचार पत्र के क्षेत्र में कार्यकुशलता की अधिक मांग होती है। जो व्यक्ति कार्यकुशल है वही इस क्षेत्र की वर्तमान चुनौतियों का सामना कर सकता है जिससे इस क्षेत्र से जुड़ी संस्थानें अधिक लाभ अर्जित कर सकें एवं समाचार पत्र के क्षेत्र में बने रह सकें।

सुझाव :-

1. समाचार में कार्यरत कर्मचारियों को शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए वेतन-भत्ते की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे आने वाली पीढ़ी को और अधिक सक्षम एवं संबल बनाया जा सकें।
2. समाचार पत्र में कार्यरत कर्मचारियों को कार्य संबंधी शिक्षा एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए जिससे वे अधिक कार्यकुशल हो।
3. इस क्षेत्र के विकास एवं इस क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों के विकास एवं सुरक्षा हेतु

सरकार द्वारा कई ठोस अधिनियम बनाए गए है परंतु इनमें सुधार की आवश्यकता है, तथा इस क्षेत्र को सरकारी दबाव से स्वतंत्र होने की आवश्यकता है, ताकि सही मायने में यह एक स्वतंत्र जनमत का निर्माण कर सके।

4. कर्मचारियों को आवश्यकता के समय चिकित्सीय सुविधा एवं भत्ता सरलता से प्राप्त हो जाए ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए। चिकित्सीय सुविधा या भत्ता प्राप्ति की प्रक्रिया जटिल होने के कारण कर्मचारी इन सुविधाओं के लाभ से वंचित रह जाते है तथा कुछ ही कर्मचारी इन सुविधाओं से लाभ प्राप्त करते है।

5. इस क्षेत्र में महिला कर्मचारियों की सहभागिता को बढ़ाया जाय। उन्हे उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाय तथा इस क्षेत्र में कार्य हेतू प्रेरित किया जाए एवं कार्यरत् महिला कर्मचारियों को उचित एवं सुरक्षित वातावरण प्रदान किया जाए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. आर्थिक वृद्धि के कारक : आर्थिक तथा गैर–आर्थिक, विकास का अर्थशास्त्र, एम.एल.झिंगन, पंचदश संस्करण, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि., 63.
2. दुबे, शैलेन्द्र (2018) "हिंदी पत्रकारिता के शिल्प में जनभाषा का प्रभाव","विश्व हिंदी पत्रिका 2018",विश्व हिंदी सचिवालय इंडिपेंडेंस स्ट्रीट, फेनिक्स 73423, मॉरीशस,प्रधान संपादक–प्रो. विनोद कुमार मिश्र, पृष्ठ 87.
3. साहू, कविता एवं ए.के.पाण्डेय(2018), "छत्तीसगढ़ में प्रिंट मीडिया का योगदान : समाचार पत्र के विशेष संदर्भ में ", रिसर्च जनरल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेंट एण्ड सोशल साइंसेस, प्रमुख संपादक –प्रोफेसर ब्रजगोपाल, मार्च 2018, पृष्ठ क्र. 93,95,101.
4. शर्मा, वन्दना(2017)"मीडिया और बाजार","रिसर्च लिंक – एन इंटरनेशनल जरनल–156", संपादक – डॉ. रमेश सोनी, मार्च – 2017, पृष्ठ क. – 14.
5. बागची, डॉ. गोपा (2015) "राज्य के विकास में मीडिया संस्थानों की भूमिका ","स्वदेश ", संस्करण 2015, पृष्ठ क्रं. 58,59.
6. पुरी, अरूण (2015) "निशाने पर कलम के सिपाही ", "इंडिया टुडे", प्रधान संपादक अरूण पुरी, पृष्ठ क्र. 64, 65 प्रकाशन तिथि– 22 जुलाई
7. वर्मा, आराधना/डॉ.मधु जैन(2014) " हिन्दी पत्रकारिता का बदलता परिदृश्य "," समागम ", संस्करण 2014, पृष्ठ क्रं 34,40
8. सिंह,गोविंद (2013) " पत्रकारिता मिशन नहीं, अब प्रोफेशन है ", "समागम", संस्करण 2013, पृ. क्र. 3.
9. श्रीवास्तव, डॉ. निखिल कुमार(2013), "भारत में जनसंचार साधन तथा दलित युवा: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन", Research Digest, vol.8 Issue-1,April-June 2013,Page-82,84,85
10. सिद्दीकी, डॉ. शाहेदा एवं अकबर खान, "साहित्यिक पत्रकारिता का समाज पर प्रभाव","सामाजिक सहयोग,राष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका",जनवरी–मार्च 2010,शोध प्रबंधन अभिषद उज्जैन,पृष्ठ – 36–,39.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

डिण्डौरी जिले के बैगा जनजाति में प्रवासिता की समस्या का आर्थिक अध्ययन

•भावना अभिषेक प्रधान
••एन. जी. पेण्डसे

सारांश- इस अध्ययन में बैगा जनजातीय समुदाय में प्रवासिता की समस्या का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसे ''राष्ट्रीय मानव'' के नाम से जाना जाता है। मध्य प्रदेश के डिण्डौरी जिले में यह जनजाति अपनी मूल परंपरा को संजोय हुए जीवन यापन कर रही है आज भी अपने मूल रूप में 'बैगा चक' निवास करती है इसे 'विशेष पिछड़ी जनजाति का दर्जा प्राप्त है और राज्य के विकास की मुख्य धारा में इन्हें जोड़ना हमारी प्राथमिकता पहले भी थी और वर्तमान में है। विकास की धारा में आदिवासी या जनजातीय कहे जाने वाले लोगों का विकास लक्ष्य के अनुरूप नही हो पाया है जनजातियों को विकास की मुख्यधारा में जोड़ने के साथ इस बात को ध्यान रखना अति आवश्यक है कि पर्यावरण को क्षति पहुंचाए बिना हम विकास करें। हमें अपनी योजना के निर्माण में ''धारणीय विकास'' की अवधारणा को पूर्ण रूप से समाहित करना है अन्यथा पर्यावरण से जुड़ी, पूर्ण रूप से आश्रित जनजातियां अन्य स्थानों की ओर प्रवास करने को मजबूर हो जाएंगी। आवश्यकता इस बात की है कि आर्थिक विकास की इस धारणा में जनजातीय समुदाय व पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने की जवाबदेही को हमें आत्मसाद करने की आवश्यकता है। यह अध्ययन 2018-19 के प्रथमिक आकड़ो पर आधरित है, इस अध्ययन में डिण्डौरी जिले के बैगा जनजाति में प्रवासिता की समस्या का आर्थिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

मुख्य शब्द- बैगा जनजाति, प्रवास

प्रस्तावना- आज जब पूरी दुनिया में कोविड-19 के कारण एक ठहराव सा आ गया है, इस अनिश्चितता के दौर में हमने प्रवास को देखा है, इसके स्वरूप देखा है, इस दौर में ऐसा शायद ही ऐसा कोई क्षेत्र हो जो प्रवासित लोगों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा न हो। हमारा देश, राज्य, जिला सभी इससे प्रभावित हैं। ब्रिटिश काल के दौरान भी मानव जाति के सुव्यवस्थित ढंग से अध्ययन के लिये वेरियर एलविन (1943)[1] जनजातीय समाज के लोग स्वयं को जंगलों और वनीय इलाकों में तटस्थ रखते हैं इनका यह सिद्धान्त सामाजिक मानवशास्त्र के तहत 'Public Park Theory' के नाम से जाना जाता है। इन्होंने अपने सिद्धान्त में बताया कि जनजातीय समाज से भिन्न व्यक्ति या सामान्य मानव को उनके निवास स्थान पर राज्य सरकार की अनुमति के बिना प्रवेश निषेध है, यह इनकी तटस्थता की पुष्टि करता है। मजूमदार (1944)[2] जनजातियों की सांस्कृतिक पहचान को उनके मूल रूप में बनाए रखने के लिये प्रयास करना चाहिये। उनका मानना है कि हम उनके एकांकीपन को बाधित करते हैं। जनजातियों की विशिष्टता को बनाए रखने के लिये सामाजिक विकास के सभी तत्वों को उनके क्षेत्रों में जाने से रोकना साथ ही जनजातीय जीवन से संबंधित तत्वों को ही केवल जाने की अनुमति देनी चाहिये। ताकि शहरी जीवन के अवगुणों को दूर रखा जा सके। चौधरी, नाथ, दत्ता 2011[3] केन्द्र सरकार की स्वास्थ्य सुविधाओं पर व्यय का अध्ययन किया है इसके आधार पर कहा जा सकता है कि वर्ष 2000 एवं 2009 की अवधि के मध्य केन्द्र सरकार का स्वास्थ्य सुविधाओं पर व्यय 15 से 30 प्रतिशत बढ़ा है। केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को

• शोध छात्रा, अर्थशास्त्र विभाग रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (मध्य प्रदेश)
•• अर्थशास्त्र विभाग रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर (मध्य प्रदेश)

विभिन्न योजनाओं के तहत धनराशि व्यय करती है। स्वास्थ्य सुविधाओं पर व्यय का प्रतिशत उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, असम, पश्चिम बंगाल, और आंध्रप्रदेश में अधिक है साथ ही विभिन्न राज्यों के मध्य प्रति व्यक्ति स्वास्थ्य व्यय की कोई निश्चित प्रवृति भी दिखाई नहीं देती। जनगणना 2011 [4] डिण्डौरी जिले में मुख्यतया कृषि की जाती है 45.77 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित हैं धान व गेहूँ मुख्य फसलें है, कुल भूमि का लगभग 23.76 प्रतिशत भूभाग वनों से आच्छादित है, जल संसाधन की कमी है, यहाँ मध्यम व बड़े उद्योगों का अभाव है जिले का कोई भी भाग रेल लाइन से नहीं जुड़ा है साथ ही बिजली का उत्पादन भी नहीं किया जाता। एन एफ एच एस -4 2015 -16[5] डिण्डौरी जिला ग्रामीण जनसंख्या बाहुल्य जिला है 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, लिंगानुपात 1004 व ग्रामीण क्षेत्र में 1012 है, महिला साक्षरता 50.7 प्रतिशत व ग्रामीण क्षेत्र में 49.5 प्रतिशत, संस्थागत प्रसव का प्रतिशत 55.8 प्रतिशत व ग्रामीण क्षेत्र में 55.7 प्रतिशत है। ए सी सी इ एस एस हेल्थ इनटरनेशनल मार्च 2016[6] मध्य प्रदेश के 2 जिलों पन्ना एवं सतना पर केंद्रित है जहाँ छुआछूत, बच्चों में बालक को अधिक महत्व दिया जाना सामाजिक बुराइयों में सबसे बड़ी सामाजिक बुराई है परिणामस्वरूप मातृत्व स्वास्थ्य व लिंगानुपात प्रभावित होता है। यह अध्ययन प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है व मध्य प्रदेश की स्वास्थ्य सुविधाओं की खराब स्थिति को बताता है। ठकराल ,रहमान 2018[7] डिण्डौरी जिला 25 मई 1998 को गठित हुआ है जिले की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है, सन 2006 पंचायती राज मंत्रालय ने भारत के अत्यंत पिछड़े 250 जिलों में इसे शामिल किया था तब से बी आर जी एफ के तहत यह जिला विशेष निधि प्राप्त कर रहा है। वर्ष 2012-13 में चालू कीमत पर जिले की सकल घरेलू उत्पाद 1,79,356 लाख थी। 2011 की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर 63.9 प्रतिशत। इस अध्ययन में बैगा जनजातीय समुदाय में प्रवासिता की समस्या का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिसे ''राष्ट्रीय मानव'' के नाम से जाना जाता है। मध्य प्रदेश के डिण्डौरी जिले में यह जनजाति अपनी मूल परंपरा को संजोय हुए जीवन यापन कर रही है आज भी अपने मूल रूप में 'बैगा चक' निवास करती है।

मध्य प्रदेश के 55 जिलों में से एक डिण्डौरी जिला 22 मई 1998 को मण्डला जिले से विभक्त होकर अस्तित्व में आया पूर्व में यह रामगढ़ से जाना जाता था, यह भौगोलिक रूप से यह मैकाल पर्वत श्रेणी पर स्थित हैं, मध्य प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित होने के कारण छत्तीसगढ़ राज्य की सीमा से लगा हुआ, जीवन रेखा नदी- नर्मदा के तट पर स्थित है, घुधवा राष्ट्रीय उद्यान, लक्ष्मण मड़वा, प्राकृतिक झरने नेवसा फॉल, दगोना फॉल, देवनाला हैं, तो वहीं बिना किसी पाबंदी के कृष्ण मृग भी कारोपानी में अपने प्राकृतिक आवास में रहते हैं साथ ही प्राचीन कालीन स्थापत्य कला कुकर्रामठ या ऋणेश्वर मंदिर, है जो अपने आप में अनुपम कृति के कारण यह जिला मध्य प्रदेश में अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है। यहाँ विभिन्न प्रकार की अनुसूचित जनजातियाँ अपनी मूल परंपरा को संजोय हुए जीवन यापन कर रही हैं और इनके बीच 'बैगा' जनजाति का नाम लेना आवश्यक है क्योंकि यह जनजाति आज भी अपने मूल रूप में 'बैगा चक' निवास करती है इसे 'विशेष पिछड़ी जनजाति का दर्जा प्राप्त है। पठारी क्षेत्र होने के कारण, सिंचाई सुविघाओं का अभाव, शिक्षा, स्वास्थ्य की समस्या, रोजगार की समस्याओं ने इस क्षेत्र में लोगों को अन्य क्षेत्रों की प्रवास को प्ररित किया है, यह शोध पत्र इसी समस्या का अध्ययन है।

बैगा जनजाति- बैगा द्रविड़ वर्ग की जनजाति है जिसे ''अत्यंत पिछड़ी जनजाति'' घोषित

किया जाता किया जाता है इसे 'धरती पुत्र' या 'बिछवार' कहकर संबोधित किया जाता है। बैगा अधिकांश मध्य प्रदेश में गुनिया और ओझा का भी पर्याय है। यह सही है कि अधिकांशत: बैगा ओझा होगे हैं किन्तु ऐसा नहीं है कि गुनिया और ओझा उनके वितरण क्षेत्र में बैगा जाति के ही पाए जाते हैं। बैगा लोगों को इसी आधार पर गलती से गोंड़ भी समझ लिया जाता है, जबकि एक ही भौगोलिक क्षेत्र में पाई जाने वाली ये दोनों कोल एवं द्रविड़ जनजाति समूहों से सम्बन्ध हैं।[8]

बैगा जनजाति मध्य प्रदेश के पूर्वी सतपुड़ा डिण्डौरी, मण्डला, बालाघाट तथा सीधी जिलो में निवास करती है। बैगा जनजाति के लोग घने जंगलो के दुर्गम क्षेत्रों में निवास करते है बैगा जनजाति के लोग घने जंगलो के दुर्गम क्षेत्रों में निवास करते है, इनके घर बॉस और मिटटी के बने होते हैं जिनकी छत घास और पत्तियों की बनी होती है। चूँकि ये क्षेत्र स्वयं में दुर्गम है सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन के कारण सड़कों व आधारभूत संरचना का विकास हो रहा है, व और विकास किया जाना अभी बाकी है । बैगा जनजाति के लोगों का कद मध्यम उॅचा, शरीर सुगठित, नाक चपटी, रंग काला एवं बाल सीधे । बैगा समाज पित्र संचालक समाज है और अनेक शाखाओं में विभक्त है। इनमे गोत्र प्रथा प्रचलित है और संगोत्री विवाह नहीं होता। बैगा जनजाति में जाति पंचायती व्यवस्था प्रचलित है।

जनजातियों की समस्याएँ	
• जल की समस्या	• कृषि की समस्या
• जंगल की समस्या	• गरीबी व ऋणग्रस्तता की समस्या
• जमीन – भू–अधिग्रहण की समस्या	• आवागमन के साधनों की समस्या
• शिक्षा की समस्या	• आधारभूत संरचना का प्रभाव
• स्वास्थ्य व कुपोषण की समस्या	• सांस्कृतिक समस्या
• रोजगार की समस्या	• प्रवास की समस्या

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रवासिता की समस्या- प्रवास एक जनांकिकीय कारक है जिससे आर्थिक गतिविधियां प्रभावित होती हैं। प्रवासिता की समस्या वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण है प्रवास एक ओर इसका महत्व समाजशास्त्र जनांकिकीय, भूगोल में तो बढ़ा है साथ ही जब हम इसका अध्ययन जनजातीय समुदाय के संदर्भ में करते हैं, तो इसका महत्व अत्याधिक बढ़ जाता है। जनजातीय समूह आकर्षण, विकर्षण कारकों से प्रभावित होकर प्रवास करता है। परिणाम स्वरूप उनके आर्थिक पहलुओं पर प्रभाव पड़ता है साथ ही उन्हें अपनी पहचान बनाने में भी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। सरकार विभिन्न समुदायों के आर्थिक सामाजिक विकास के लिये विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाती हैं, लेकिन जिन लोगों के लिये ये योजनाएँ बनाई जाती हैं अन्यत्र चले जाएँ तो योजनाएँ फलीभूत नहीं हो पाती हैं। प्रवास के कारणों का अध्ययन कर उन्हें समाप्त करने का प्रयास किया जाए और जनजातीय समुदाय के लोगों को उनके मूल निवास स्थान पर रोककर उन्हे सरकारी योजनाओं का लाभ प्रदान किया जाना चाहिये। वर्तमान संदर्भ में प्रवासिता की समस्या का अध्ययन कर व पर्यावरण क्षति पहुंचाए बिना जनजातियों को विकास की मुख्यधारा में जोड़ना आवश्यक है।

प्रवास के कारण-

1 विकर्षण कारक

2 आकर्षण कारक

आकर्षण कारक- प्रमुख प्रेरित करने वाले कारक जो व्यक्ति को एक स्थान से अन्य जाने के लिये प्रेरित करते हैं जैसे–

1 बेराजगारी
2 खस्ता आर्थिक स्थिति
3 संभावनों की कमी
4 संसाधनों की कमी
5 प्राकृतिक आपदाएँ या कारक
6 ग्रामीण क्षेत्रों में आय के साधनों का अभाव

अध्ययन का महत्व- यहाँ विभिन्न प्रकार की अनुसूचित जनजातियाँ अपनी मूल परंपरा को संजोय हुए जीवन यापन कर रही हैं और इनके बीच 'बैगा' जनजाति का नाम लेना आवश्यक है क्योंकि यह जनजाति आज भी अपने मूल रूप में 'बैगा चक' निवास करती है इसे 'विशेष पिछड़ी जनजाति का दर्जा प्राप्त है और राज्य के विकास की मुख्य धारा में इन्हें जोड़ना हमारी प्राथमिकता पहले भी थी और वर्तमान में है। आदिवासियों या आदिवासी जनजातियों का रहन –सहन सामाजिक आर्थिक व्यवस्था भिन्न है, और जिस विकास को हम अपने चारों ओर देखते हैं वही विकास इन जनजातियों तक नहीं पहुच पाया है, आज हमें आजादी प्राप्त किये हुए 73 वर्ष पूर्ण हो चुके हैं और हमारे देश ने चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो, सांस्कृतिक व अन्य क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास किया है, मुख्य रूप से वैश्वीकरण के सानिध्य में, और जब हम आदिवासी जनजातियों की ओर देखते हैं तो हमें पता चलता है कि ये लोग इस विकास से तो अभी काफी दूर है, और हमारे देश के संपूर्ण या समग्र विकास के लिये इनका विकास किया जाना अत्यंत आवश्यक है। इस अध्ययन की सहायता से यह जानने का प्रयास किया जा रहा है कि सरकार विभिन्न समुदायों के आर्थिक, सामाजिक विकास के लिये विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाती हैं, लेकिन जिन लोगों के लिये ये योजनाएँ बनाई जाती हैं अन्यत्र चले जाएँ तो योजनाएँ फलीभूत नहीं हो पाती हैं। प्रवास के कारणों का अध्ययन कर उन्हें समाप्त करने का प्रयास किया जाए और जनजातीय समुदाय के लोगों को उनके मूल निवास स्थान पर रोककर उन्हे सरकारी योजनाओं का लाभ प्रदान किया जाना चाहिये।

उद्येश्य– प्रस्तुत शोध पत्र में निम्न उद्येश्यों का अध्ययन किया गया है।

- बैगा जनजाति में प्रवास की प्रकृति का अध्ययन करना।
- कृषि के स्तर व प्रवास के मध्य अन्तर संबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पना- प्रस्तुत शोध पत्र में निम्न परिकल्पनाएं ली गई हैं।

- बैगा जनजाति में प्रवास अत्यधिक होता है।
- कृषि के स्तर व प्रवास के मध्य विपरीत संबंध है

शोध प्रविधि

अध्ययन का क्षेत्र- प्रस्तुत अध्ययन डिण्डौरी जिले के संदर्भ में किया जाना है, यह जिला अनुसूचित जनजाति बाहुल्य है। जिसमें मुख्यत: गोंड़, कोल, पारधी, परधान, अगरिया, बैगा आदि जनजातियां निवासरत हैं। डिण्डौरी जिले के बैगा चक के अंतर्गत कुल 52 ग्रामों को शामिल किया गया है ये वे ग्राम हैं जिनमें बैगा जनजाति के लोगों की जनसंख्या अधिक है व यहां ये लोग अभी भी अपनी आदिम सभ्यता में निवास करते हैं।

अध्ययन की अवधि- इस अध्ययन के लिये समंकों का संकलन वर्ष 2018-2019 की

अवधि के मध्य किया गया है।

समंक स्त्रोत- शोध हेतु समंकों का एकत्रीकण प्राथमिक व द्वितियक स्त्रोतों से किया गया है इस हेतु प्रश्नावली बनाई गई है, उद्देश्यों के आधार पर प्रश्नावली को 7 भागों में विभक्त किया गया है।

1. प्राथमिक समंकों का एकत्रीकण प्रश्नावली द्वारा किया गया है
2. द्वितियक समंकों का एकत्रीकण निम्न के द्वारा किया गया है।
    - बैगा विकास अभिकरण डिण्डौरी, जिला डिण्डौरी (म.प्र.)
    - जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स भोपाल (म.प्र.) 462002
    - mptribalmuseum.com

न्यादर्श क चयन- न्यादर्श का चयन सविचार निदर्शन विधि से किया गया है, इस विधि के अनुसार न्यादर्श इकाइयों का चुनाव समझ बूझकर एवं अपनी इच्छा अनुसार किया जाता है। चुनाव करते समय यह प्रयत्न किया जाता है कि समग्र की विशेषताएं न्यादर्श में आ जाए और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, समग्र की प्रत्येक प्रकार की विशेषता को प्रकट करने वाले पदों को अपने न्यादर्श में सम्मिलित करते हैं।

यह अध्ययन प्राथमिक व द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है इसमें सम्पूर्ण जिले डिण्डौरी को शामिल किया गया है इसमें 3 विकासखण्ड ऐसे हैं जिनमें बैगा जनजाति की जनसंख्या अधिक है और बैगा चक क्षेत्र शामिल है को चुना गया है ये हैं बजाग, समनापुर व करंजिया विकासखण्ड को लिया गया है, जिसमें 52 ग्रामों के 554 परिवारों को शामिल किया गया है।

तालिका 01

वर्ष 2004-05 के सर्वेक्षण अनुसार बैगा चिन्हांकित ग्रामों की जानकारी

क्र.	विकासखण्ड का नाम	निवासरत बैगा जनजाति के परिवारों की संख्या	जनसंख्या		
			पुरुष	महिला	योग
1	डिण्डौरी	801	1595	1674	3269
2	शहपुरा	476	983	980	1963
3	मेंहदवानी	598	1376	1358	2734
4	अमरपुर	532	1146	1074	2220
5	समनापुर	920	2133	2126	4259
6	करंजिया	697	1696	1732	3428
7	बजाग	1159	2824	2746	5570
कुल योग		5178	11753	11690	23443

स्त्रोतः बैगा विकास अभिकरण डिण्डौरी, जिला डिण्डौरी (म.प्र.)

तालिका 02

डिण्डौरी जिले के बैगा चक क्षेत्र के 52 ग्राम

विकासखण्ड का नाम	समनापुर	करंजिया	बजाग
ग्राम	18	25	9

स्त्रोतः बैगा विकास अभिकरण डिण्डौरी, जिला डिण्डौरी (म.प्र.)

विश्लेषण एवं निष्कर्ष- शोध क्षेत्र डिण्डौरी जिले के पूर्वोत्तर भाग में स्थित है, जंगल के बीच में होने के कारण यह प्राकृतिक रूप से बहुत ही अनुपम है। जंगल, झरने, चिड़ियों की चहक, इनके साथ ही यहां रहने वाले लागों की सुबह होती है। ठण्ड, गर्मी या बरसात हो, सभी मौसम में ये स्थान नया- सा लगता है। यहां रहने वाले लोग आज भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति

के लिये प्रकृति पर ही काफी हद तक निर्भर है। पठारी भूमि होने के कारण समतल सतह का अभाव है, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से कृषि को प्रभावित करती है जिससे कृषि कार्य में लगे लोगों का आय भी प्रभावित होता है। डिण्डौरी जिले में उद्योगों का अभाव, इस क्षेत्र में भी उद्योग नहीं है अर्थात रोजगार के अवसरों का भी अभाव है। इन क्षेत्रों में वनों पर आधारित उद्योगों की स्थापना की संभावना है, साथ ही प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाए रखना भी एक कड़ी चुनौती है।

बैगा जनजाति में प्रवास की प्रकृति-

- बैगा जनजाति में प्रवास की प्रवृत्ति बढ़ी है, गांव से शहरी क्षेत्र की ओर अधिक प्रवास हुआ है साथ ही प्रवास राज्य के भीतर और बाहर, दोनों ओर हो रहा हैं, मुख्य राज्य हैं छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश की ओर मुख्य रूप से हो रहे हैं, प्रवास में पुरुषों का अनुपात महिलाओं की तुलना में अधिक है।
- प्रवास उन क्षेत्रों की ओर अधिक हो रहा है जहां रेलवे लाइन बिछाई जा रही हैं, श्रम आधारित उद्योग हैं। ये लोग मुख्य रूप से मजदूरी करने के लिये ही अन्य क्षेत्रों की ओर प्रवास करते हैं।
- बैगा जनजाति के लोग भी मजदूरी करने के लिये अन्य क्षेत्रों की ओर प्रवास करते हैं कभी कभी चिकित्सा सुविधाओं की प्राप्ति हेतु भी प्रवास किया जाता है।
- एकल परिवार के कारण अधिकांशतया पुरुषों के साथ महिलाएं भी प्रवास करती है। गांव में यदि कोई व्यक्ति प्रवास को गया है और आय की प्राप्ति से जीवन स्तर में आए सुधार को देखकर गांव के अन्य व्यक्ति प्रवास करने के लिये प्रेरित होते हैं।
- प्रवास के कारण जहां ये जाते हैं इन्हें विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे जीवन यापन की परेशानी, भाषायी परेशानी, अकेलापन, बच्चों की शिक्षा का प्रभावित होना इत्यादि।

कृषि के स्तर व प्रवास के मध्य अन्तरसंबंध का अध्ययन-

- इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है, सिंचाई की सुविधा न होने के कारण यह वर्षा पर आधारित है वर्षा की अनियमितता से कृषि प्रभावित होती है, आय की कमी, साथ ही बेरोजगारी जन्म लेती है परिणामतया आदिवासी जनसंख्या रोजगार की प्राप्ति हेतु प्रवास करती है।
- जंगली जानवरों के द्वारा फसलों को नष्ट करने से निम्न आर्थिक स्थिति के कारण बेरोजगारी बेरोजगारी जन्म लेती है परिणामतया आदिवासी जनसंख्या रोजगार की प्राप्ति हेतु प्रवास करती है।
- कृषि के स्तर व प्रवास के मध्य विपरीत अन्तरसंबंध पाया गया है अर्थात कृषि का स्तर निम्न है, आय की प्राप्ति कम होती है जिसके कारण अधिक आय की प्राप्ति की इच्छा प्रवास को बढ़ाती है।

सुझाव- प्रवास को कम करने के लिये सुझाव निम्न हैं:-

1. **कृषि के स्तर को सुधारना:** बैगा जनजातिया आज भी परंपरागत कृषि पद्धति से कृषि कार्य कर रही है। कृषि पद्धति में हुएं नवाचार को उन तक पहुचाना होगा। कृषि के स्तर व प्रवास के मध्य विपरीत संबंध है, अत: कृषि के स्तर को बेहतर बनाकर प्रवास को नियंत्रित किया जा सकता है।

2. कृषि विपणन को सुव्यवस्थित करना– उनके (बैगा जनजातिया) द्वारा किये गये उपज के विपणन की सुविधा उचित मूल्य के साथ उपलब्ध करवानी चाहिए।
3. रोजगार के अवसरों का विकास– उनके (बैगा जनजातिया) परंपरागत रोजगार को ही आधुनिकीकरण के माध्यम से उनके निवास स्थान पर ही उपलब्ध करवाने के प्रयास किये जाने चाहिए।
4. वनोपज को जंगलों से प्राप्त करने, संग्रहण व विक्रय की उचित व्यवस्था करना।
5. दोना पत्तल उद्योग जैसे उद्योंगों की स्थापना करना– उनके निवास स्थान प्राय: जंगल या जंगल के समीप होते है जिससे आसानी से पेड़ के पत्ते उपलब्ध होगे अत: पत्ते पर आधरित दोना पत्तल उद्योग की स्थापना उस क्षेत्र के विकास में सहायक सिद्ध हो सकती है सरकार को इस तरफ ध्यान देने की आवश्यकता है।
6. उनके शिक्षा, स्वास्थ्य की उचित व्यवस्था करना चाहिए ताकि उनकी नई पीढ़ी आधुनिकता के साथ आगे बढ़े।

उपसंहार- यह शोध पत्र प्रवासिता की समस्या का आर्थिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। डिण्डौरी जिला, जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र है, विभिन्न कारणों से लोगों में प्रवास की प्रवृत्ति बढ़ी है। कृषि का निम्न स्तर, इसकी अनिश्चितता, प्रवास के लिये मुख्य उत्तरदायी कारण है। सरकार विभिन्न समुदायों के आर्थिक सामाजिक विकास के लिये विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनाती हैं, लेकिन जिन लोगों के लिये ये योजनाएँ बनाई जाती हैं अन्यत्र चले जाएँ तो योजनाएँ फलीभूत नहीं हो पाती हैं। प्रवास के कारणों का अध्ययन कर उन्हें समाप्त करने का प्रयास किया जाए और जनजातीय समुदाय के लोगों को उनके मूल निवास स्थान पर रोककर उन्हे सरकारी योजनाओं का लाभ प्रदान किया जाना चाहिये। इस हेतु रोजगार के अवसरों का विकास किया जाना अति आवश्यक है जैसे दोना पत्त्ल उद्योग, वनोपज का संकलन व संग्रहण की व्यवस्था, जनजाति कला का विकास हेतु प्रयास आदि । वर्तमान संदर्भ में प्रवासिता की समस्या का अध्ययन कर व पर्यावरण क्षति पहुंचाए बिना जनजातियों को विकास की मुख्यधारा में जोड़ना आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. Verrier, Elwin, "*The Aborginals",* Oxford University Press, New Delhi. (1943)
2. Majumdar, D.N. "Races and *Cultures oflndia, Asia Publishing*". *Asia Publishing* House Delhi. (1944),
3. Mita Choudhury ,H.K. Amar Nath, Pritam Datta "Health Expenditure By The Central Government In India: State Level Distribution" National Institute Of Public Finance And Policy New Delhi – 110067 September 2011
4. DISTRICT CENSUS HANDBOOK Dindori CENSUS OF INDIA 2011 Madhya Pradesh Series -24 PART XII-A Directorate Of Census Operations Madhya Pradesh
5. Ministry Of Health And Family Welfare National Family Health Survey -4, 2015-16 District Fact Sheet Dindori International Institute For Population Sciences *(Deemed University)* Mumbai Website: Http://Www.Mohfw.Nic.In
6. ACCESS Health International Madhya Pradesh Health Systems Assessment Report Health Supporting Program November 2014- October2015 Prepared For The Department For International Development ACCESS Health India March 2016 *ACCESS Health International, Inc. 1016 Fifth Avenue, Suite 11A/C New York, New York 10028 United States*
7. Dr. R.K. Thukral , Dr. Shafeeq Rahman (2018) "Madhya Pradesh District

Factbook Dindori District" Key Socio-Economic Data Of Dindori District, Madhya Pradesh Datanet India Pvt. Ltd.D-100, 1st Floor, Okhla Industrial Area, Phase-I, New Delhi-110020. ISBN : 978-93-86683-43-4

8. श्रीनाथ शर्मा (2017), "जनजातीय समाज", अध्याय 15 मध्यप्रदेश में प्रमुख जनजातियां : परिचय, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, तृतीय (आवृत्ति) 2017, पृष्ठ 234–260

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

उत्तराखण्ड में लोकोत्सव एवं पर्व

●अवधेश तिवारी

सारांश- भारत के उत्तर में स्थित देवभूमि के नाम से विख्यात उत्तराखण्ड राज्य अपने आप में अद्वितीय विशेषताओं से परिपूर्ण है। प्राकृतिक सौन्दर्य को धारण किये हुए यह राज्य हिमालय की सुरम्य घाटियों के मध्य बसा हुआ है जहाँ पर पंच बद्री (बद्री विशाल, भावस्य बद्री, योग ध्यान बद्री, वृद्धा बद्री आदि बद्री) पंच प्रयाग(नन्द प्रयाग, कर्ण प्रयाग, विष्णु प्रयाग, रूद्र प्रयाग, देव प्रयाग) पंच केदार (केदारनाथ, तुंगनाथ, रूद्रनाथ, माध्यम महेश्वर, कल्पेश्वर) गंगोत्री, यमुनोत्री, हरकी पौड़ी, लक्ष्मण झूला ,नैना देवी, पाताल भुवनेश्वर, जागेश्वर धाम इत्यादि अनेकानेक पौराणिक तीर्थस्थल विद्यमान है। इस राज्य में वैदिक तीर्थ स्थलों के साथ ग्राम देवता, स्थान देवता एवं कुल देवता के अस्तित्व को भी स्वीकार किया जाता है। यहाँ का समाज एक धर्म परायण समाज है जो धार्मिकता के साथ अपने विशिष्ट रीति रिवाज, प्रथाओ,पर्व एवं विशेष लोकोत्सव के कारण विश्व विख्यात है। यहाँ पर जनवरी माह से सूर्य के उत्तरायण होने के पश्चात वर्ष भर लोकोत्सव एव पर्व मनाए जाते है जिनमें फुलदेई, विखौती, हरेला, ओलगिया, दशै, दीपावली उत्तरायणी, यव संक्रांति, होलिका आदि प्रमुख है। प्रस्तुत शोध पत्र में उक्त लोकोत्सव एवं पर्वो का विवरणात्मक प्रविधि द्वारा अध्ययन करनें का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द- धर्म परायण समाज, विशिष्ट रीति रिवाज, प्रथायें, पर्व, विशेष लोकोत्सव

प्रस्तावना- उत्तराखण्ड राज्य हिमालय की सुरम्य घाटियों के मध्य बसा है जहाँ पर पंच प्रयाग (नंद प्रयाग, कर्ण प्रयाग, विष्णु प्रयाग,रूद्र प्रयाग, देव प्रयाग), पंच बद्री (बद्री विशाल, भावस्य बद्री, योगध्यान बद्री, वृद्धा बद्री , आदि बद्री), पंच केदार (केदार नाथ, तुंगनाथ, रूद्र नाथ, मध्यममाहेश्वर, कल्पेश्वर) गंगोत्री, यमुनोत्री, नैना देवी, इत्यादि अनेकानेक पौराणिक तीर्थस्थल विद्यमान है। यह राज्य $28^{0}43'$ उत्तर से $31^{0}27'$ उत्तर तक तथा $77\ ^{0}34'$, पूर्वी से $81^{0}02'$ पूर्वी के बीच स्थित है जिसका कुल क्षेत्रफल 53483 वर्ग किलोमीटर है, जिसमें 43033 वर्ग किलोमीटर पर्वतीय तथा 7448 वर्ग किलोमीटर मैदानी भूभाग है। इस राज्य का निर्माण कई वर्षो के आन्दोलन के फलस्वरूप 9 नवम्बर 2000को 27वें राज्य के रूप में हुआ। जनवरी 2007 में पौराणिक मान्यताओं एवं जनभावनाओं को ध्यान में रखते हुए इस राज्य का नाम उत्तराँचल से उत्तराखण्ड कर दिया गया। उत्तराखण्ड राज्य देवभूमि की मान्यता को पूर्णत: साकार करती है । इस राज्य में वैदिक तीर्थ स्थलों के साथ ही साथ स्थान देवता, ग्राम देवता एवं कुल देवता के अस्तित्व को भी स्वीकार किया जाता है तथा यहाँ पर हर गाँव, हर क्षेत्र अपनी अलग विशिष्टता को धारण करता है।[1]

धार्मिक स्थलों के आधिक्य के साथ - साथ यहाँ पर वर्ष भर कोई न कोई लोकोत्सव एवं पर्व मनाया जाता है। माह जनवरी में सूर्य उत्तरायण होने के साथ - साथ दीपावली के बाद तक यहाँ पर लोकोत्सव एवं पर्व मनाये जाते है। प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा उत्तराखण्ड में प्रमुख लोकोत्सव एवं पर्व पर विवरणात्मक प्रविधि द्वारा प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

लोकोत्सव, पर्व, लोकरीतियाँ, परम्पराओं एवं व्रतों का भारतीय सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। देवभूमि उत्तराखण्ड में वृहद परम्पराओं के

● सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र, सुमित्रानंदन पन्त राजकीय महाविद्यालयए गरुड़ (बागेश्वर)उत्तराखण्ड

साथ–साथ कई अन्य लोकोत्सव एवं पर्व मनाये जाते है, जो मिथकों एवं वैदिक परम्पराओं के परिवर्तित रूप होने का संकेत प्रदान करते हैं। पर्वतीय क्षेत्र के अंतर्गत भले ही कठिन जीवन होने के कारण भौतिक सुख सुविधाओं का अभाव रहा हो परन्तु उत्सवों एवं लोकरीतियों के मामले में यह काफी समृद्धशाली रहा है। यहाँ पर पूरे वर्ष किसी न किसी रूप में उत्सव एवं पर्व मनाये जाते है जिसकी शुरुआत प्रथम सौर माह में फुलदेई से प्रारम्भ होकर वर्ष भर चलता रहता है। यहाँ के प्रमुख लोकोत्सव में फुलदई, बिशू, हरेला, ओलगिया, उतरैणी घुगुतिया, नवरात्री, विजयदशमी, दीपावली, भैयादूज इत्यादि है। ये सारे पर्व एवं लोकोत्सव समय एवं आवश्यकता के अनुसार विकसित हुए है।[2]

उत्सव शब्द की व्युत्पत्ति उत् उपसर्ग एवं सु धातु के मिलने से हुई है जिसका अर्थ उत्साहित करना, आनंदित करना अथवा प्रेरित करना होता है । यह कई नाम रूपों में ऋग्वेद(1, 100, 8 एवं 1, 102, 2) से लेकर कई उत्तरवर्ती साहित्य में पाया जाता है।[3] लोकोत्सव एवं पर्व को उत्तराखण्ड की क्षेत्रीय बोलियों में, कौथिक, कौथिग, कौथिड्नाम से पुकारा जाता है जिसका विकास संस्कृत भाषा के 'कौतुक' नामक शब्द से हुआ है। गढ़वाल के पश्चिमी क्षेत्र के अंतर्गत धार्मिक स्थान से सम्बन्धित उत्सव को थौल नाम से पुकारा जाता है। थौल का तात्पर्य एक दिवसीय उत्सव से है जो तीर्थस्थान के उन्नत पहाड़ी पर मनाया जाता है, जो इस स्थान के धार्मिकता का परिचायक होता है। लोकोत्सव को किसी समाज के संस्कृति का अभिन्न अंग माना जाता है,जो ऐतिहासिक घटनाक्रम, आस्था, विश्वास, लोकोपचार से संबंधित होता है और इसको मानते हुए व्यक्ति अतीत के दृश्यों, अस्मिता, सामाजिक व्यवस्था पर दृष्टिपात कर सकता है, जो काल के गाल में समा चुकी है। उत्तराखंड के पर्वतीय समाज के व्यक्ति आधुनिकता के संपर्क के बावजूद अपने लोकोत्सव, पर्व, व्रतों इत्यादि को संरक्षित करने में सफल दिख रहे हैं जो यहां के लोगों का अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम को दर्शाता है। समय के साथ–साथ बहुत से लोकोत्सव के स्वरूप में परिवर्तन भी हुआ है या वे अपने वजूद को खोते जा रहे हैं। वे लोकोत्सव जो बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाए जाते हैं तथा यहां के जन समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, उनका विवरण निम्नवत है

01. फूल सग्याग या फूलदेई, पुष्प संक्रांति- यह लोकोत्सव मीन सक्रांति के अवसर पर उत्तराखंड के दोनों मंडलों में मनाया जाता है। इसको चौत माह के प्रथम सप्ताह में मनाने की प्रथा है। इस अवसर पर सुख, शांति, समृद्धि की मंगल कामना की जाती है। फूलदेई के त्यौहार को जौनसार, भाबर मैं गोगा नाम से पुकारा जाता है। सूर्योदय के पूर्व ही गृहणिया घर की साफ–सफाई करने के उपरांत घर के मुख्य द्वार के बाहर गेरुवे रंग का लेपन करती हैं तथा उस पर रंगोलियों द्वारा अलंकृत करती हैं तत्पश्चात घर की कुंवारी कन्याएं पुष्पों को अर्पण करती हैं। पुष्प चढ़ाने का यह कार्य चौत माह के प्रथम दिन से लेकर वैशाख माह के प्रथम दिन तक चलता रहता है पुष्प अर्पण करने के उपरांत कन्याओं का मुंह मीठा कराया जाता है तथा सामर्थ्यानुसार दक्षिणा भी प्रदान की जाती है । अपने घर पर पुष्प अर्पण करने के उपरांत बच्चे आसपास के घरों पर जाकर घर के दरवाजे पर पुष्पार्पण करते हैं और यह गीत गाते हैं।

फूल देई(धेई), छम्मा देई(धेई),
देणी द्वार, भर भकार,
ये देली सौ नमस्कार, पूजे द्वार बारम्बार नमस्कार,
फूल देई–छ्म्मा देई...

अर्थात फूल देई देहली फूलों से भरपूर और मंगलकारी हो । छम्मा देई– देहली ,

क्षमाशील अर्थात सबकी रक्षा करे। दैणी द्वार- देहली , घर व समय सबके लिए दांया अर्थात सफल हो । भरि भकार- सबके घरों में अन्न का पूर्ण भंडार हो ।[4] इस पर्व पर गृहणियाँ एवं गृहस्वामियों द्वारा भी मंगल गीत गाए जाते हैं । बच्चों को पुष्पार्पण के प्रतिदान के रुप में पैसे भी प्राप्त होते हैं, पैसे से खरीददारी कर पुए भी पकाए जाते हैं जिसका वे हर्षोल्लास पूर्वक आस्वादन करते हैं।

पिट्ठी एवं गुड़ घी से भोटान्तिक इलाके में एक विशेष प्रकार के पकवान तैयार किए जाते हैं। विवाहित महिलाओं के यहाँ इस माह में सांस्कृतिक परंपरा के अनुरूप उनका भाई भिटौली ले जाता है। यह भिटौली भाई-बहन के पवित्र स्नेह के बंधन को सुदृढ़ करता है तथा ससुराल में कन्या के सम्मान को बढ़ाता है। फूलदेई अप्रैल माह में होने के कारण पुष्पों की भी प्रबल उपलब्धता रहती है, यह नव वर्ष के नए प्रेम को दर्शाता है ।

02. विषुवत संक्रांति या बिखौती (बिशू या बिशू) - बिखौती या बिशू वैशाख माह की प्रथम तिथि अर्थात मेष संक्रांति के दिन मनाने की प्रथा है। लोक परंपरा एवं प्रचलित धारणा के अनुसार इसका संबंध शरीर या प्रगति में होंने वाले विष विकारों से संबंधित है। इस पर्व पर कत्यूरी राजाओं की उत्तर कालीन राजधानी वैराट(स्याल्दे, द्वाराहाट)पर सप्त दिवसीय मेले का भी आयोजन किया जाता है। मर्म चिकित्सा के द्वारा विष विकारों का परिहार किया जाता है तथा उदर से संबंधित विकारों को दूर करने के लिए शिशुओं के नाभि के चारों ओर लोहे के कुदालनुमा यंत्र को आग में तपा कर विषम संख्या में, पूर्व काल में दागा जाता था। इस दिन उड़द के बने हुए बड़े को तलकर खाया जाता है और इस अवसर पर खाने वाले को दगवाना होता है। इस अवसर पर देवर-भाभी के बीच गर्म सलाखे को छूने का भी विनोद किया जाता है। चौदांस एवं व्यास घाटी में बिच्छू घास से एक दूसरे को स्पर्श कराने का भी खेल किया जाता है जिसके संबंध में यह मान्यता है कि इससे शरीर में बिमारियां नहीं लगेगी। इस त्यौहार के साथ यह भी मान्यता है कि इस दिन यदि बरसात हो जाए तो वनस्पतियों के सारे रोग नष्ट हो जाते हैं ।इस दिन बकरे काटे जाते हैं, मछलियां पकड़ी जाती हैं तथा कई जगह मेले का भी आयोजन किया जाता है ।

ठा. मोलूराम अपने एक लेख "त्योहारों का सरताज विशु" (1987:87-96) में लिखते है कि "पहाड़ों पर मनाए जाने वाला विशु का त्यौहार मैदानी क्षेत्रों में मनाए जाने वाले वैशाखी के पर्व का प्रतिरूप न होकर पर्वतीय समाज का स्वतंत्र एवं विशिष्ट पर्व है। पहाड़ों पर विशु का त्यौहार मात्र वैशाख माह से संबंधित नहीं है। यहां विशु का त्यौहार चौत माह से प्रारंभ होता हैं तथा वैशाख के महीने के अंत तक मनाया जाता हैं"।[5]

03. हरेला- यह त्यौहार सौर मास श्रावण में कर्क संक्रांति के दिन मनाया जाता है। ज्योतिष गणना के अनुसार शुभ दिन नियत करके नौ या ग्यारह दिन पूर्व इसकी तैयारी शुरू कर दी जाती है। इस दिन महिलाएं पवित्र स्थान से मिट्टी लाती हैं और उसको छानकर पत्ते से बने बड़े दोनों या टोकरी में या काष्ठ की पट्टियों में भरकर उसमें पंच धान्य या सप्त धान्य(धान, मकई, उड़द ,गहत ,तिल , भट्ट ,सोयाबीन) आदि को बो देते हैं।

इसको घर पर ऐसे स्थान पर रखा जाता है जहाँ पर सूर्य की रोशनी नहीं पहुंच सके और इसको जलकणों से सिंचित किया जाता है ताकि इसकी निरंतर बढ़ोतरी होती रहे। सूर्य की रोशनी के अभाव में यह पीले होकर बढ़ते हैं। धान्यकणों को बोने का उत्तरदायित्व विवाहित महिलाओं को होता है जबकि इसके सींचने का उत्तरदायित्व कुंवारी कन्याओं को तथा उसके अभाव में कुल पुरोहित को सौंपा जाता है। घर के सदस्यों के आधार पर हरियाले

के दानों (पुटकों) का निर्धारण किया जाता है, इसका घटना अशुभ का सूचक माना जाता है। हरियाले के बोने से लेकर काटने तक की अवधि में, कूची बनाना ,चारपाई बुनना इत्यादि कार्य भी वर्जित माना जाता है। हरेला काटने की पूर्व संध्या पर पर्णपुटों में उगे इन अंकुरणों को बाँस की तीली के माध्यम से गुड़ाई की जाती है। इसके उपरांत सफेद चिकनी मिट्टी में रुई मिलाकर शिव–पार्वती और गणेश की मूर्तियों को हरियाले के मध्य स्थापित किया जाता है। गुड़ाई के लिए फलदार वृक्ष की टहनी का प्रयोग किया जाता है तथा पूजन के उपरांत ऋतुफल अर्पित किया जाता है। हरियाले को हरितालिका के रूप परिशोधित करके शिव–पार्वती के विवाह जयंती के साथ जोड़ कर पूजन इत्यादि का कार्य किया जाता है।[6]

सक्रांति के दिन प्रातः उठकर हरियाले को काटा जाता है और गृहणियां स्नानोपरान्त पकवान बनाने में लग जाती है। चौड़े पात्रों में सभी पकवानों को साथ रखकर हरियाले के पुटके में से एक को अक्षत पीठा लगी हुई छुरी से बारी–बारी से काटा जाता है तत्पश्चात पीतान्कुरों को सिर से पैर तक स्पर्श कराते हुए सुख, समृद्धि, आरोग्य, दीर्घायु की कामना की जाती है। हरेले को घर के उच्चतम बिंदु,कुल देवता, ग्राम देवता, स्थान देवता को अर्पित किया जाता है तथा गोबर की सहायता से मुख्य द्वार के दोनों तरफ चिपकाया जाता है। पुरुष अपने सिर पर तथा महिलाएं अपने बालों में गूंथती हैं ।यह विश्वास किया जाता है कि आज के दिन जो भी वृक्ष, लता, टहनी रोपी जाती है उसकी जड़ अवश्य पकड़ लेती है। विवाह के प्रथम बार बेटे एवं दामाद को इसमें अवश्य शामिल होना पड़ता है, असामान्य स्थिति उत्पन्न होने पर मायके में हरियाला संबंधी पकवान, हरियाला, दक्षिणा अवश्य भेजा जाता है तथा जो लोग बाहर होते हैं उनकों लिफाफे में हरियाला भेजा जाता है।

अट्किंसन के गजेटियर(1884)के अनुसार जोहार के शौका लोगों में यह उत्सव पंचबलि के नाम से मनाया जाता था, जिसमें ग्राम देवता को बकरा या भेड़, एक सूअर, एक भैंस का कट्टा तथा एक कद्दू या पैठे की बलि चढ़ाते थे । स्वादिष्ट खाना खाकर स्थानीय लोग मदिरापान कर आनंदित होते थे। सायंकाल एक कुत्ते को खूब मदिरा और भांग पिलाकर गांव के चारों ओंर की परिक्रमा करवाकर छोड़ दिया जाता था तथा पीछे से गांव के लोग लाठी एवं पत्थरों से मारकर खदेड़ते थे। इसके पीछे यह मिथक था कि वर्षभर यह गांव रोग एवं विपत्तियों से मुक्त रहेगा।[7] अट्किंसन के अनुसार अन्य शौका जनजाति में ढूरंगी नृत्य का आयोजन भैस को नचा कर इस अवसर पर किया जाता था।[8]

04. घ्यूसज्ञान या ओलगिया- यह त्यौहार (पर्व) भाद्र माह के प्रथम दिन सक्रांति को मनाया जाता है। यह कृषि एवं पशुपालन से संबंधित त्यौहार है, इसका दूसरा नाम घी संक्रांति भी है। इस अवसर पर माताएं अपने बच्चों के मांग में ताजा मक्खन लगाती हैं और उनके लंबे आयु की कामना करती हैं। इस दिन घर के सारे लोग घी मक्खन के उड़द की पिट्ठी जिसे बेड़वा रोटी भी कहते हैं, का भोजन करते हैं। यह जनमान्यता है कि इस दिन घी का सेवन न करने वाले घोंघा (गनेल) के रूप में पैदा होगा। इस पर्व पर हर व्यक्ति को घी खाने का मौका मिलता है। इस पर्व को कुमा ं क्षेत्र में ओलागिया भी कहते हैं। इस दिन ठेकी (काष्ठ दधिपात्र) दही, मक्खन, एक मुट्ठी गाबा, अरबी का गर्भस्थ कोपल, भुट्टा, खीरा आदि भेंट के रूप में दिया जाता है तथा ससुरालियों को दामाद की तरफ से ओगल दिया जाता है। गाबा को इस दिन के पूर्व नहीं तोड़ा जाता है। शौका, जोहार परगने के अंतर्गत इस त्यौहार को एक दिन पूर्व मनाते हैं। गढ़वाल में इसे घिया संगरांद भी कहा जाता है तथा इस अवसर पर धान के खेत में मेहल की रोपाई भी होती है।[9]

05. दशै या दशाई (विजयदशमी)- यह पर्व आश्विन माह के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मनाया जाता है। मैदानी क्षेत्रों में नवरात्री के बाद विजयदशमी का त्यौहार भी मनाया जाता है परंतु दोनों के मनाने के ढंग एवं अंतर्निहित मूलभूत तत्वों में अंतर दृष्टिगत होता है। वृहद परंपरा के अंतर्गत दुर्गा पूजा पर घर की सफाई के साथ-साथ पूजा पाठ एवं घरों में हरियाली को बो कर उसको आदिशक्ति पर चढ़ाने का कार्य किया जाता है तथा विजय दशमी को असत्य पर सत्य की विजय हेतु बुरे कर्म के प्रतीक रावण, कुंभकरण, मेघनाथ के पुतले जलाकर हर्ष उल्लास करना होता है। पहाड़ी क्षेत्र में लोगों को परंपरागत गुरु गोरखनाथ की धुनी में 9 दिनों तक तप साधना करना तथा अंतिम दिन देवताओं को नचाना तथा नवान्न से तैयार प्रसाद से अर्चना करना होता है। जिसके शरीर में देवता आते हैं उनको इसके अंतर्गत वर्जना का भी पालन करना होता है। यह त्यौहार असत्य पर सत्य की विजय को दर्शाता है।[10]

06. दीपावली- शरद कालीन उत्सव के अंतर्गत धनतेरस, दीपावली(दिवाली, भैया दूज वृहत परंपरा के अंतर्गत मनाए जाने वाले प्रमुख पर्व है। दीपावली से संबंधित अन्य पर्व धनतेरस, नरक चतुर्दशी एवं यम द्वितीया के अनुष्ठानों से यहां की जनता पूर्णतया परिचित नहीं है। यहां पर प्रमुख रूप से अमावस्या को दीपोत्सव के रूप में मनाया जाता है। नरक चतुर्दशी को छोटी दीपावली, अमावस्या के दिन मझली दीपावली, तथा कार्तिक पूर्णिमासी के एक दिन पूर्व मनाई जाने वाली दीपावली को बड़ी दीपावली कहा जाता है। भैया दूज का पर्व प्रमुख रूप से उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में मनाई जाती है लेकिन इस पर्व का प्रचलन अभी उत्तराखंड में कम ही देखने को मिलता है। इस त्यौहार के अंतर्गत भाई अपने बहन के घर भेंट देने जाता है और बहन भी उत्तम भोजन भाई के लिए तैयार करती हैं। उत्तराखंड में भी मैदानी क्षेत्रों के अनुकरण के आधार पर इसे टीके का त्यौहार कहा जाता है क्योंकि इस दिन बहन भाई को टीका लगाकर उसका स्वागत करती है तथा उसकी उन्नति की भी कामना करती है। दीपावली के अगले दिन बलि पूजन तथा तीसरे दिन कृषकों का त्यौहार बग्वाली भी धूमधाम के साथ मनाया जाता है।

07.उत्तरायणी घुगुतिया या पुस्योडिया- यह सुप्रसिद्ध पर्व मकर सक्रांति के शुभ अवसर पर सूर्य के उत्तरायण होने के उपलक्ष में मनाया जाता है। इस को अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है जैसे- मकरैण घुगुतिया, पुस्योडिया, उत्तरेणी उत्तरायण, घोल्डा ध्वौला,चुनत्यार, खिचड़ी, संगरांद इत्यादि। इसी दिन सूर्य धनु राशि से मकर राशि में प्रवेश करता है और सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण की ओर चला जाता है। अल्मोड़ा जनपद में बहने वाली सरयू नदी के पूर्व में पौष माह के अंतिम दिन इस उत्सव का आयोजन किया जाता है इसलिए इसको दिया पुस्योडिया कहते हैं तथा इसके पार संपूर्ण कुमा.नी क्षेत्र में इस उत्सव का आयोजन मकर सक्रांति के दिन ही किया जाता है। इसे घुगुतिया के नाम से भी जाना जाता है। घुगुतिया उत्सव मनाने के पूर्व इससे संबंधित पदार्थों को पूर्व संध्या पर तलकर तैयार किया जाता है तथा बच्चे प्रातः काल कौवे को आमंत्रित करके खिलाते हैं खिलाते हैं।

कुमाउनी भाषा में घुगुत का अर्थ फाख्ता नामक पक्षी से होता है परंतु इस उत्सव को मनाने में कहीं भी इस पक्षी का प्रयोग नहीं किया जाता है। आटे में गुड़ मिलाकर गूथनें के पश्चात फाख्ता पक्षी के प्रतीकार्थक जिसका आकार 4 के आकार का होता है, आटे की चार के अंक की आकृति बनाकर मोड़ लेते है तथा इसके साथ ही साथ ढाल, तलवार, डमरु, दाड़िम के फूल के आकार की आकृतियां बना कर इन्हें तल लिया जाता है। इसके पश्चात

एक माला में घुगुत के विभिन्न प्रकार की आकृतियों, ऋतु फल के साथ पिरोया जाता है। इन बनाए गए मालाओं की संख्या घर के छोटे बड़े बच्चों की संख्या के बराबर होती है। पूर्व के क्षेत्र में मकर सक्रांति के दिन तथा शेष कुमा. में अगले दिन बच्चे अपने गले में पिरोये मालाओं को डालकर कौवे को जोर-जोर से आमंत्रित करते हैं।[11]

काले कौव्वे काले, घुगुती माला खा ले।
काले कौव्वे आ लगड़ बड़ा खा
काले कौव्वे काका, पूषै रोटी माघै खा............।।

उक्त प्रकार से उच्चारण कर कौवे को बुलाते है। कौवे भी बड़ी मात्रा में आते हैं बच्चे बड़े उत्साह से अपनी माला से घुगुते निकालकर खिलाते हैं या देते हैं जिनके घुगुते व बड़े को कौवे पहले खाते हैं वह बड़े भाग्यशाली समझे जाते है। इस दिन बच्चे अपने मित्रों एवं संबंधियों के घर कहीं-कहीं पर बुरांश भी डालते हैं। इस संबंध में कई मिथक प्रचलित हैं, डॉ. मदन भट्ट का मानना है कि यह पूर्व कत्युरी शासकों की विजय का प्रतीक है।[12]

जोहार क्षेत्र में घुगुतिया त्यौहार 1 दिन पूर्व रात्रि में मनाया जाता है जिसमें पितरों को नया वस्त्र, मदिरा, पकवान चढ़ाया जाता है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि मृतकाशौच में 1 वर्ष तक कोई त्यौहार नहीं मनाया जाता है परंतु पौष माह में मनाए जाने वाले घुगुतिया त्यौहार तथा श्रावण मास के अंतिम दिन मनाये जाने वाले घ्यू त्यौहार इस वर्जना में नहीं आते है।[13] धारचुला तहसील के पूर्वी भोटान्तिक क्षेत्र में इसे मंडल त्यार के नाम से मनाया जाता है। इसी दिन मंडल नामक स्थान पर बड़े मेले का आयोजन भी किया जाता है, इस क्षेत्र में मनाए जाने वाले त्यौहार का स्वरूप थोड़ा भिन्न है। इस दिन लाल मिट्टी एवं गोबर द्वारा घर की पुताई के साथ गेहूं के पौधों को उखाड़ कर उसके जड़ों को गोबर में लिपटा कर अक्षत चंदन सहित मकान के खोली(दरवाजे) से चिपकाया जाता है। गंधक युक्त पानी में स्नान करके बेल पत्र आदि लेकर आते हैं तथा घर में दाल, भात, पूरी, पकवान इत्यादि स्वादिष्ट भोजन खाते हैं।[14]

07. जौ सग्यान (यव संक्रांति)- यह एक कृषक वर्गीय ऋतोत्सव है जो चंद्र संक्रांति से संबंधित था परंतु चंद्रमाश्रित पर्व बसंत पंचमी या श्री पंचमी के निकट होने के कारण इसी दिन मनाए जाने की प्रथा शुरू हो गई। इस अवसर पर जौ के अंकुर प्रफुल्लित हो उठते हैं, अन्य फसल भी उग जाती हैं। इस पर्व का आयोजन स्थानीय देवताओं की कृपा, कृषि की समृद्धि, प्राकृतिक प्रकोप से बचाव, हानिकारक जंतु से रक्षा, जौ के कोपलों को देवताओं को अर्पित कर उसके सुरक्षा हेतु प्रार्थना की जाती है। इसके प्रसाद के रूप में नवपल्लवों को घर के सभी सदस्य अपने सिर पर रखते हैं। इसे घर की कन्याएँ ज्येष्ठ जनों को देती हैं तथा बदले में दक्षिणा प्राप्त करती हैं। कोपलों को पुरुष अपने टोपी पर तथा महिलाएं सिर पर सजाती है। इस दिन देवी देवताओं की पूजा भी की जाती है तथा पकवान, अच्छे व्यंजन भी बनाए जाते हैं। यह उत्सव गढ़वाल में भी मनाया जाता है।

आजकल बसंत पंचमी के दिन सरस्वती पूजा, विद्यारंभ संस्कार एवं विद्या संबंधित अन्य कार्य भी किए जाते हैं। बच्चे की अंगुली से, लाल मिट्टी पर (जो पट्टे पर बिछाया जाता है) 'ओऽम नमः सिद्धम' लिखकर विद्यारंभ संस्कार को भी संपन्न कराया जाता है। पुरातन काल में इसी दिन रति एवं कामदेव का भी पूजन किया जाता था। कुमा. में इसी दिन से होली की बैठकें शुरू हो जाती हैं।[15]

09. होलिकोत्सव- यह लोकोत्सव संपूर्ण उत्तराखंड में व्यापक रूप से मनाया जाता है जिसमें मिथक, इतिहास एवं उत्सव का एक अद्‌भुत सम्मिश्रण देखने को मिलता है जैसे-

प्राचीन बसंतोत्सव, प्रहलाद गाथा, जातीय संघर्ष, जनजातीय उत्सव इत्यादि। कुमा. क्षेत्र में इसके प्रारंभ एवं समापन की परंपरा अद्भुत है। हर क्षेत्र में इसको मनाने की खास परंपरा है ,अतः इसका आयोजन देश के अन्य क्षेत्रों से विलग भिन्न रूप में किया जाता है। यह फाल्गुन शुक्ल पक्ष पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। कुमा. में होली सामान्यतः 3 चरणों में संपन्न की जाती है जिसमें दो होली बैठी होली तथा एक खड़ी होली के नाम से जाना जाता है। बैठी होली के प्रथम चरण का प्रारंभ पौष माह के प्रथम रविवार से शुरु होती है तथा द्वितीय चरण का आरंभ माघ शुक्ल पक्ष पंचमी अर्थात बसंत पंचमी को होता है तथा अंतिम चरण अर्थात खड़ी होली फाल्गुन शुक्ल पक्ष एकादशी अर्थात आलमकी एकादशी को प्रारंभ होता है, जिसमें देवी देवताओं को रंग लगाने के पश्चात जनसाधारण में भी रंग गुलाल का प्रारंभ हो जाता है। होली के प्रथम चरण से ही कहीं-कहीं पर ढोल, मजीरे, हारमोनियम इत्यादि के साथ कलाकार बैठकर होली गायन प्रारंभ कर देते हैं परंतु शिवरात्रि के पश्चात इन बैठकों में तीव्रता आ जाती है और यह बैठकें नियमित रूप से हर्षोल्लास के साथ आयोजित की जाने लगती है जहां पर चाय, पान एवं मिष्ठान की भी व्यवस्था की जाती है। गांव की प्रथम बैठक होली गायन के लिए की जाती है तथा आलमकी एकादशी का व्रत धारण करके महिलाएं आंवले के वृक्ष की पूजा करती हैं तथा अबीर गुलाल के साथ रंग भरी होली का प्रारंभ करती है। इस दौरान होलिका दहन के निमित्त चीर बंधन भी किया जाता है। एकादशी के दिन रंग गुलाल के शुरू होने के पूर्व अथवा अष्टमी, नवमी या किसी भद्रारहित शुभ मुहूर्त में गांव के देवस्थान के प्रांगण में अथवा गांव के किसी सार्वजनिक स्थान पर बाँस अथवा चीड़ का एक लंबा ध्वज स्तंभ गाड़ा जाता है जिसे चीर वृक्ष अथवा चीर आरोहण कहा जाता है। प्रत्येक घर से श्वेत वस्त्र पर अबीर गुलाल से लगे चीर को इस ध्वज में बांधा जाता है तथा मंत्रोचार के साथ इस स्तंभ का आरोहण किया जाता है। इसके निकट लकड़ी इत्यादि का संचय किया जाता है जो होलिका तक चलता रहता है। पहाड़ों पर होली गायन की विशेष परंपरा पाई जाती है। बैठी होली में गायक अकेला बैठकर वा। यंत्रों के साथ गीत गाता है जबकि खड़ी होली में सभी लोग विशेष मुद्रा में ढोल की धुन पर हस्त ताल का संचालन करते हुए विशेष स्वर में गाते हैं।

खड़ी होली का आरंभ चीर स्तंभ के आरोहण के पश्चात शुरू होता है तथा यह पूर्णमासी के अगले दिन अर्थात छलड़ी (छरडी) तक चलता रहता है। स्तंभ में बंधे चीर समुदाय के प्रतिष्ठा के द्योतक होते हैं तथा यह मंगल का प्रतीक माना जाता है। चीर का हरण अमंगल का प्रतीक माना जाता है इसलिए गांव के लोग होली गाते हुए इस पर दृष्टि रखते हैं। होली गीतों के प्रमुख विषय ब्रज भूमि, राधा कृष्ण का प्रेम प्रसंग, राम, शिव, गणपति, देवर-भाभी,पति, ऋतु मास इत्यादि होते हैं। होली गायन गांव के घर-घर पर किया जाता है। होली गायन के उपरांत गृहस्वामी द्वारा मिष्ठान इत्यादि इनको खाने के लिए दिया जाता है तथा इस समय हंसी मजाक बुरा नहीं माना जाता है। चीर स्तंभ को पूर्णमासी की समाप्ति तथा प्रतिपदा के प्रारंभ काल के शुभ मुहूर्त में अनुष्ठान पूर्वक अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है। इस दौरान चीरों को बच्चे छीना झपटी कर अपने पास रख लेते हैं जिसमें मान्यता है कि यह अमंगलकारी शक्तियों से इनको दूर रखेगा। छलड़ी के दूसरे दिन को टीका कहा जाता है। इस दिन टीका लगाने की प्रथा पति-पत्नी, जीजा-साली, देवर-भाभी के बीच है जो आपसी प्रेम बंधन का प्रतीक माना जाता है जिसमें सुखमय एवं दीर्घ जीवन की कामना की जाती है।[16]

होलिकोत्सव का सामाजिक महत्व अतुलनीय है। होलिका महोत्सव के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था एवं सामाजिक संरचना के हर पक्ष में सुदृढ़ता व्याप्त होती है। इस पर्व में

आपसी प्रेमभाव, विद्वेष कलह का निवारण, सामाजिकता का विकास, मौज-मस्ती, प्राकृतिक संरक्षण, बंधुत्व की भावना का विकास, समुदाय के प्रति लगाव, दबी दुर्भावनाओं का उत्सर्जन, हास्य विनोद, कुंठाओं का विमोचन बड़ी ही सहज तरीके से मनोरंजन के साथ होता है जो अपने आप में अतुलनीय है । होलिका महोत्सव को यदि सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का प्रबल कारक कहे तो अतिशयोक्ति नहीं है। होलिका का उल्लेख हर्षचरित, गर्ग संहिता, कादंबरी इत्यादि में मिलता है।[17] अट्किंसन ने होली के संबंध में यह टिप्पणी किया कि होली का प्रचलन हिमालय के निचली पट्टियों तक ही सीमित है .पर की पट्टियों में यह अज्ञात है, जिससे निष्कर्ष निकलता है कि यह मूल रूप से यह उत्तराखंड का पर्व नहीं है और संपर्क द्वारा यहां पर प्रसारित हुआ है।[18]

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. https://hi.m.wikipidia.org
2. शर्मा डी.डी., उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव, अंकित प्रकाशन, हल्द्वानी,नैनीताल, 2012, पृ.50-51
3. ऋग्वेद (1,100,8 एवं 1,102,02)
4. शर्मा डी.डी.: उत्तराखण्ड ज्ञानकोष- भाग दो,अंकित प्रकाशन,हल्द्वानी, नैनीताल 2012 पृ. 452-53
5. ठा. मोलूराम: त्योहारों का सरताज बिशु: 1978: पृ.87-96
6. शर्मा डी.डी.: उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव, अंकित प्रकाशन,हल्द्वानी,नैनीताल2012, पृ.57-63
7. अट्किंसन ई.टी: हिमालयन गजेटियर -1884, जि.-02,भाग -02, पृ. 871
8. अट्किंसन ई.टी: हिमालयन गजेटियर -1884, जि.-02 भाग-02,पृ. 852
9. हटवाल नंदकिशोर : अनिकेत चमोली,अंक 2005
10. शर्मा डी.डी.-उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव,अंकित प्रकाशन,हल्द्वानी, नैनीताल, 2012, पृ.12-13
11. शर्मा डी.डी.-उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव,अंकित प्रकाशन हल्द्वानी, नैनीताल,2012, पृ.82-83
12. भट्ट मदन चन्द्र: हिमालय का इतिहास- भाग-1, पृ.-77
13. पंगती शेर सिंह: कुमाउनी भाषा और साहित्य -1990, पृ.28
14. अमटीकर स्मारिका: रड्कल्याण संस्था, 2005, लखन. पृ. 5-6
15. शर्मा डी.डी.-उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव,अंकित प्रकाशन हल्द्वानी,नैनीताल, 2012, पृ.89-90
16. शर्मा डी.डी.-उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव,अंकित प्रकाशन हल्द्वानी,नैनीताल, 2012, पृ.15-23)
17. शर्मा डी.डी.-उत्तराखण्ड के लोकोत्सव एवं पर्वोत्सव,अंकित प्रकाशन हल्द्वानी,नैनीताल, 2012, पृ.28-30
18. ई.टी: हिमालयन गजेटियर -1884: जि.-02 भाग-02,पृ. 868

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

छत्तीसगढ़ के गोंड़ जनजातीय जीवन में नृत्यगान का महत्व

● एमन्त माधुरी ठाकुर
●● रेणु सक्सेना

सारांश- गोंड़-जनजातियों का जीवन नृत्यगान से भरा हुआ है। उनके सभी सामुदायिक एवं धार्मिक विधियों में नृत्यगान अनिवार्य होता है। नृत्यगान के बिना उनके सभी कार्यक्रम फिके एवं नीरस पड़ जाते हैं। गोंड़ी नृत्य का दृश्य इतना मनमोहक तथा स्फूर्तिदायक होता है कि प्रेक्षकों के दिलों में भी अपने जगह पर ही नृत्य करने की इच्छा जागृत हो जाती है। उनके नृत्य गीतों का तालबद्ध मधुर संगीत हर एक के मन को मोह लेता है। नृत्यगान जनजातीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। जनजातीय जीवन में नृत्य एवं गीत का महत्व आज भी है क्योंकि नृत्यगान न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता भी है।

मुख्य शब्द- जनजाति, नृत्यगान, संस्कृति, कला, विवाह, संगीत, घोटुल, वाद्य, कृषि, मौसम, उत्सव

गोंड़ जनजातीय जीवन नृत्यगान से ओत-प्रोत है। जनजातीय नृत्य गीत किसी न किसी पर्व से जुड़े हुए होते हैं जो उस पर्व की सार्थकता का बोध कराते हैं जैसे धार्मिक अनुष्ठान से संबंधित पर्व में शंभू पेन, भीमा पेन, सल्ला पेन, धर्म गुरू लिंगो और माता रायतार जंगो के प्रतीकों की स्थापना कर गीत और नृत्य द्वारा अपनी सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित करते हैं।

उत्तर बस्तर में प्रचलित सत्ता गीत -

"रि रिला रिला रिरिला रिला रिला
सगा रे सगा आईन माई मोरनी
सगा रे सगा आईन माई मोरनी
रि रिला रिला रिरिला रिला रिला
कोने गढ़ के सगा देवनी
में कोने गढ़ के सगा देवनी
रि रिला रिला रिरिला रिला रिला
भीरावाही के सगा माई देवानी
भीरामाही के सगा माई देवानी।।"[1]

"कला, नृत्य और संगीत के क्षेत्र में भी 'गोंड़ों' की एक अलग शैली रही है। जिसका सदियों तक कोई सानी नहीं है। वैसे तो सभी लोकगीत अपने आप में एक मधुरता पिरोये रहते हैं, पर गोंड़ी भाषा की मधुरता और मिठास एवं गोंड़ी संगीत अपने आप में अनूठा रहा है।"[2] गोंड़-जनजाति के गोंड़ी संगीत के जनक स्वरूप जिनका नाम उल्लेखित है, वे 'हिरासुका पाटोडी' है।" आदिकाल से जो गोंड़ी गायन, नृत्य, कला और संगीत का उद्‌गम हुआ है, वह आज भी बरकरार है। जब कोया पूनेम की स्थापना हुई, तब गुरू लिंगो अपने सभी शिष्यों को धर्म के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञान की भी शिक्षा देते थे। अतः गायन और नृत्यकला सांस्कृतिक शिक्षा का एक हिस्सा था।"[3] गोंड़ जनजातीय नृत्यकला की व्युत्पत्ति

● शोधार्थी, शासकीय कला एवं वाणिज्य कन्या महाविद्यालय, देवेन्द्र नगर रायपुर (छ.ग.)
●● प्राध्यापक/विभागाध्यक्ष, हिन्दी, शासकीय नागार्जुन स्नातक विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

भले ही भौंरो की रूंजि और रंजन से हुई, परन्तु उस कला में यदि किसी ने वृद्धि की है, तो वह गोंड़ी पुनेम पहांदी पारी कुपार लिंगो है।

गोंड़- जनजातियों में ऐसी मान्यता है कि "उनके मुठवापोय पारी पहांदी कुपार लिंगो अट्ठारह प्रकार के वाद्य धारण कर एक साथ बजाया करते थे। गोंड़ी पुनेम मुठवा लिंगो के सेमरगांव, बाजागढ़, निंगोगढ़ और अन्य स्थलों में भी अट्ठारह प्रकार के वाद्य सुरक्षित रखे हुए है।"[4] गोंड़ जनजाति के गण्डजीव किसी भी पर्व में नृत्य करने के प्रारंभ में अपने पारी कुपार लिंगो को स्मरण करने के लिए विभिन्न प्रकार के गीत गाते है।[5]

"रे-रेलो-रेलो-रेलो, रे-रेलो-रे-रे-रेलो।
वक्की पाटा बोना लिंगो, निको लिंगो जो हार जो।।
वक्की पाटा लिंगो बाना, निको लिंगो जो हार जो।
रेहक पाटा बोना लिंगो, निको लिंगो जो हार जो।।
पाटा वारेक लिंगो ये, निको लिंगो जो हार जो।
डाका वाटेक लिंगो ये, निको लिंगो जो हार जो।।
पली वेहेक बोरे ये, निको लिंगो जो हार जो।
भुम गर गर लिंगो ये, निको लिंगो जो हार जो।।
नेल गर गर लिंगो ये, निको लिंगो जो हार जो।

"प्रथम गीत किसका लिंगो, तेरा ही लिंगो जो हार जो। प्रथम गीत लिंगो बाबा का, तेरा ही लिंगो जो हार जो। द्वितीय गीत किसका लिंगो, तेरा ही लिंगो जो हार जो। गीतकार है तू ही लिंगो, तेरा ही लिंगो जो हार जो। कदम डालने वाला तू ही लिंगो, तेरा ही लिंगो जो हार जो। गोत्र विभाजक तू ही लिंगो, तेरा ही लिंगो जो हार जो। बादलों का भ्रमण तू ही लिंगो, तेरा ही लिंगो जो हार जो। खेती का भ्रमण तू ही लिंगो, तेरा ही लिंगो जो हार जो।"[6]

नृत्य के प्रकार- गोंड़ जनजातियों के नृत्य के किसी न किसी धार्मिक पर्व, सामुदायिक एवं मौसमी ऋतुमान से संबंधित होते हैं -

1. **रिलो नृत्य** - युवक-युवतियों द्वारा यह नृत्य भिमालपेन के स्मरण में करते हैं।

2. **करमा नृत्य** - करमा नृत्य नई फसल आने की खुशी में किया जाता है। यह नृत्य छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति का पर्याय है। करमा नृत्य की अनेक शैलियाँ प्रचलित है। जिसमें झूमर, लंगड़ा, ठाढ़ा, लहकी एवं खेमटा है। झूमर नृत्य में झूम-झूमकर नृत्य किया जाता है। इसलिए इसे झूमर नृत्य कहते हैं। एक पैर झूकाकर किया जाने वाला नृत्य 'लंगड़ा', लहराते हुए करने वाले नृत्य को 'लहकी', खड़े होकर किया जाने वाला नृत्य 'ठाढ़ा' और आगे-पीछे पैर रखकर कमर लचकाकर किया जाने वाला नृत्य 'खेमटा' नृत्य कहलाता है।

कर्मा नृत्य में प्रमुख वाद्ययंत्र मांदर और झांझ मंजीरा है। कर्मा नृत्य मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा देता है। यह नृत्य जनजातियों व ग्रामीणों के कठोर जीवन, गांवों की कृषि संस्कृति एवं श्रम पर आधारित है। छत्तीसगढ़ में यह नृत्य मनौती के रूप में मनाया जाता है। डॉ. बलदेव ने इस नृत्य के बारे में लिखा है - "छत्तीसगढ़ के लोग कर्मवीर हैं कृषि कार्य की सफलता के बाद उपयुक्त अवसर पर यह नृत्य किया जाता है। आगे चलकर 'कर्म' शब्द की भावनात्मक सत्ता अपने लोकव्यापी स्वरूप के कारण मिथक में रूपांतरित हो गई। कर्मा का प्रतीक 'कर्मा वृक्ष' को और उसकी आराध्य देवी 'करम सेनी' को मान लिया गया हो। ताज्जुब नहीं यह करमसेनी कोई कर्मशीला नारी ही रही होगी, जिसके लोकोपकारी गुण में उसे देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया और वह लोक विश्वास संबल पाकर किसी मिथकीय

कहानी की नायिका बनकर अवतरित हो गई।"[7]

3. **दोहरा नृत्य** – युवक-युवतियों द्वारा एकत्रित होकर दो-दो के गुट में विभक्त होकर किया जाने वाला नृत्य दोहरा नृत्य कहलाता है।

4. **मंडराना नृत्य** – मंडराना नृत्य विवाह में वर को रिझाने के लिए किया जाने वाला नृत्य है।

5. **गौर नृत्य** – जनजातियों द्वारा जातरा नाम से वार्षिक उत्सव मनाया जाता है। जातरा के दौरान गांव के युवक-युवतियाँ रात भर नृत्य करते हैं। युवक गौर नामक जंगली पशु का सींग कौड़ियों से सजाकर अपने सिर पर धारण कर नृत्य करते हैं। यह नृत्य अच्छी फसल, वर्षा, सुख एवं सम्पन्नता का सूचक है।

6. **मांद्री नृत्य** – मांद्री नृत्य ढोल बजाने वाले व्यक्ति के आजु-बाजू गोलाकार में किया जाने वाला नृत्य है।

7. **ढेमसा नृत्य** – विवाह में रात्रि के समय किया जाने वाला नृत्य ढेमसा नृत्य कहलाता है।

नृत्यगान केन्द्र 'घोटुल' – नृत्यगान को एक प्रकार से सृजन का रूप प्रदान करने के लिए 'घोटुल' संस्कृति की स्थापना गुरू पारी कुपार लिंगों ने किया। घोटुल स्थापना के पीछे गुरू पारी कुपार लिंगों का मुख्य उद्देश्य था कि "बालक-बालिकाओं में अध्ययन मानव-जीवन तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यो के प्रति रूचि निर्माण हो। इसलिए आज भी घोटुल केन्द्रों में अध्ययन के अलावा गोंड़ी गायन, गोंड़ी नृत्य और गोंड़ी कला की भी शिक्षा प्रदान की जाती है।"[8]

नृत्यगान का महत्व- गुरू पारी कुपार लिंगों इस बात से अच्छी तरह से अवगत थे कि "मानव-जीवन में शिक्षा व अध्ययन के साथ-साथ मनोरंजन और संस्कृति की आवश्यकता होती है। बालक-बालिकाओं को बड़े होकर अपने द्वारा किये गये मानवीय जीवन के कार्य से पुरे विश्व के मानव समाज के सम्मुख उठकर खड़ा होना पड़ता है और इसके लिए विविध रूप में ज्ञान होना अति आवश्यक है। नृत्य, गायन और कला मानव के मन भीतर सर्वांगपूर्ण विकास करने में सहायक होता है और मानव-जीवन को सौजन्यता प्रदान करती है।"[9] जीवन के हर मोड़ पर हर क्षेत्र में धार्मिक मूल्यों की रक्षा करना गुरू पारी कुपार लिंगो द्वारा दी गई पहली शिक्षा थी। नृत्य एवं लोकगीत द्वारा अपनी अलग एवं अनूठी पहचान बनाने में पूरे विश्व में सक्षम है। गोंड़ जनजातीयों में नृत्यगान का बड़ा महत्व है। यदि उनके जीवन से नृत्यगान अलग कर दिया जाए तो उनका जीवन अर्थहीन हो जायेगा। नृत्यगान का महत्व निम्नानुसार है-

मनोरंजन- ये जनजातियां सामूहिक रूप से नृत्यगान के माध्यम से अपना मनोरंजन करते हैं। अल्प संतोषी स्वभाव होने के कारण उनके पास जो कुछ जीवनोपयोगी साधन होते हैं, उन्हीं में संतुष्ट होकर नृत्यगान के माध्यम से व्यक्त कर अपना मनोरंजन करते हैं। उनका अल्प संतोषी स्वभाव ही उनके सुखमय एवं शांतिपूर्ण जीवन की गुरूकुंजी है। तीज-त्यौहारों पर वे स्वयं प्रेरित होकर अपने आपको विशेष प्रकार की वेशभूषा में सुसज्जित कर सामूहिक रूप से रेला गीत एवं संगीत वाद्यों के ताल पर खुशी और उमंग के साथ नृत्य करते हैं।

जीवन साथी का चयन- गोंड़ जनजाति के युवक-युवतियों का नृत्यगान शुक्ल पक्ष में विशेष रूप से पूर्ण चन्द्रमा के रात्रि में आयोजित किया जाता है। ऐसे पर्व में सम्मिलित होने के लिए उनके सभी सगा संबंधी जो सम-विषम गोत्र के होते हैं वे सभी आकर नृत्य करते हैं। इसी नृत्यगान प्रक्रिया में युवक-युवती अपने जीवन साथी का चयन करते हैं, जिसे समाज मान्यता देकर उन्हें विवाह बद्ध करता है।

सांस्कृतिक मूल्यों का संवर्धन- गोंड़ जनजातियों के गण्डजीवों की कला, संस्कृति एवं साहित्य का वृद्धि करने में वाद्य, संगीत और नृत्य का बड़ा योगदान है। उनके जीवन के हर एक पर्व पर नृत्यगान का कार्यक्रम उस पर्व के अनुकूल होता है। देवी-देवताओं के पूजन और जंगो लिंगो के प्रतीकों को स्थापित करने एवं विवाह के कार्यक्रमों में विशेष प्रकार के नृत्य किये जाते हैं। इस तरह नृत्य गीतों के माध्यम से वे अपनी सभ्यता के मूल्य एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को सम्मिलित करते हैं।

गोंड़ समुदाय के नृत्यगान किसी न किसी धार्मिक पर्व, सामुदायिक कार्यक्रम एवं मौसमी ऋतुमान से संबंधित होते हैं। धार्मिक उत्सव युवक-युवतियां वलयाकर रूप में ढोल की ताल पर नृत्यगान करते हैं। इनके प्रमुख वाद्य ढोल, बांसुरी, तोड़ी एवं थुर्रा होते हैं। प्रत्येक गांव के गांववासी अपनी फसल को सामुहिक रूप से देवताओं को अर्पण करते हैं। इस पर्व पर जो नृत्य किये जाते हैं, उन्हें कोहकांग येंदाना कहा जाता है।

गोंड़ी नृत्य वाद्य के प्रकार- गुरू पारी कुपार लिंगो संगीत के विद्वान है। गुरू लिंगो एक साथ अट्ठारह वाद्य बजाया करते थे। वे अट्ठारह कलाओं के ज्ञाता थे। इनमें से चार तत वाद्य, छह वितवाद्य, छह घनवाद्य, और सुषिर वाद्य हैं, जो निम्नानुसार हैं -

(अ) तत वाद्य - जो तंतुओं से युक्त होते हैं। उसे तत वाद्य कहते हैं। गोंड़ी में इसे कींगरी या कीकरी कहते हैं। तत वाद्य निम्नानुसार है-

1. ढुसीर - ढुसीर को बांस की नली में नारियल के गोलार्थ जोड़कर तैयार किया जाता है और उसके मुख को चमड़े से ढक दिया जाता है।

2. टोयलि या डुमिर - टोयलि के ऊपर तांबे के दो तार कसे हुए होते हैं और यह मोटे तक्के का बना होता है। विवाह समारोह में हल्दी चढ़ाते वक्त या बुर्रापेन की स्तुति के समय यह वाद्य बजाया जाता है।

3. कीकरी - कीकरी को सारंगी के नाम से भी जाना जाता है। साल की लकड़ी या पनस से इसका मुख बनाया जाता है।

4. किंदरी - किंदरी को तंबोरा भी कहा जाता है। यह सीतार का एक प्रकार है जिसमें बांस की कमचियों के चार तार होते हैं जो घट या पेन्दा कद्दु का बना हुआ होता है।

(ब) वितवाद्य - वितवाद्य को निशान वाद्य भी कहा जाता है। ये छह प्रकार के होते हैं -

1. ढोल - ढोल बड़े आकार का गोलाकार दो मुखवाला लकड़ी का होता है। गोचर्म से इसका मुख ढका होता है। जनजातियों में ऐसी मान्यता है कि ''इस ढोल की आवाज से लिंगो और बुर्रापेन या मुर्रापेन प्रसन्न हो जाते हैं।''[10]

2. मांदर - मांदर सिलैण्डर के के आकार का होता है। नृत्य शैली में मांदर का प्रयोग किया जाता है। इस वाद्य को बनाने की विशेश विधि होती है। ''प्रथम वर्षा के आगमन पर इस मांदर की लकड़ी को जंगल से लाया जाता है। जो बीजा, सिअना, महुआ, आम या गुलर की लकड़ी से बनाया जाता है। सर्वाधिक रूप में बीजे की लकड़ी की प्रयोग की जाती है। लकड़ी काटने के पूर्व उसकी पूजा की जाती है और प्रार्थना की जाती है कि हम ढोल बनाने के लिए तुझे काट रहे हैं। तू अच्छे ढोल जैसी आवाज पैदा करना।''[11] पूजा होने के बाद लकड़ी को काट कर लाया जाता है और उसका मांदर बनाया जाता है।

3. निशान - इसे नगाड़ा भी कहा जाता है। निशान को जमीन पर रखकर दो डण्डों से बजाया जाता है और यह एक मुखी ढोल होता है।

4. तुडबूड़ी - तुडबूड़ी को तुडूम भी कहा जाता है। तुडबूड़ी एक मुखी ढोल होता है और इसका आकार कटोरे की जैसा होता है। यह आमतौर पर पुराने वृक्ष के तना या सल्फी से कोर कर बनाया जाता है। इस वाद्य को टागों के बीच रखकर बजाया जाता है।

5. गोगा - गोगा लकड़ी का बना हुआ ढोल होता है। गोगा वाद्य को कंधे पर लटकाकर एक दण्ड से बजाया जाता है। इस वाद्य को उत्सव एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों के सम्मान में बजाया जाता है।

6. परांग - परांग मिट्‌टी का बना होता है। इसे कमर में लटकाकर बजाया जाता है। परांग का प्रयोग मृदंग के स्थान पर भी करते हैं।

(स) घनवाद्य - घनवाद्य धातु या काष्ठ से बनाया जाते हैं। घनवाद्य निम्नानुसार है –

1. चिटकुला – यह वाद्य लकड़ी से बनाया जाता है जिसे कुंडी लगाकर हाथ के उंगलियों में पहनते हैं और नृत्य करते समय बजाते हैं।

2. घुंगरू - घुंगरू लोहे या पीतल के बने होते हैं। इसे करघन के डोरी से लटकाकर पैरो में बांध कर नृत्य करते हैं।

3. पिटोर्का - पिटोर्का लकड़ी की बनी हुई प्याली के आकार की एक घंटी होती है जिसे टापरी या टापर कहा जाता है। यह वाद्य सिऊना या सेमुर वृक्ष की बनी होती है, जिसे डण्डों से बजाया जाता है।

4. झांझ - झांझ को मंजीरा, झनेरा भी कहा जाता है। यह वाद्य पीतल का बना होता है।

5. टिन्डोरी - यह लोहे का बना होता है, जिसे कच्ची टिन्डोरी भी कहा जाता है। टिन्डोरी वाद्य का अविष्कार लिंगो ने किया था।

6. कटवाकींग - कटवाकींग को पयड़ी के नाम से भी जाना जाता है। यह एक पोला घनवाद्य है जिसके अन्दर उसी धातु की गुटिकांए होती है, जिस धातु की बनी होती है। इस वाद्य की धुन से नृत्य करते समय वहां का वातावरण संगीतमय हो जाता है।

(द) सुषिर वाद्य - सुषिर वाद्य को नलगुजा, सुलूड या उलूड, बांसुरी भी कहा जाता है। सुषिर वाद्य दो प्रकार के होते हैं–

1. थुर्रा - थुर्रा को हकुम भी कहा जाता है। यह वाद्य भैंसे के सिंग का बना होता है, जिसे देव स्थल में रखा जाता है और यह किसी संकेत की सूचना देने के लिए बजाया जाता है।

2. वद्दूर पेरा - वद्दूर पेरा बांस का बना हुआ बांसुरी जिसे उलूड या नलगुजा भी कहा जाता है।

निष्कर्ष - नृत्यगान जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को दिशा निर्देश करती है। धार्मिक एवं सामाजिक अवसर पर जनजातीय स्त्री, पुरूष एवं बच्चे एकत्रित होते हैं। जहाँ नृत्यगान के माध्यम से एक–दूसरे को जानने समझने का अवसर मिलता है। गोंड़ जनजातीय जीवन में नृत्यगान का अपना विशेष महत्व है। ये नृत्यगान जन मानस के सामाजिक व सामूहिक सौंदर्य के प्रतीक होते हैं। नृत्य उमंग के प्रतीक होते हैं। जब मनुष्य उमंग से पुलकित हो उठता है, तब उसके शरीर में थिरकन शुरू हो जाती है और यही थिरकन समय के साथ परिष्कृत होकर नृत्य की एक विशेष शैली के रूप में प्रचलित हो जाती है। उमंग पहले गीतों के रूप में प्रकट होती है, फिर गीत के पद के साथ–साथ अंग संचालन के संयुक्त हो जाने से नृत्य का रूप ले लेती है। छत्तीसगढ़ के जनजातीय नृत्य प्राय: किसी न किसी पर्व से संबंधित होते हैं। यहां के नृत्य अपने आप में विविधताओं को समाए हुए हैं। गोंड़ जनजाति अपने नृत्य की विशेष शैली, वेशभूषा के आदि के कारण विश्व प्रसिद्ध रहे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. नेताम, कृष्ण, शंभूसंदेश. कांकेर : अखिल भारतीय गोंड़वाना गोंड़ महासभा, संस्करण 2013, पृष्ठ 30.
2. कुमरे, मंसाराम. गोंड़वंश का इतिहास एवं संस्कृति. नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 70.
3. कुमरे, मंसाराम. गोंड़वंश का इतिहास एवं संस्कृति. नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 70.
4. कंगाली, मोतीरावण. पारी कुपार लिंगो गोंड़ी पुनेम दर्शन. नागपुर : चंद्रलेखा कंगाली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 204.
5. कंगाली, मोतीरावण. पारी कुपार लिंगो गोंड़ी पुनेम दर्शन. नागपुर : चंद्रलेखा कंगाली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 204-205.
6. कंगाली, मोतीरावण. पारी कुपार लिंगो गोंड़ी पुनेम दर्शन. नागपुर : चंद्रलेखा कंगाली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 205.
7. केशरवानी, अश्विनी. छत्तीसगढ़ के लोकनृत्य. पृष्ठ 12.
8. कुमरे, मंसाराम. गोंड़वंश का इतिहास एवं संस्कृति. नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 73.
9. कुमरे, मंसाराम. गोंड़वंश का इतिहास एवं संस्कृति. नागपुर : विश्वभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ 73.
10. कंगाली, मोतीरावण. पारी कुपार लिंगो गोंड़ी पुनेम दर्शन. नागपुर : चंद्रलेखा कंगाली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 213.
11. कंगाली, मोतीरावण. पारी कुपार लिंगो गोंड़ी पुनेम दर्शन. नागपुर : चंद्रलेखा कंगाली, प्रथम संस्करण 1989, पृष्ठ 213.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

ग्रामीण महिलाओं पर जन-संचार माध्यमों का प्रभाव (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

● राजीव दुबे
●● मोतीलाल मिश्र

सारांश- **इस शोध पत्र में रीवा जिले के मऊगंज विकासखंड में ग्रामीण महिलाओं पर जन-संचार माध्यमों का प्रभाव किस तरीके से परिलक्षित हो रहा है, इस तथ्य का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। भारतीय गांव, पारंपरिक जीवन शैली के पहचान रहें हैं। सामान्यतया परिवार के पुरूष सदस्य सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में अपनी भूमिका निभाते थे और घर का कार्य महिलाएं सम्पन्न करती थी। यह देखकर कहा जाता था कि महिलाओं की दुनिया घर की चाहरदीवारी में बंद रहती है। उन्हें शिक्षा के माकूल अवसर नहीं मिल पाते थे। नवीन परिवर्तनकारी ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों से भी बहुधा वे वंचित रहती थी। सूचना तंत्र माध्यमों की कमी भी उनके आगे आने में बाधक थी। इक्कीसवी सदी के आगज के साथ सूचना क्रांति ने गांव की ओर रूख बनाया जिसका व्यापक स्तर पर प्रभाव महिला समाज पर पड़ा। यातायात परिवहन, शैक्षिक संस्थानों की उपलब्धता ने महिलाओं को घर से निकलने का मार्ग प्रशस्त किया। अब वे आवश्यक छोटी-मोटी यात्राएं, खरीददारियां करने के लिए स्वमेव सक्षम होने लगी।**

मुख्य शब्द- **जन-संचार,भारतीय गांव, पारंपरिक जीवन शैली, सूचना तंत्र**

इस बदलाव में और अधिक गतिशीलता जनसंचार माध्यमों के आने से आयी। इन माध्यमों में प्रमुख टेलीवीजन और मोबाइल जैसे तकनीकी संसाधन है, जिनका भरपूर उपयोग करने की सुविधा महिलाओं को मिलने लगी है। इसके पूर्व जनसंचार के अन्य पारम्परिक माध्यम यथा समाचार पत्र, पत्रिकाएं पुस्तके, आदि प्रभाव में थे जिनकी पहुँच महिलाओं तक काफी देर से होती थी। पारंपरिक जनसंचार माध्यमों में जो सबसे बड़ी समस्या महिला जगत को लेकर के थी वह थी शिक्षा की कमी। शिक्षा की कमी के चलते महिलाएं न तो समाचार पत्र पढ़ पाती थी न ही पत्र–पत्रिकाएं। इन माध्यमों से मिलने वाली सूचनाएं और जानकारियां दूसरों के माध्यम से ही उन तक पहुँचती थी जिस कारण घटना चक्र के परिवर्तित रूप ही उन तक पहुच पाते थे। इसका प्रभाव यह पड़ता था कि गांव में संगूफे बाजी का दौर बना रहता था, सूचना कुछ होती थी, बताया कुछ जाता था, सुना और समझा भी कुछ और ही जाता था इस तरह ग्रामीण क्षेत्र अफवाहों और प्रपोगंडा के केन्द्र होते थे। जनसंचार के नवीन माध्यम रेडियो, टेलीविजन, मोबाइल के पहुॅचने से घटनाएं और सूचनाएं अपने मूल रूप में स्त्रोता और दर्शक के पास पहुँचने लगी, लिहाजा लोगों के भीतर जानकारिया यथार्थ स्वरूप में पहुँचने लगी। जनसंचार माध्यमों की यह विकास यात्रा रेडियो से प्रारंभ होकर मोबाइल तक पहुँची चूंकि जनसंचार के ये माध्यम श्रव्य और दृष्य दोनो क्षेत्रों को निरूपित करते है अतएव कम पढ़े लिखे और अशिक्षित समुदाय के लोग भी इनके माध्यम से यथार्थ जानकारियों से अवगत होने लगे और उनमें एक अलग चेतना और आत्मविश्वास जागृत हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में परिवहन की सुविधाएं, बिजली और अन्य नगरीय भौतिक संसाधनों की पहुँच गावों तक बनी जिसका सर्वाधिक लाभ महिलाओं को मिला और वे भी सूचना क्रांति के इस दौर की

● शोध छात्र, समाजशास्त्र, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
●● सेवा निवत्त प्राध्यापक समाजशास्त्र

सुविधाओं से रू-ब-रू होने लगी। इसका प्रभाव उनकी पारंपरिक सोच और जीवन शैली पर भी दिखने लगा। आज ग्रामीण समाज में स्त्री-पुरूष के जीवन शैली संबंधी मानदण्ड बदलने लगे है। लोकतंत्र का प्रमुख आयाम मतदान, विभिन्न क्षेत्रों में नौकरियां, कृषि के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग और स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं का लाभ महिलाओं को मिलने लगा है। निः संदेह महिलाओं को वस्तु से व्यक्ति के रूप में प्रभावशाली बनाने में जनसंचार माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहें है।

इस तरह समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। परिवर्तन की नवीन शक्तियों ने ग्रामीण जीवन को प्रभावित किया है। जनसंचार माध्यम भी ग्रामीण समाज को प्रभावित करने एवं परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहें हैं। जनसंचार माध्यम अत्यंत गहराई तक लोगों के विचारों को प्रभावित कर रहें है जिससे समाज में परिवर्तन की स्थिति निर्मित हो रही है। परिवर्तन की इस प्रक्रिया ने ग्रामीण महिलाओं की जीवन शैली कार्य व्यवहार और चिंतन को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है।

अध्ययन का उद्देश्य- प्रस्तुत शोध पत्र में महिला सशक्तीकरण में संचार माध्यमों के प्रभाव का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है, जिसमें प्राप्त द्वितीयक स्त्रोंत के तथ्यों का वर्णनात्मक शोध के आधार पर विश्लेषण किया गया है, जिसमें निम्न उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं-

- समकालीन विभिन्न संदर्भों का जनसंचार माध्यमों से प्राप्त जानकारी।
- सामाजिक बदलाव के सोपानों पर जनसंचार माध्यमों की प्रभावशीलता।
- जनसंचार माध्यमों से महिला समाज में आई नवचेतना का अध्ययन।
- विभिन्न क्षेत्रों की महिलाओं को मिलने वाली जानकारी का अध्ययन।

अध्ययन क्षेत्र- प्रस्तुत शोध अध्ययन रीवा जिले का मऊगंज विकासखण्ड है। मऊगंज विकासखण्ड 24036' उत्तरी अक्षांश से 240 54' उत्तरी अक्षांस तक तथा 810 15' पूर्वी देशान्तर से 81040' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। रीवा जिले के पूर्व भाग में स्थिति मऊगंज विकास खण्ड का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 591.3 वर्ग किलोमीटर है। जहॉं 179231 (2011) व्यक्ति निवास करते है। प्रति वर्ग किलोमीटर जनघनत्व 269.27 है। अनुसूचित जाति 19.9 प्रतिशत तथा अनुसूचित जनजाति 9.1 प्रतिशत है। यहा की क्षेत्रीय भाषा मूलतः बघेली है तथा शिक्षित लोग सामान्यतः खड़ी बोली का प्रयोग करते है।

अध्ययन प्रविधि- प्रस्तुत शोध पत्र में वर्णनात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है, जिसके अन्तर्गत मुख्यतः द्वितीयक तथ्यों का संकलन कर विश्लेषण किया गया तथा अन्तिम चरण में निष्कर्ष एवं सुझाव प्रस्तुत किया गया है।

उपकरण- प्रस्तुत अध्ययन के सबंधित संकलन हेतु साक्षात्कार-अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन द्वारा कुछ प्रश्नों को उत्तरदाताओं के समक्ष रखा गया है तथा विश्लेषण किया गया जो तालिका में दर्शाया गया है।

अध्ययन विश्लेषण- प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण महिला के सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों का प्रभाव पर केन्द्रित है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि समकालीन समाज को जनसंचार माध्यम काफी गहराई से प्रभावित किये है जिसके कारण पारंपरिक मूल्यों में लगातार परिवर्तन के संकेत दिख रहें हैं। यह प्रभाव पुरूष और महिला दोनों संवर्गों में समान रूप से दिखता है। जनसंचार माध्यमों में ग्रामीण महिलाओं की जीवन शैली को प्रभावित करने के साथ-साथ उन्हें वैश्विक परिदृश्य से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। आज ग्रामीण महिलाए भी देश विदेश की गतिविधियों त्वरित घटनाओं के अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य

और समाज की बदली रूचि अभिरूचियों से रू-ब-रू होने लगी हैं।

ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं में साक्षरता दर कम है, लिहाजा जनसंचार के पुरातन माध्यम अखबार, पत्र-पत्रिकाएं आदि के माध्यम से जानकारी उन तक सुलभता से नहीं पहुँच पाती थी। इसका एक अन्य कारण सामाजिक परिवेश भी था। लेकिन जनसंचार के प्रभावी माध्यम टेलीवीजन, टेबलेट एवं मोबाइल की पहुँच जनसामान्य तक होने से सूचना तंत्र से महिलाएं भी सीधे जुड़ रही है। अब वे खाली समय में टेलीवीजन के विभिन्न चैनलों, इन्टरनेट, और मोबाइल के माध्यम से नवीन गतिविधियों से आपेक्षित जानकारी हासिल करने लगी है।

विविध श्रोतों से प्राप्त होने वाली जानकारियों में जहां नारी जीवन से जुड़ी व्यक्तिगत समस्याएं हैं तो वहीं अपने व्यक्तित्व विकास और पारंपरिक रूढियों से होने वाले नुकसान, अवैज्ञानिक तर्क और तथ्य, अंध विश्वास अतिरेक पूर्ण, श्रद्धा और पाखण्डों के सच को जनसंचार माध्यमों के माध्यम से जानने लगी है। फैशन की बदली दुनिया और अपने को प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्ति देने, खान-पान, रहन-सहन आवास, उद्ययम-व्यवसाय आदि संदर्भो से भी वे जनसंचार माध्यमों के माध्यम से वे परिचित होने लगीं हैं। इस तरह गौर करे तो जनसंचार माध्यमों ने ग्रामीण महिलाओं के पारिवारिक सामाजिक जीवन को एक नई दिशा और दृष्टि दी है। प्रस्तुत अध्ययन हेतु जिन उत्तदाताओं को सुविधा अनुसार निदर्शन द्वारा चयनित किया गया है उनका समेकित विवरण तालिका में दर्शाया गया है जो निम्नानुसार है -

तालिका क्रमांक 01

उत्तरदाताओं की स्थिति का वर्गीकरण

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	20-30	10	20
2.	30-40	20	40
3.	40-50	15	30
4.	50-60	05	10
	कुल योग	50	100

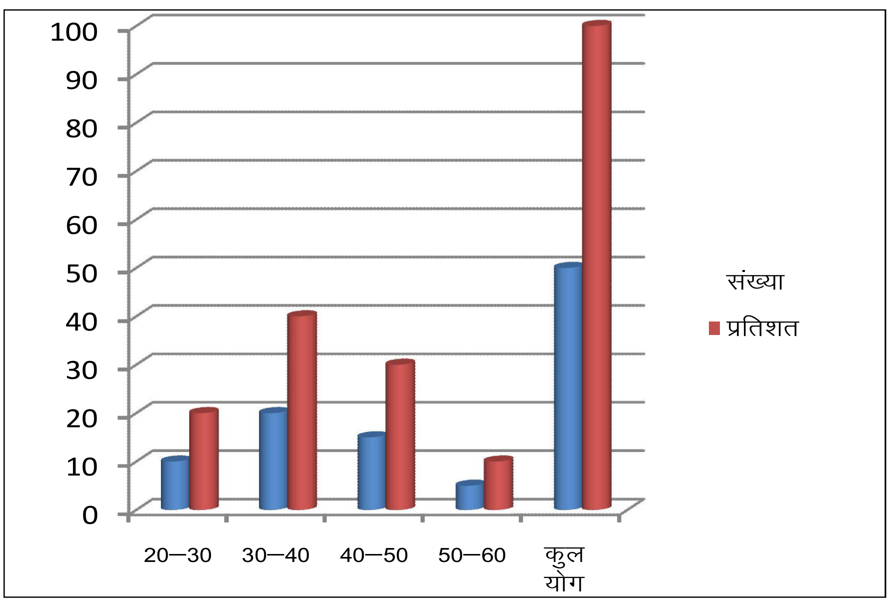

तालिका से स्पष्ट है कि 20-30 वर्ष के सूचनादाओं कि उम्र 20 प्रतिशत है। 30-40 वर्ष की उम्र में सूचनादाताओं को 40 प्रतिशत है। 40-50 वर्ष के उम्र के सूचनादाताओं का प्रतिशत 30 है। 50-60 वर्ष के उम्र के सूचनाओं का प्रतिशत 10 है।

तालिका क्रमांक 02

उत्तरदाताओं की शैक्षिक स्थिति

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाईस्कूल	10	20
2.	हायर सेकेण्डरी	10	20
3.	ग्रेजुएशन	10	20
4.	मास्टर डिग्री	15	30
5.	अन्य	05	10
	कुल योग	50	100

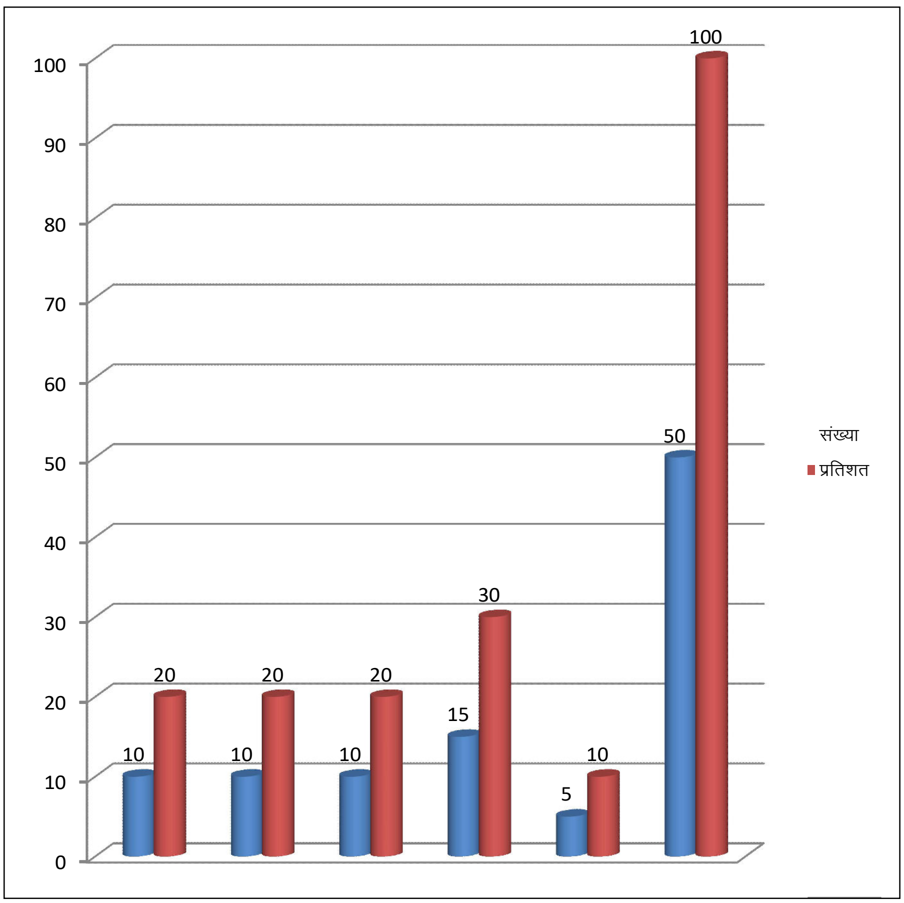

तालिका से स्पष्ट है कि हाईस्कूल उत्तीर्ण उत्तरदाताओं का प्रतिशत 20 है, हायर सेकेण्डरी उत्तीर्ण उत्तरदाताओं का प्रतिशत 20 है, वहीं ग्रेजुएशन उत्तीर्ण उत्तरदाताओं का

प्रतिशत 20 है। जबकि मास्टर डिग्री उत्तीर्ण उत्तरदाताओं का प्रतिशत 30 है और अन्य उत्तरदाताओं का प्रतिशत 05 है।

तालिका क्रमांक – 03

उत्तरदाताओं का वर्गीय वर्गीकरण

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	सामान्य	20	45
2.	पिछड़ा	10	20
3.	अजा.जजा	15	25
4.	अन्य	05	10
	कुल योग	50	100

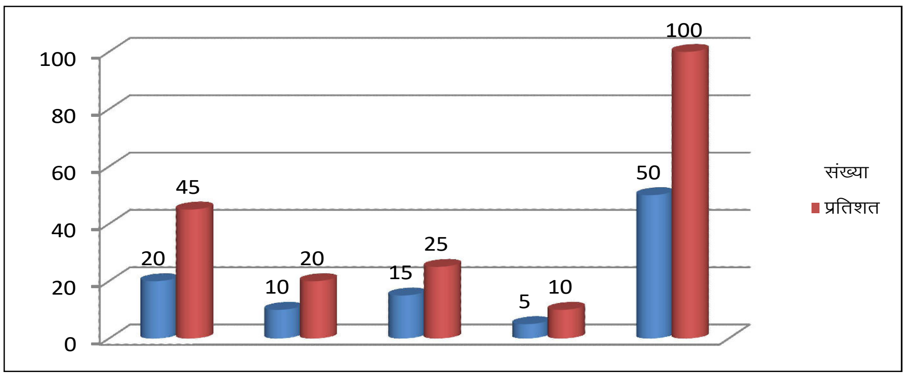

तालिका से स्पष्ट है कि सामान्य वर्ग के उत्तरदाताओं का प्रतिशत 45 है, पिछड़ा वर्ग के उत्तरदाताओं का प्रतिशत 20 है। वहीं अजजजा के उत्तरदाताओं का प्रतिशत 20 है एवं अन्य वर्ग के उत्तरदाताओं का प्रतिशत 10 है।

तालिका क्रमांक 04

जन-संचार की जागरूकता के प्रति धारणा

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	सहायक है	40	90
2.	नहीं है	10	10
	कुल योग	50	100

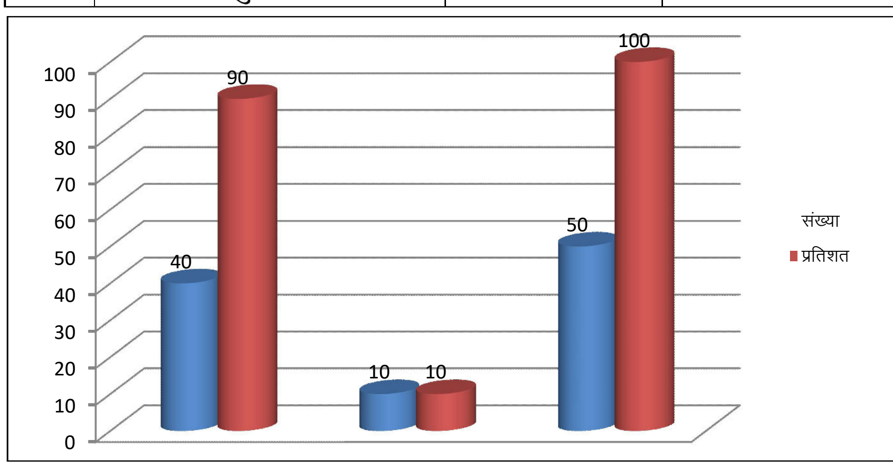

तालिका से स्पष्ट होता है कि महिलाओं में जन-संचार के माध्यम से 90 प्रतिशत जागृत हुई है। जबकि वही आज भी 10 प्रतिशत महिलाओं को जागृत नही हुई है।

तालिका क्रमांक 05

सामाजिक स्थिति में बदलाव का विवरण

क्र.	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हुआ है	46	95
2.	नहीं हुआ है	04	05
	कुल योग	50	100

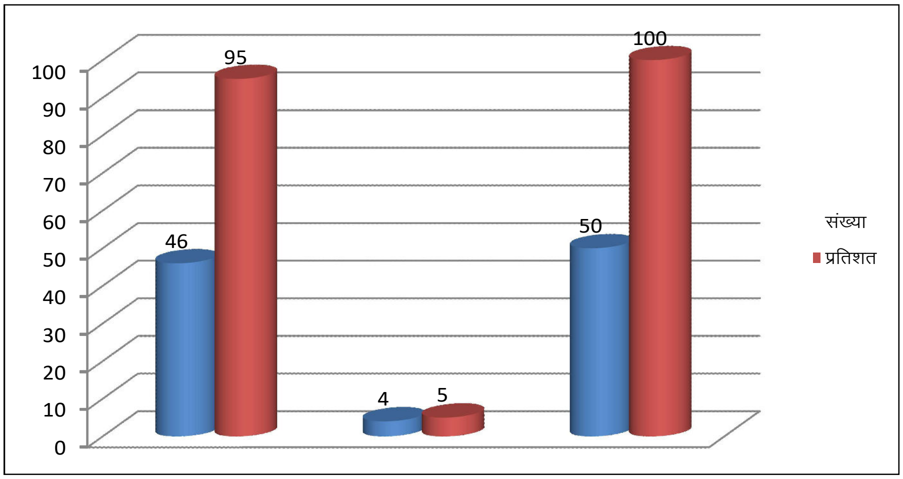

तालिका से स्पष्ट है की महिला उत्तरदाताओं के सामाजिक स्थिति का ये परिवर्तन 95 प्रतिशत देखा जा सकता है, जबकि 5 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं में सामाजिक स्थिति में बदलाव नही देखा गया है।

निष्कर्ष एवं सुझाव - उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि अध्ययन क्षेत्र में जन-संचार के माध्यम से महिलाओं में जागरूकता पायी गयी है एवं उनके कला एवं कौशल का विकास के साथ शिक्षा में जागृति आई है और नयी नयी दिशा में आगे आना देखा जा सकता है तथा सामाजिक कुरीतियों से बाहर आने एवं देश के विकास में सहायक साबित हुई है। जन-संचार के माध्यम से अपनी नयी पहचान महिलाएँ बना रही है। ग्रामीण क्षेत्रों एवं नगरीय क्षेत्रों में जन-संचार के माध्यम से अनेकों कुरीतियों को समाप्त करके सामाजिक-आर्थिक विकास की दशा का आंकलन किया जा सकती है। सस्ते एवं सुलभ साधनों द्वारा ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में जब महिलाएँ अपने ग्रह कार्य से फुर्सत हो उन्हें उनके निवास के समीप ही समस्त जन-संचार के माध्यम से जानकारी शासकीय, अशासकीय स्तर पर दी जा सके इसके लिए स्वयं सेवी संस्थाएँ अधिक कारगर सिद्ध होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. श्रीनिवासी डॉ. एम.एन, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, बुक स्टोर आगरा
2. घोष एस.के., बदलते समाज में महिलाएंः, आशील पब्लिसिंग हाउस, न्यू दिल्ली
3. जैन मन्जु, कार्यशील महिलायें एवं सामाजिक परिवर्तन, प्रिन्टवैल जयपुर
4. पचौरी सुधीर, टेलीविजन : दशा और दिशा, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय नई दिल्ली
5. पाण्डेय डॉ. कौशल कुमार, जनमाध्यमों का विकास एवं प्रवृतियां, क्लासिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

कठगुलाब में अभिव्यक्त नारी जीवन

•शैलेन्द्र ठाकुर
••अभिनेष सुराना
••• नीरज चौबे

सारांश- **किसी भी सभ्य समाज अथवा संस्कृति की अवस्था का सही आलकन उस समाज में स्त्रियों की स्थिति से ज्ञात किया जा सकता है। जब महिलाओं ने अपनी सामाजिक भूमिका को लेकर सोचना, विचारना शुरू किया, वहीं से स्त्री-विमर्श, नारीवाद और सर्वमान्य कोई परिभाषा देना मुश्किल है। यह सवाल है, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थाओं के सोचने के तरीके और विचारों की अभिव्यक्ति है। स्त्री-विमर्श रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का स्वर है। पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे नैतिक मापदण्डों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतर्दृष्टि है। जब भी कभी स्त्री-विमर्श की बात होती हैं, तो वहाँ आज भी मध्यमवर्गीय स्त्री को केन्द्र में रखा जाता है। साहित्यकारों व विमर्शकारों का खुद ही मध्यवर्गीय पृष्ठभूमि से जुड़ा हुआ इसकी एक बड़ी वजह है।**

मुख्य शब्द- **स्त्री विमश, स्त्री संघर्ष, स्त्री अस्मिता, आर्थिक स्वतंत्रता, यातना, शब्दों व शैली के नये प्रयोग।**

स्त्री मुक्ति के संघर्ष का संबंध किसी एक देश या काल से नहीं है बल्कि यह संपूर्ण सच है। स्त्री–मुक्ति के स्वप्न का सृजन दास्ता की असहय वेदना से हुआ है। आज पुरुष–दासता की सभी श्रृंखलाओं को तोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। जिसकी वजह से सारे रिश्तों व संबंधों का समीकरण ध्वस्त होते जा रहे। वहीं स्त्री को क्रय–विक्रय की वस्तु समझ नवीन बाजार व्यवस्था में परिणिति कर दिया गया है। स्त्री प्रकृति की तरह स्वाधीन होना चाहती है। स्त्री पैदा नहीं होती, उसे बनाया जाता है, ऐसा स्त्रीवादी विमर्श में माना गया है। पितृसतात्तमक समाज में मातृसत्ता प्रतिबंधित है, साथ ही जिस स्त्री ने उसे जन्म दिया, पुरुष उसी पर लांछन लगाता है, उस पर संदेह करता है और छल–छद्‌म से उस पर शासन करता आया है।

मृदुला गर्ग आठवीं दशक की महत्वपूर्ण कथा लेखिका है। अब तक उनके छः उपन्यास और कई कहानी संग्रह प्रकाषित है। मृदुला गर्ग के उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों को समझने पर बल दिया गया है। उनके ज्यादातर उपन्यास उच्च–मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय पुरुष के आपसी संबंधों को केन्द्र में रखते हैं। स्त्री–पुरुष संबंधों में उनके यौन पहलू को उन्होंने बहुत बोल्डनेस के साथ उभारने की कोशिस की है। उनके कई उपन्यासों में भारतीय स्त्री विदेशी पुरुषों के साथ प्रेम करती हुई दिखाई देती है। उनके उपन्यासों में भले ही भारतीय स्त्री विदेशी पुरुष के साथ प्रेम करती है, फिर भी वह भारतीयता को नहीं छोड़ती। 'वंशज' उपन्यास सामाजिक है। 'वंशज' दो पीढ़ियों का संघर्ष है– बाप अंग्रेज न्याय प्रिय है, बेटा भारतीय विचारवादी हैं। वैसे ही 'चित्तकोबरा' की मनु भारतीय है। रिचर्ड अमेरिकी विचारवादी हैं, पर दोनों एक–दूसरे को बहुत प्रेम करते हैं। 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास की मनीषा पति के रहते हुए भी मधुकर जैसे पर पुरुष से शादी कर लेती है।

● सहा. प्राध्यापक (हिन्दी) डॉ. खूबचंद बघेल शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय भिलाई-३ (छ.ग.)
●● प्राध्यापक (हिन्दी) शास. वि. या. ता. स्ना. स्वशासी महाविद्यालय, दुर्ग (छ. ग.)
●●● शोध छात्रा (हिन्दी) शास. वि. या. ता. स्ना. स्वशासी महा, दुर्ग (छ.ग.)

जब मधुकर के प्रेम में अधूरापन लगने लगता हैं, तो जितेन के पास वापस आना चाहती है। उसी प्रकार 'मैं और मैं' उपन्यास की माधवी अच्छी लेखिका है। 'माधवी' और 'मनीषा' के पात्रों में बहुत समानताएँ है। 'चित्तकोबरा' की 'मनु' तथा 'उसके हिस्से की धूप' की मनीषा की पसंद एक-दूसरे से मिलती-जुलती है। दोनों ही सेक्स को महत्व देने वाली है। जब लेखिका ने 'अनित्य' उपन्यास लिखा तो, इस उपन्यास में उनकी विचारधारा ही बदल गयी है। 'अनित्य' में भी यौन-विचार हैं लेकिन उनको उतना महत्व नहीं दिया गया है। लेखिका का लक्ष्य यहाँ सिर्फ आजादी आंदोलन, गांधी, नेहरू और भगत सिंह जैसे नेताओं के विचारधारा पर था। जब उनका अंतिम उपन्यास 'कठगुलाब' आया तो, दुबारा स्त्री की घुटन, प्रेम से वंचित और देहवासना को लेकर लिखने लगी हैं। 'कठगुलाब' में कुल पाँच पात्र है। वे पांचों पात्र कहीं न कहीं एक-दूसरे से संबंधित है। जब तक हम पूरे उपन्यास को पढ़ नहीं सकते, तब तक उपन्यास को समझना मुश्किल हैं। अलग-अलग कटे हुए फूलों की पंखुड़ियों को लेखिका ने मिलाकर उपन्यास का आकार दे दिया है। इस उपन्यास के पहले भाग में 'स्मिता' की कहानी है, जिसे उपन्यास का कथा वाचक भी कह सकते हैं। उपन्यास 'कठगुलाब' स्मिता के इन शब्दों से शुरू होता है।

"मेरा नाम स्मिता है। कोई बीस साल बाद मै अपने घर लौटी हूँ। वहीं मिट्टी से भरा घर। कुछ याददाश्त से धुँधलाया, कुछ एकाएक सामने पड़ जाने पर अनचीन्हा। पर अपरिचय ज्यादा देर नहीं टिका। टिकता कैसे? बीस बर्ष कुछ भी नहीं है, यहाँ के लिए। सच कहती हूँ, शहर के भीतर घुसी तो लगा, अभी तो गयी थी, एकाध साल हुआ होगा। कुछ भी तो नहीं बदला। वहीं आवाजें, आवाजों का जमघट, शोर, फिर भी शोर में अलग-अलग पहचान बनाये स्वर। वहीं रोशनी और अंधेरे का खिलवाड़, कभी रोशनी हावी तो तत्काल अंधेरा हाजिर। वहीं रूक-रूककर बहती हवा। वहीं चारो तरफ फैला मिट्टी का साम्राज्य, जो दीवारों की नाकेबन्दी नहीं मानता। इसीलिए तो दीवारों से घिरे घर में न आकर भी कहती हूँ, मै घर लौटी हूँ।"[1]

स्मिता अपने बहन नमिता और जीजा के साथ रह कर पढ़ाई करती है। वहाँ उसका जीजा उसका शारीरिक शोषण करता है, जिससे वह अपने बहन का घर छोड़कर अमेरिका चली जाती है। तब वहाँ जाने पर वह अपनी अकेली जिंदगी को शुगर मेपल की झाड़ी से जोड़ती है। वह शुगर मेपल के नीचे सोकर उससे इस प्रकार वार्तालाप करती है -

"क्या बतलाऊँ शुगर; कितना हंसे थे सब लोग।
बहुत समझ, चिड़िया अंडे नहीं दे गई तेरे इस घोंसले में। नमिता ने कहा था
कौन नमिता। कोई नहीं। यूं ही नाम फिसल गया जुबान से।
बहस मत करो, शुगर। मैंने स्मिता कहा होगा तुमने लगता
सुन लिया होगा। यहाँ सब मुझे समिता कहते है न, स्मिता
कहा नहीं जाता। तुम कहकर देखे। नहीं कहा गया न?
अरे, इतना सिर मत हिलाओ और कितने पत्ते झड़वाओगी?
हाँ शुगर, तुम्हारी समिता के बाल भी खूब धुंधराले थे। अब तो
बिल्कुल सीधे हैं। बतलाया तो था कैसे हुए सीधे।"[2]

स्मिता अपनी जीवन कहानी अपनी ही जुबान से इस प्रकार कहती है- "देखा आपने मेरी जिंदगी का आधार था, एक जोड़ी चश्मा। क्या आधुनिक सौंदर्य बोध है। आज मैं अपने जीवन के इस विद्रूप पर हंस सकती हूँ। बहुत मेहनत करके हंसना सीखा है मैंने। वहीं आज मेरी एक मात्र पूंजी है।"[3]

अमेरिका में स्मिता की मुलाकात 'साइक्याट्रिस्ट जिम जारविस' से होती है, फिर दोनों शादी करके एक साथ रहने लगते हैं, लेकिन कुछ दिनों बाद जिम भी उसके ऊपर अत्याचार करना शुरू कर देता है, जिससे वह तंग आकर वहाँ से भाग जाती है और शरण लेने के लिए 'रॉ' (रिलीफ फॉर एब्यूज्डविमेन) नाम की संस्था में जाती है। जहाँ वह शादी के बाद काम करती थी। वहीं पर उसकी मुलाकात मारियान से होती है। जो उपन्यास की दूसरी पात्र हैं। मारियान भी पुरुषों द्वारा सताई हुई है, एक जो उसकी माँ का दूसरा पति है, व दूसरा उसका खुद का पति इर्विंग। इर्विंग उन मर्दो में से था जिनका ख्याल था कि औरते केवल बिस्तर के लिए बनाई गयी है। इर्विंग ने मारियान को शारीरिक, मानसिक हर प्रकार से प्रताड़ित किया पर चाह कर भी मारियान कुछ नहीं कर पायी क्योंकि समाज में लोग केवल तमाशा देखते और वह कुछ नहीं कर सकती। उसने भी इर्विंग को छोड़कर रॉ को ज्वाइन कर लिया। वहीं स्मिता मारियान से मिली और दोनों अतरंग सहेलियाँ बन गयी। दोनों एक साथ 15 साल रही मगर शादी दोनों ने नहीं किया। प्रेम संबंध दोनों ने बनाये ये उनका निजत्व था। स्मिता को जारविस ने तलाक देकर दूसरी शादी कर ली और उस समय वह हार गयी थी। उसके पीछे खड़ी रॉ स्त्री-शक्ति भी हार गयी थी। हारकर वह हिन्दुस्तान नहीं आना चाहती थी इसलिए अमेरिका में ही दूसरे शहर, शिकागों चली गयी और ऑक्सफॉम में नौकरी कर ली थी और उसका साथ मारियन ने दिया। पन्द्रह साल बाद स्मिता को ऑक्सफॉम की एक प्रोजेक्ट पूरा करने के लिए हिन्दुस्तान आना पड़ता है। चलते-चलते भावुक होकर स्मिता, मारियान को हिन्दुस्तान आने का निमंत्रण देती है। उतनी ही भावुकता से, उसने जरूर आने का वादा भी किया था।

"मेरा नाम नर्मदा है। मेरी कहानी में सुनाने को भला क्या है? कोई क्यों सुनना चाहेगा उसे? मेरी जिन्दगी में कभी कुछ हुआ भी नहीं। वह तो ये आयी है ना, सागर पार दूर अमेरिका से, बीबी जी की छोटी बहन, क्या नाम है, स्मिता, मैं तो मेम बीबी ही कहूँ हूँ इसे, अमेरिका से आयी है ना। ये पीछे पड़ गयी मेरे। कहानी सुनाओं अपनी कहाँ की हो, परिवार कहाँ है तुम्हारा, बचपन किस तरह बीता ...."।[4]

नर्मदा स्मिता की बहन नमिता के यहाँ बीस-बाईस साल से काम करती थी। नमिता के दो बच्चों को नर्मदा ने पाल-पोस कर बड़ा किया। नीरजा डॉक्टरी की पढ़ाई और प्रदीप ऑफिस जाता है। नर्मदा, स्मिता को नमिता व उसके परिवार के बारे में सब कुछ बताती है कि कैसे उसके जीजा को लकवा मार गया और बच्चे क्या करते है, नर्मदा अपने व नमिता के पूरे संघर्ष की कहानी स्मिता को बताती है। उपन्यास का चौथे नारी पात्र का नाम असीमा है। वह मर्दो से बहुत चिढ़ती है कहती है -

"अब आये तो कोई मर्द मेरी सीमा में, टांग तोड़कर पूँछ बना दूँ। मुझे मर्दो से नफरत है। सब एक से बढ़कर एक हरामी होते हैं। सबसे बड़ा हरामी था, मेरा बाप। लम्बा, तगड़ा, खूबसूरत हरामी। उसके सामने मेरी माँ, न पिद्दी का शोरबा। हर तरह की सीमा में बँधी, एक अड़ियल, जिद्दी औरत।"[5]

असीमा के बाप ने उसकी माँ के रहते दूसरी औरत से शादी कर ली जिससे वह हर आदमी से नफरत करती है। नर्मदा पहले असीमा के घर काम करती थी। असीमा की माँ सिलाई करके अपने बच्चों को पालती है। असीमा एक दफ्तर में काम करती है। वहीं विपिन मजूमदार भी काम करता है। जो असीमा का अच्छा मित्र है। असीमा की माँ चाहती है कि असीमा विपिन से शादी करके अपना घर बसा लें, परन्तु असीमा ऐसा नहीं करती।

उपन्यास का आखिरी व इकलौता पुरुष पात्र विपिन मजूमदार है।

"मेरा नाम विपिन मजूमदार है।

"देखा," असीमा कहती, "मर्द है, तभी अपने नाम के आगे पुछल्ला लगाये बिना नहीं रह सका।" सच, आदत पड़ गयी है। "क्यों नहीं पड़ेगी, हरामियों को अपने बाप का नाम सिद्ध करके दिखलाने की बड़ी छटपटाहट रहती है," असीमा कहती। "चलो यही सही।"[6] उपन्यास में विपिन स्त्रियों का समर्थन करता है। प्रत्येक स्त्री पुरुषों द्वारा सताई होती है। विपिन उनके दर्द को समझता है। पिता के मरने के बाद उसकी माँ उसे कितनी तकलीफ व कठिनाईयों से अकेले पालती है, इसका उसे अहसास है। उसकी जिंदगी में असीमा, स्मिता, नीरजा सब आई लेकिन उसकी संतान की इच्छा कोई पूरी नहीं कर सकी।

इस उपन्यास में हर पात्र किसी न किसी रूप में एक दूसरे से जुड़े हुए है। अंत में असीमा, स्मिता और विपिन गोधड़ गांव जाते हैं। वहाँ जाकर ग्रामीण परिवेश में जी रहे लोगों से मिलकर उनकी असुविधाओं को देखते हुए उनके जीवन विकास की योजना बनाते हैं। उपन्यास में कठगुलाब हर स्त्री का प्रतीक है स्मिता, नर्मदा, मारियान और असीमा के जीवन की सही देखभाल हो पाती, सही पुरुष का साथ मिला होता तो वे भी कठगुलाब की तरह झनन-हुम, झनन-हुम खिल उठती।

'कठगुलाब' उपन्यास की लेखिका का मुख्य उद्देश्य है - मनुष्य के जीवन का वास्तविक अर्थ बताना। 'कठगुलाब' शीर्षक पूर्णत: प्रतीकात्मक है, जिसके विभिन्न अर्थ उपन्यास के कथ्य के संदर्भ में लिए जा सकते हैं। लेखिका के संदर्भ में यह उस पौधे का नाम है, जिसे उनके दिवंगत पुत्र ने बचपन में लगाया था। अत: पुत्र को समर्पित इस रचना का नामकरण उसकी स्मृति का प्रतीक है।

'कठगुलाब' उपन्यास की केन्द्रीय संवेदना मातृत्व (उर्वरता) से भी संबद्ध है। 'कठगुलाब' की पंखुड़ियाँ झड़ जाने के बाद भी उसमें बीज बचा रहता है ठीक उसी प्रकार उपन्यास में नारी संघर्ष करते हुए पराजय के बाद भी संघर्षरत रहती है।

मृदुला जी का 'कठगुलाब' उपन्यास शैली की भी दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों परिवेष चित्रित हैं। अत: शिक्षित समुदाय की शब्दावली और विदेशज शब्दों का आना स्वभाविक है। कथा के पाँचों प्रमुख पात्र कथा वाचक के रूप में अपनी-अपनी कहानी खुद सुनाते हुए स्मृतियों में चले जाते हैं व कथा को आगे बढ़ाते नजर आते हैं। इस उपन्यास में प्रमुख कथा के अलावा अनेक उपकथा है। ये उपकथा अलग-अलग देश तथा अलग-अलग वर्ग के स्त्रियों की अधूरी जीवन कथायें हैं। उपन्यास के पात्र उसके कथा के ही अंग है। लेखिका ने पात्रों को स्वतंत्र रूप से जीने दिया है। यह एक स्त्री-प्रधान रचना है। अधिकांश पात्र वर्गगत हैं, जिन्हें किसी एक खाँचे में फिट नहीं किया जा सकता।

मृदुला जी अपने उपन्यास 'कठगुलाब' के माध्यम से उपन्यास जगत में अपनी एक अलग छबि बनायी है। 'कठगुलाब' में लेखिका ने पांच पात्रों को लेकर पांच अध्याय की रचना की है। जब तक हम उपन्यास के पांचों अध्यायों को पढ़ नहीं लेते तब तक उपन्यास को समझ पाना मुश्किल है। 'कठगुलाब' के पाँचों अध्याय में पाँचों पात्रों के चरित्र को अलग-अलग भाग में मृदुला जी ने दर्शाया है। मृदुला जी ने हर वर्ग की स्त्री को ध्यान रखकर 'कठगुलाब' की रचना की है। इन्होंने हर वर्ग की शोषित और दुखी (प्रताड़ित) स्त्री को लेकर

'कठगुलाब' उपन्यास की रचना की है। 'कठगुलाब' में लेखिका ने स्त्री की घुटन, प्रेम से वंचित मौन सेक्स को केन्द्र में रखा है। मृदुला जी का उपन्यास 'कठगुलाब' हिन्दी की कुछ श्रेष्ठ रचनाओं में से एक है।

मृदुला जी इस उपन्यास में स्त्री की भारतीय और तात्कालिक स्थिति का, संवेदनाशील स्वभाव का, पुरुष के साथ विभिन्न स्तरीय संबंधों का, ताना-बाना अपने गहन जीवनानुभव और साहित्य ज्ञान के स्तर पर व्यक्त किया है।

इस उपन्यास में स्मिता, नर्मदा, मारियान, असीमा हर स्त्री का प्रतीक कठगुलाब है। मृदुला जी ने इस बात को बहुत अच्छे से व्यक्त किया है कि अगर स्मिता, नर्मदा, मारियान, असीमा के जीवन की भी सही तरीके से देखभाल हुई होती, सही पुरुष का साथ मिला होता तो इनकी भी जिन्दगी कठगुलाब की तरह खिल गयी होती। परन्तु स्मिता के जीवन में उसका जीजा, नर्मदा की जीवन में उसके जीजा-बहन, मारियन की जिंदगी में इर्विंग और असीमा की जिंदगी में उसके पिता द्वारा किए गए दूसरे विवाह इन सबके जीवन को तबाह न करते तो इनका भी जीवन कठगुलाब की तरह खिल गया होता।

हिन्दी में इस तरह के उपन्यासों की कमी है। इस उपन्यास में स्त्री का शोषण और उसके ऊपर हुए अत्याचार को सहते हुए एक स्त्री (आत्मनिर्भर तथा पुरुष के बराबर स्वयं को सिद्ध करने के लिये) किए गये संघर्ष को बहुत सही ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास को कम से कम हर हिन्दी क्षेत्र के पुरुष को पढ़ना चाहिए। उपन्यास के पुरुष पात्र विपिन की उलझनें पुरुषों के सोच का प्रतिनिधित्व करेंगी। ऐसा निश्चित हैं।

लेखिका अपने 'बोल्डनेस' के लिये जानी जाती है, जो उनके हर उपन्यास में देखने को मिलता है। लेखिका ने अपने हर उपन्यास में स्त्री के संघर्ष व शोषण की कहानी लिखी है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मृदुला जी के उपन्यास स्त्री प्रधान है। उन्होंने अपने उपन्यास में हर वर्ग की स्त्री को ध्यान में रखते हुए उपन्यास की रचना की है। स्त्री कितनी भी शिक्षित हो जाये, वह अमेरिका में रहे या हिन्दुस्तान में उसका शोषण एक बड़ी सच्चाई है। हर समाज में स्त्रियों को दबाया जाता है। दुनिया के अधिकांश देश पुरुष प्रभुत्ववादी है।

'कठगुलाब' की नायिका असीमा पुरुषों से चिढ़ती है। वह पूरी तरह से संघर्ष करती है परन्तु पराजित होती है। पुरुष प्रधान देश में औरतों को केवल एक भोग की वस्तु समझा जाता है, जो हम मृदुला जी के उपन्यासों में देख सकते है। ऐसा नहीं कि लेखिका पुरुषों से नफरत करती है, उन्होंने इस उपन्यास में विपिन जैसे पात्र को भी रखा है जो स्त्रियों के दर्द और तकलीफ को समझता है। लेखिका ने यह समझाने की कोशिस की है कि स्त्री कितनी भी शिक्षित हो जाये और कहीं भी किसी भी देश चली जाये पुरुष उन्हें केवल भोग-विलास की वस्तु ही समझता है और उनका शोषण करता है लेकिन मृदुला गर्ग की स्त्रियाँ मानसिक व शारीरिक शोषण होने के बाद भी पराजित नहीं होती।

उपन्यास के संवादों में रोचकता, स्वाभाविकता, अनुकूलता की जरूरत होती है। इस दृष्टि से 'कठगुलाब' की संवाद योजना पूर्णतः सफल कहीं जायेंगी। इसके संवाद सरल एवं भावानुकूल है। लेखिका ने छोटे-छोटे वाक्यों का प्रभावी प्रयोग किया है। किसी-किसी संवाद में तो केवल एक ही शब्द में पूरे भाव को प्रकट करने में सफल है।

कुल मिलाकर 'कठगुलाब' के माध्यम से लेखिका यह स्पष्ट करना चाहती है कि देश और वर्ग की सीमा से परे हर देश के वर्ग की स्त्रियाँ पुरुषप्रभुत्वादी शोषण की शिकार हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. गर्ग मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. संस्करण–2016. पृष्ठ 9.
2. गर्ग मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. संस्करण–2016. पृष्ठ 30.
3. गर्ग मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. संस्करण–2016. पृष्ठ 18
4. गर्ग मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. संस्करण–2016. पृष्ठ 123.
5. गर्ग मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. संस्करण–2016. पृष्ठ 165.
6. गर्ग मृदुला. कठगुलाब. नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन. संस्करण–2016. पृष्ठ 211.

UGC Journal No. (Old) 40942,
Peer-Reviewed Research Journal
Impact Factor 3.928, ISSN 0973-3914
Vol.- 33, Hindi Edition, Year-16, July-Dec. 2020

बौद्ध साहित्य में पर्यावरण (600 ईसा पूर्व से 300 ई. तक)

● अजय कुमार यादव

सारांश- बौद्ध साहित्य से हमारा तात्पर्य बौद्ध वांङ्गमय से है। इसका व्यापक अर्थ है इसके अन्तर्गत असीम ज्ञानराशि का भण्डार समाहित होता है जिसमें विज्ञान, नीति, दर्शन-धर्म, आयुर्वेद, ज्योतिष विज्ञान, पुराणशास्त्र, टीकाएं आदि शामिल है। इतने विपुल साहित्य की रचना कब प्रारम्भ हुई कहना मुश्किल है। ध्यातव्य है कि भगवान बुद्ध के समय लेखन कला प्रचलित थी इसी कारण बुद्ध की मृत्यु के दो सौ वर्षों बाद अशोक ने अपने आदेशों को लिपिबद्ध कराया। लेकिन ये प्रमाण नहीं मिलता कि बुद्ध ने त्रिपिटक को लिपिबद्ध किया। छठीं सदी ईसा पूर्व का काल भारतीय इतिहास में नवीन प्रवृत्तियों के अभ्युदय का काल था। इस काल में विभिन्न मत-मतांतरों के बीच अर्न्तविरोधों के कोलाहल दिखायी देता है। इन भ्रमणशील सन्यासियों ने पुरातन रूढ़िवादी परम्पराओं का मुखर विरोध किया तथा जनमानस को अपने नवीन विचारों के द्वारा अत्यन्त प्रभावित किया। इन परिवर्तनों के पीछे अनेक सामाजिक-आर्थिक कारण मौजूद थे। इस परिवर्तन के कारणों के उत्स बौद्ध साहित्य में मिलते हैं।गौरतलब है कि हम प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरण के प्रति सजगता पाते हैं। बौद्ध साहित्य में पर्यावरण के प्रति जो अनेक दृष्टांत मौजूद हैं मौजूदा पर्यावरण समस्या के निदान में सहयोग कर सकते हैं। इसीलिए ''बौद्ध साहित्य में पर्यावरण'' को शोध विषय के रूप में चुना है।

मुख्य शब्द- पर्यावरण, संस्कृति, वेदन्तगू, निक्कसवो, वाहितपापधम्मा

पर्यावरण का अभिप्राय उस हवा से है जिसमें हम साँस लेते हैं, उस पानी से है जिसे हम पीते हैं। इसका अभिप्राय नदियों एवं जंगलों से है तथा उन असंख्य जीवों से है जो इस विश्व की भूमि, वायु एवं पानी में वास करते हैं। इसका अभिप्राय मानव की संस्कृति परम्पराओं एवं प्रथाओं से है तथा मानव जाति की उस विविधता से भी है जो सम्पूर्ण पृथ्वी पर ज्ञात-अज्ञात रूप में अपनी विलक्षण जीवन शैलियों के रूप में विद्यमान है।

इसी पर्यावरण में आये असंतुलन के कारण आज भारत में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में समस्या के रूप में प्रकट हुई है। इस समस्या के निराकरण के लिए विगत वर्षों में अनेक सम्मेलन आयोजित किये जा रहे हैं, जैसे-पृथ्वी सम्मेलन, क्योटो-प्रोटोकाल, रियो जोहांसवर्ग आदि सम्मेलनों के माध्यम से लोगों को आगाह किया जा रहा है। ध्यातव्य है कि इस समस्या के निराकरण में इतिहास की भूमिका क्या हो सकती है तो मेरा विचार है कि निश्चित रूप से इतिहास जिस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में अपना बहुमूल्य योगदान मानव सभ्यता एवं संस्कृतियों को दे रहा है उसी प्रकार पर्यावरण को भी बचाने और संतुलित करने में इसकी भूमिका हो सकती है।

गौरतलब है कि हम प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरण के प्रति सजगता पाते हैं। बौद्ध साहित्य में पर्यावरण के प्रति जो अनेक दृष्टांत मौजूद हैं मौजूदा पर्यावरण समस्या के निदान में सहयोग कर सकते हैं। इसीलिए ''बौद्ध साहित्य में पर्यावरण'' को शोध विषय के रूप में चुना है।

भगवान बुद्ध पर्यावरण के प्रति संवेदनशील थे उन्होंने स्वच्छता पर अत्यधिक बल दिया कहा कि ''भिक्षुओं को जल में पेशाब नहीं करना चाहिए'', हरियाली पर शौच

● **शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.)**

नहीं करनी चाहिए। बौद्ध संघ के नियम और जीवनचर्या पर्यावरण के सानिध्य एवं सहचर्य के प्रति अनुकूल था। चैत्य, विहार की संकल्पना पर अत्यधिक जोर दिया उन्होंने कहा मनुष्य का जीवन दुर्लभ है, अत: उसे अच्छे कार्यों में लगाना चाहिए, अपने उपदेश में कहा कि स्वयं प्रकाश बनों, दूसरों के अंधकार को दूर करो। वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं वैचारिक स्वतंत्रता के बुद्ध हिमायती थे। उन्होंने कहा पहले सुनो, फिर उस पर विचार करों, जो समाज और तुम्हारे लिए कल्याणकारी है उसे ग्रहण करो। बुद्ध का समतावादी (मध्यमार्गी) विचार, अहिंसा, बहुजन हितार्थ, बहुजन सुखार्थ के आदर्श ने पर्यावरण संरक्षणवादी मूल्यों की स्थापना में अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

बौद्ध धर्म के अभ्युदय की पृष्ठभूमि- भारत एक धर्मप्राण देश है। डॉ. राधाकृष्ण ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है- "धर्म की शक्ति ही जीवन-शक्ति है। शक्ति का अर्थ है- संरक्षण, अर्थात् जिसमें प्राणीमात्र के हितों की सुरक्षा होती है वह धर्म है।" इसी की मनुष्य के जीवन में अपेक्षा की जाती है। धर्म समाज की अन्त:चेतना है और सुख-शान्ति का आधार है। इसी रूप में वह ग्राह्य भी है। धर्म की दृष्टि ही जीवन की दृष्टि है। भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक यात्रा का प्रारम्भ जहाँ से होता है या जहाँ से इसके अवशेष चिन्ह हमें प्राप्त होते हैं वहाँ से हमें ऐसे संकेत मिलने प्रारम्भ हो जाते हैं जो मानव मात्र की ऐसी अवस्थाओं को अभिव्यक्त करता है जिसका सम्बन्ध हम क्रमश: अन्धविश्वास, धर्म एवं अध्यात्म से जोड़ सकते हैं। भारत के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में जब हम अध्ययन करते है तब हम यह जान पाते है कि भारत धर्मप्राण देश क्यों कहा जाता है? यहाँ वैदिक काल के पूर्व से वैदिक काल के पश्चात् विशेष रूप से धार्मिक मान्यताओं, विश्वासों, मूल्यों एवं सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ, साथ ही अनेक दार्शनिक मतों एवं सिद्धान्तों को भी मान्यता प्राप्त हुई।

मैक्स बेबर ने धर्म को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, धर्म का व्यावहारिक महत्व कर्त्तव्य का समुचित पालन करता है जिसके माध्यम से व्यक्ति लौकिक उत्कर्ष के साथ ही साथ अध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त करता है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त भारतीयों का जीवन ज्ञानगर्भित, सदाचारिता और धर्म प्रवण था। उसके समस्त कर्त्तव्य और कर्म ज्ञान समन्वित एवं श्रद्धासिक्त होकर धर्म से उत्पेरित एवं गतिमान थे जो उसके परिवार के गठन के लिए आवश्यक थे। अत: धर्म के द्वारा ही मनुष्यों को अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान प्राप्त होता है और वह उसके अनुरूप ही अपने कर्त्तव्यों का निर्धारण करता है।

वैदिक धर्म, भारतीय संस्कृति का प्राण या आधारतत्व माना जाता है और प्राचीनतम धर्म के रूप में वह प्रतिष्ठित रहा है। ऋग्वैदिक काल से मनुष्यों का जीवन अस्तिक विचारों एवं धार्मिक चेतनाओं से आप्लावित रहा है। धर्म, सृष्टि का आधार माना जाता है, जिस पर व्यक्ति या समाज टिका है। वैदिक परम्परा में धर्म, सामाजिक जीवन एवं आध्यात्मिक जीवन के मध्य एक सेतु के रूप में विद्यमान था। इतिहासकारों का विचार है कि प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था मुख्य प्रेरकतत्व धर्म ही था जिसमें नैतिकता, आस्तिकता, सदाचारिता और बौद्धिकता का समावेश हुआ था, जिसके माध्यम से दार्शनिक तत्वों का विकास हुआ। सर्वप्रथम दार्शनिक चिन्तन का प्रारम्भ 'ऋतु' के रूप में ऋग्वैदिक काल में हुआ जो एक प्रकार का अनुशासन था। इसका सम्पूर्ण विकास उत्तरवैदिक युग में उपनिषदों की रचना से माना जाता है। परवर्ती काल में न्याय जैसे तार्किक सिद्धान्तों का विकास हुआ।

वैदिक काल के उपरान्त तत्कालीन समाज में शैव एवं वैष्णव धर्म का अस्तित्व बढ़ा जिनकी अपनी सुस्पष्ट धार्मिक मान्यतायें एवं आस्थायें थीं। जैन धर्म भी अपनी विशिष्टताओं से जनसाधारण को आकृष्ट किये हुए था।

अरण्यक, उपनिषद्, गृहसूत्र आदि धर्मग्रन्थों में विशिष्ट ब्राह्मण धर्म का पूर्णरूप से पालन केवल ब्राह्मणों ने किया था। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा अरण्यकों में वर्णित धर्माचरण में कई असमानतायें प्राप्त होती हैं, जैसे ब्राह्मणों में मुख्यत: धर्म के वाह्य आचरण की प्रधानता थी किन्तु अरण्यक में कर्म से अधिक ध्यान को महत्व दिया गया है लेकिन अरण्यकों में अपेक्षाकृत सरल आचरण का विधान है और वे आन्तरिक अनुशासन या मानस यज्ञ पर बल देते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में स्वर्ग की प्रधानता प्रतिपादित की गयी है और अरण्यकों में तत्वज्ञान की।

बौद्ध साहित्य में वर्णित सामाजिक जन-जीवन में पर्यावरण- भारतीय सामाजिक जीवन में वर्ण व्यवस्था प्रमुख स्थान रखता है। वैदिक काल से लेकर आज तक यह व्यवस्था निरंतर प्रवाहमान है। प्राचीन काल में वर्णों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जिसमें ब्राह्मण वर्ण मंत्र, रचना, मंत्र पाठ, याज्ञिक और पुरोहित कर्म से सम्बद्ध था। क्षत्रिण वर्ण युद्ध रक्ष शौर्य सम्बन्धी कार्य से सम्बद्ध था। वैश्य वर्ण कृषि गोपालन, व्यापार-वाणिज्य का कार्य करता था। चौथे वर्ण के रूप में शूद्र था जिस पर तीनों वर्णों की सेवा का दायित्व था। वर्ण-व्यवस्था कर्तव्यों एवं समुचित अधिकारों पर आधारित थी लेकिन कालांतर में इनका प्रमुख आधार जन्म से विशेषित होने लगा। इस कारण वर्णों के बीच कर्मपरक व्यवस्था पूर्णत: बंद हो गयी। जन्म आधारित श्रेष्ठता को ही समाज का आधार माना गया।

छठी शताब्दी आते-आते वर्ण के स्वरूप में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा इन परिवर्तनों के पीछे अनेक कारण थे जैसे-गंगाघाटी में लोहे की खोज से तकनीकी क्रान्ति ने जन्म लिया जिससे कृषि क्षेत्र में उत्पादन में अधिशेषों का नवीन स्वरूप प्रकट हुआ। अधिशेषें में गंगाघाटी में जन से जनपद, जनपद से राज्य, राज्य से साम्राज्य बनने की प्रक्रिया को बल दिया। तकनीकी क्रान्ति ने भौगोलिक दशाओं के साथ-साथ सामाजिक एवं आर्थिक ताने-बाने को प्रभावित किया। कहने का तात्पर्य यह है कि सरल समाज अब जटिल समाज में बदलने लगा। जहाँ अनेक शिल्प उद्योग, व्यापार-वाणिज्य विकसित हुए। बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा कि क्योंकि इसमें मेहनत कम फायदा अधिक होता है। यह कथन तत्युगीन परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

बुद्ध ने पुरातन जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। उन्होंने कहा जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता है बल्कि कर्म से ही कोई ब्राह्मण और अब्राह्मण होता है। कर्म से कृषक, कर्म से शिल्पी होता है। ब्राह्मण की परम्परागत श्रेष्ठता को उन्होंने चुनौती प्रस्तुत किया। दूसरी तरफ उन्होंने आचारवान ब्राह्मण की प्रशंसा और आचरणहीन ब्राह्मण की भर्त्सना भी की। उन्होंने आश्वलायन नामक ब्राह्मण को अपने मत को स्वीकार करने के लिए कहा कि केवल ब्राह्मण ही सुख के सुयोग्य नहीं है बल्कि अपने अच्छे कर्मों से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी स्वर्ग के अधिकारी हो सकते हैं। बुद्ध ने पूर्व से चली आ रही जन्मना वर्णव्यवस्था को प्रभावहीन करने के लिए समाज के सामने अनेक तर्क रखे, उन्होंने कहा कि वेदों का अध्ययन-अध्यापन, ब्राह्मणों का कर्म है, राजत्व क्षत्रियों का, कृषि-व्यापार-वाणिज्य वैश्यों का और सेवा शूद्रों का इसे ब्रह्मवाक्य क्यों मान लें। इन विचारों से बुद्ध ने पुरातन व्यवस्था, जो कि जन्म आधारित श्रेष्ठता को स्थापित करती थी उसे नकारा उसकी जगह समतामूलक कर्म

आधारित व्यवस्था को स्थापित करने पर बल दिया। बुद्ध जानते थे गैर बराबरी पर आधारित सामाजिक व्यवस्था सामाजिक असंतोष पैदा करेगा जिससे सामाजिक पर्यावरण स्खलित होगा समाज में द्वैष, हिंसा, प्रतिस्पर्द्धा बढ़ेगी। बुद्ध सामाजिक पर्यावरण के प्रति सचेत थे।

बुद्ध ने कहा हे राजन् क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य तथा शूद्र ये चारों वर्ण हैं, उनमें दो वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय) अभिवादन, प्रमाणांजलि अग्रासन तथा सेवा के अधिकारी हैं। भगवान बुद्ध ने वर्णव्यवस्था का विरोध जन्म पर आधारित होने के कारण किया। उन्होंने कहा कि उच्च वर्ण में जन्म लेने से कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता है बल्कि सत्कर्मों के द्वारा ही व्यक्ति की महत्ता पुष्टि होती है। उद्दालक जातक में ब्राह्मण पुरोहित ने कहा है कि क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुक्कुस सभी में अच्छे कर्मों के द्वारा निर्वाण प्राप्त करने की क्षमता है।

बुद्ध युगीन समाज वर्णगत भेद-भाव के कोलाहल से अस्थिर हो रहा था। उस युग में सदाचारी और दुराचारी दोनों प्रकार के ब्राह्मण की चर्चा पालिपिटकों में मिलती है बुद्ध ने सच्चे ब्राह्मण की परिभाषा एक ऐसे व्यक्ति के रूप में की है जो सभी पापों से मुक्त हो, (वाहितपापधम्मों) निराभिमानी है (निहुहुको) संयमी है (निक्कसवो) वेदज्ञानी है (वेदन्तगू) और ब्रह्चर्यरत है (वुसित ब्रह्चारियों) वह ही ब्राह्मण हैं। जातक ग्रन्थों में हमें ब्राह्मणों के द्वारा संसार को त्यागने का वर्णन भी मिलता है ज्ञानी ब्राह्मणों की भी चर्चा जैसे सुणेत सेल आदि नाम प्रमुख थे। उनके पास अपार ज्ञान था वे विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। ऐसे ब्राह्मणों को दिशा प्रमुख आचार्य कहा जाता था।

बौद्ध साहित्य में सामाजिक पर्यावरण दूषित करने वाले ब्राह्मणों की घोर निंदा की गयी है जो अपने शिष्यों को पूर्णज्ञान से शिक्षित नहीं करते थे। वहीं आदर्शवान ब्राह्मण का भी जिक्र है जैसे भगवान बुद्ध के गुरू 'अलारकलाम' ने बुद्ध को शिक्षित करने के बाद कहा कि "अब मैं जितना जानता हूँ, उतना तुम भी जानते हो।" भगवान बुद्ध ज्ञान के सर्वभौमीकरण के प्रति कटिबद्ध थे इसी कारण ज्ञान के संचार से सभी को लाभान्वित करना चाहते थे।

बौद्ध साहित्य में भगवान बुद्ध ने स्वयं विद्वान ब्राह्मणों की प्रशंसा की है। वर्णगत श्रेष्ठता को ज्ञान के आधार पर एवं आचरण की शुद्धता पर बल देते हुए उन्होंने कहा कर्म से कोई ब्राह्मण होता है एवं कर्म से कोई कृषक। परन्तु बुद्धकालीन समाज में ब्राह्मण पुरोहित वर्ग के रूप में राजा के अत्यनत निकट था राजा उसे अधिक दान दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करता था! विनयपिटक में कहा गया है राजा को पुरोहित के आसन के बराबर नहीं बैठना चाहिए। बाद के अनेक शास्त्रकारों एवं विद्वानों ने भी राजा को परामर्श दिया कि ब्राह्मणों के प्रति वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा कि एक शिष्य का गुरू के प्रति अश्वालायन गृहसूत्र में भी राजा के दरबारियों में ब्राह्मण का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है। बुद्धयुगीन समाज में ब्राह्मणों की प्रास्थिति सम्मानजनक थी। समाज में प्रधान पुरोहित के रूप में, राज्यसभा के प्रमुख मंत्री पदाधिकारी के रूप में, न्याय के कार्य में राजा के सहयोगी के रूप में, राजा के सम्मुख द्यूतक्रीणा में उत्सवों में शोभायात्रा, हस्ति आरोहण आदि के दौरान राजा उसे सम्मानित स्थान दिलाता था।

बौद्ध साहित्य में शास्त्रानुमोदित कार्यों से विमुख होकर अन्य कार्य में लगे ब्राह्मणों की चर्चा विशद रूप से की गयी है। मज्झिमनिकाय में मुद्रा गणना गोरक्खा, इस्सत्थ, वाणिज्य, कसि, संखान, राजपुरोसिस कार्य में लगे ब्राह्मणों की चर्चा है। दीघनिकाय के ब्रह्जालसुत्त में निषिद्ध कर्मों में लगे ब्राह्मणों की लम्बी सूची दी गयी है। दशब्राह्मण जातक

में उल्लेख है कि ब्राह्मण वैद, ब्रात्य, कर अधिकारी, वणिक, कृषक, सगुन-अपसगुन का अर्थ बताने वाले पुरोहित रक्षक, शिकारी, अम्बुष्ठा, निगाहक का उल्लेख है। जातक ग्रन्थों में उल्लेख है कि ब्राह्मण, ग्वाले, बढ़ई, निषाद, धनुष चलाने वाले शिकारी फेरी लगाने वाले आदि के सन्दर्भ मिलते है। ऐसे सन्दर्भ धर्मशास्त्रकारों के द्वारा भी उल्लेख किया गया है। आपस्तम्ब और गौतम ने ब्राह्मण को वाणिज्य एवं कृषि कर्म करने की राय दी। मनु ने कहा ब्राह्मण को आपातकाल के दौरान दास कर्म को छोड़कर कृषि तथा वाणिज्य के समान कोई मर्यादित व्यवसाय करना चाहिए।

बौद्ध साहित्य में कृषि, व्यापार-वाणिज्य के प्रति सम्माजनक स्थिति होने के कारण सामाजिक पर्यावरण में अनेक बदलाव परिलक्षित होते हैं। अब समाज में यजन-याजन यज्ञों का महत्व घट गया था। एक कर्मशील वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में कृषि को व्यवसाय का प्रमुख साधन माना जाने लगा था। इसी कारण बुद्धकालीन समाज में सामाजिक पर्यावरणीय बदलावों के रूप में ब्राह्मणों को ब्राह्मणोत्तर कार्यों से निबद्ध होने का उल्लेख मिलता है। बौद्ध साहित्य में भूमिपति एवं भूमिहीन दोनों प्रकार के ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है। विनयपिटक में सुनीधि एवं वस्सकार नामक धनी ब्राह्मणों की चर्चा है। जिन्हें 'महासाल' कहा जाता था। ये अपने खेतों पर श्रमिकों की सहायता से कृषि कार्य करते थे। इनके पास विपुल भूखण्ड था। दीघनिकाय में कसिभारद्वाज नामक ब्राह्मण का उल्लेख है जिसके पास 500 हल की खेती थी। उसका समाज में अत्यधिक सम्मान था। सुत्तनिपात में कोणीय महासाल नामक धनाढ्य ब्राह्मण का उल्लेख है, जिसके पास विपुल भूखण्ड था। उसने अपने यहाँ अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर मगधराज बिम्बिसार को आमंत्रित किया था। बौद्धसाहित्य में उल्लिखित दृष्टांतों से पता चलता है कि तत्युगीन समाज में कार्यों के स्तर पर विविधता एवं जटिल समाज का निर्माण हो रहा था। वही दूसरी ओर समाज का भौगोलिक विस्तार भी बढ़ रहा था। सामाजिक जीवन में भू-विस्तार के साथ-साथ सम्पदा के संचयन का दृष्टिकोण प्रबल हो रहा था। जिससे समाज में गैर-बराबरी का पर्यावरण उत्पन्न हो रहा था। इसी पर्यावरण शोधन के लिए महात्मा बुद्ध अपरिग्रह, सामाजिक समानता बौद्ध शिक्षाओं में विनयशीलता को मुख्य आधार बनाते है जिससे सामाजिक पर्यावरण का संगठनिक आधार दृढ़ रहे तथा समाज निरन्तर प्रवाहमान रहे।

बौद्ध साहित्य में सामाजिक पर्यावरण के सन्दर्भ में ब्राह्मणों द्वारा अपनाये गये अन्य व्यवसायों की भी चर्चा है जैसे सपनों के बारे में बताते थे, भाग्य बताते थे, शरीर के चिन्हों से चरित्र बताते थे, जादू टोना, मंत्र जाप, चिंतामणि, पृथ्वीविजय मंत्र, भूतप्रेत को भगाने, तलवारों से भाग्य पढ़ने इत्यादि विविध कार्य करते थे। परन्तु बौद्ध साहित्य में ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों का उल्लेख नहीं है। जैसा कि तत्युगीन ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख मिलते हैं कि ब्राह्मण की गुप्तधन में एक निश्चित भाग दिया जाना चाहिए। वहीं दण्डविधानों से मुक्त रखा गया था। इसके विपरीत जातक ग्रन्थों में उल्लेख है कि सामान्य अपराध करने पर ब्राह्मण को समान दण्ड देने का उल्लेख है। ऐसे दृष्टान्तों से पता चलता है कि सामाजिक पर्यावरण में ब्राह्मणों की स्थिति पूर्व कालों से निम्न स्थिति को प्राप्त हो गयी थी।

बौद्ध साहित्य में वर्णों के क्रम में क्षत्रिय का प्रथम स्थान दिया गया। दीघनिकाय में बुद्ध ने ब्राह्मण अम्बुष्ठ से कहा- हे अम्बुष्ठ स्त्री से स्त्री की तुलना की जाय अथवा पुरूष से पुरूष की क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है और ब्राह्मण हीन है। अंगुत्तर निकाय एवं दीघनिकाय में कहा गया

है कि क्षत्रिय जन्मना निष्कलंक है। अश्वघोष ने सौन्दरानन्द में क्षत्रियों का वर्णन करते हुए लिखा है कि क्षत्रियों का रंग स्वर्ण के समान है, वक्षस्थल सिंह के समान, भुजाए लम्बी होती है। यहाँ क्षत्रियों को दिये गये प्रतिमान पर्यावरण से उत्पन्न वस्तुओं पर आधारित है जो पर्यावरण संवेदना को प्रकट करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. गोयल, श्रीराम,प्राचीन नेपाल का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी, 1973
2. विन्टरनित्ज, प्राचीन भारतीय साहित्य, अनुवादक लाजपत राय, (प्रथम खण्ड) मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, 1921
3. त्रिवेदी, देवसहाय, प्राड्मौर्य बिहार, बिहार राष्ट्र भाषा, परिषद, पटना, 1954
4. चतुरसेन शास्त्री, आचार्य, बुद्ध एवं बौद्ध धर्म, भारती प्रकाशन, लखनऊ, 1964
5. सिंह, मदनमोहन, बुद्धकालीन समाज एवं धर्म, बिहार, प्रकाशन हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1972
6. उपाध्याय, भरत सिंह, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1961
7. कुमार, अनन्त, बुद्धकालीन राजगृह, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, नागपुर, 1972
8. जैन, भागचन्द्र, बौद्ध संस्कृति का इतिहास, आलोक प्रकाशन, नागपुर, 1972
9. चतुर्वेदी, ध्रुवनाथ, बौद्ध भारत, प्रकाशन किताब महल, इलाहाबाद, 1957
10. पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, प्रकाशन हिन्दी समिति, उ.प्र. लखनऊ, 1963
11. तिवारी, हवलदार, बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त, प्रकाशन बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना
12. शर्मा, चन्द्रधर, बौद्ध दर्शन एवं वेदान्त, प्रकाशन स्टुडेन्ट फ्रेंड्स, वाराणसी, 1949
13. नरेन्द्रदेव, आचार्य, बौद्ध धर्म एवं दर्शन, प्रकाशन बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना, 1956

Centre for Research Studies
Rewa-486001 (M.P.) India

Registered Under M.P. Society Registration Act,
1973, Reg. No. 1802, Year-1997
www.researchjournal.in

ISSN 0973-3914

Editor : Prof. Braj Gopal, Printed and Published by Dr. Gayatri Shukla on behalf of Gayatri Publications,Rewa - 486001 (M.P.) and Printed at Lineage Offset Rewa - 486001 (M.P.)